पुराणों में पर्यावरण

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी
पूर्व अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अनुसन्धाता
मनोज सिंह
शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
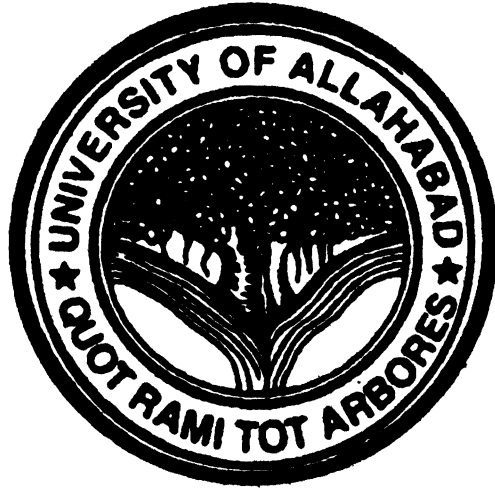
संस्कृत, पालि, प्राकृत-विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सन् 2002

प्राक्कथन

ईश्वर की असीम अनुकम्पा से मैं अपना शोध प्रवन्ध 'पुराणों' में पर्यावरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। ग्रन्थ के लेखन में कई प्रकार की कठिनायां मेरे समक्ष आई। लेकिन ईश्वर के आशीर्वाद से मैं अपने साध्य को पाने में सफल रहा। शोध प्रवन्ध लिखने में मेरे ईश्वर तुल्य **निर्देशक प्रो० डा० हरिशङ्.कर त्रिपाठी जी** का विशेष सहयोग रहा है नहीं तो इतने क्लिष्ट विषय पर शोधकार्य करना दुष्कर कार्य था। वे हमेशा मुझे उत्साहित करते रहे है जिससे मेरा हौंसला वना रहा। कभी-कभी मैं परेशान हो जाता कि प्रस्तुत शोध विषय पर कोई समाग्री नही मिल रही है। इस पर मेरे गुरु जी सदैव मेरा उत्साहवर्धन करते रहे। जिनके उत्साहवर्धन के कारण मैं आज शोध-प्रवन्ध प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

मेरे शोध ग्रन्थ के प्रणयन में डॉ० मृदुला त्रिपाठी, डा० राम किशोर शास्त्री, मनोज कुमार मिश्र, संस्कृति विभाग इलाहावाद विश्वविघालय, डॉ० वॉके विहारी श्रीवास्तव अध्यक्ष माध्यमिक शिक्षा चयन वोर्ड, डॉ० हरिनारायण दुवे रीडर प्रा० इति० इला० विश्वविघालय, डॉ० काली प्रसाद दुवे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविघालय वाराणसी, डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह पूर्व विभागाध्यक्ष हिन्दी , इलाहाबाद विश्वविघालय, डॉ० आर० सी० श्रीवास्तव प्रवक्ता वॉटनी विभाग सी०एम०पी० डिग्री कालेज इलाहावाद, डॉ० जयशंकर सिह प्रवक्ता विधि विभाग इलाहावाद वि०वि० का विशेष योगदान रहा। जिनके परामर्शो को मैने हमेशा आत्मसात् किया।

शोध-प्रबन्ध के सन्दर्भ में मेरे समस्यों के निराकरण के लिए मेरे मित्रों में डॉ0 अनिल कुमार सिंह भदौरिया, परामर्शदाता उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्व विघालय, शत्रुमर्दन सिंह, डॉ0 ओ0पी0 सिह, प्रा0 इति0 अजय बहादुर सिंह अंग्रेजी विभाग, राजेन्द्र सिंह यादव, अनिरूद्ध श्रीवास्तव प्रा0 इति0 (सभी सी0 एम0 पी0 डिग्री कालेज) प्रमुख रहे।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने में मेरे **पिता तुल्य श्री दल बहादुर सिंह** जो मुझे समय-समय पर शोध प्रबन्ध लिखने के लिए उत्साहित करते रहे है जिसके कारण यह शोध प्रबन्ध आज मै प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

सदैव आशीर्वाद प्रदान करने वालों में श्री सूबेदार सिंह, श्रीमती सरस्वती सिंह, श्री दल बहादुर सिंह, श्री श्याम सिंह वरिष्ठ वैज्ञानिक गन्ना अनुसन्धान केन्द्र कुशीनगर, श्रीमती पार्वती सिंह, श्री राजवली सिंह, रमेश सिंह, हंस कुमार सिह, कुंवर भारत सिंह, श्री सी. पी. सिंह रिटायर्ड आई.जी (सी.आर.पी.एफ.), श्री अमर नाथ सिंह भदौरिया, श्रीमती गीता सिंह, आशा सिंह तोमर, श्रद्धेय वड़े भ्राता श्री दिनेश सिंह एडवोकेट, कुँवर रंजन सिंह, प्राचार्य मॉ सरस्वती बाल विघा मन्दिर, बड़ी भाभी श्रीमती निर्मला सिंह, स्वाती सिंह, श्री शिवराम सिंह ज्येष्ठ प्रमुख शंकरगढ़, अरूण कुमार भदौरिया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को मै अपने **पूज्य पिता श्री राजकुमार सिंह** एवं **माता सरस्वती सिंह** को समर्पित कर रहा हूँ। मेरी स्व. भगिनी श्रीमती प्रतिभा सिह जिनका इस संसार में नाममात्र शेष है की आत्मा इस शोध के

प्रस्तुतीकरण से अवश्य ही आह्लाद से ओत-प्रोत होगी। यदि वह जीवित होती तो ऐसे शुभ अवसर पर उसके आनन्द का ठिकाना न होता।

मेरे शोध प्रवन्ध में मेरे छोटे भाई विद्याभास्कर सिंह एडवोकेट हाईकोर्ट, आशुतोष सिंह, अनिल कुमार सिंह तोमर एवं भातृजा कु. छाया सिंह का विशेष योगदान रहा जो मुझे समय-समय पर शोध सामग्री उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करते रहे है जिससे मै उनके प्रति आभारी हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य में शिव वहादुर सिंह, पवन सिंह तोमर, पंकज सिंह भदौरिया, छोटी भागिनी संन्ध्या सिंह, रचना सिह, उपमा सिंह, पूर्णेन्दू सिंह भाँजा आशीष भदौरिया, दिव्या, शरद, शिशिर, श्रद्धा, मेरे प्रिय भतीजे तपन एवं तुषार, मुक्ता, आस्था एवं भांजी आदिति का सहयोग एवं स्नेह वरावर मिलता रहा।

इस शोध प्रवन्ध के कम्प्यूटर टंकण कार्य एवं सजा सज्जा के लिए जयहिन्द कम्प्यूटर्स के निदेशक (आलोक श्रीवास्तव) का मै हृदय से आभारी हूँ एवं संस्था सहयोगी अतुल श्रीवास्तव, समर वहादुर सिंह का भी हमें भरपूर सहयोग मिला।

मनोज सिंह

मनोज सिंह

शोध-प्रवन्ध के सन्दर्भ में मेरे समस्यों के निराकरण के लिए मेरे मित्रों में डॉ0 अनिल कुमार सिंह भदौरिया, परामर्शदाता उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्व विघालय, शत्रुमर्दन सिंह, डॉ0 ओ0पी0 सिंह, प्रा0 इति0 अजय वहादुर सिंह अंग्रेजी विभाग, राजेन्द्र सिंह यादव, अनिरूद्ध श्रीवास्तव प्रा0 इति0 (सभी सी0 एम0 पी0 डिग्री कालेज) प्रमुख रहे।

प्रस्तुत शोध प्रवन्ध प्रस्तुत करने मे मेरे **पिता तुल्य श्री दल बहादुर सिंह** जो मुझे समय-समय पर शोध प्रवन्ध लिखने के लिए उत्साहित करते रहे है जिसके कारण यह शोध प्रवन्ध आज मै प्रस्तुत कर पा रहा हूँ।

सदैव आशीर्वाद प्रदान करने वालों में श्री सूवेदार सिंह, श्रीमती सरस्वती सिंह, श्री दल वहादुर सिंह, श्री श्याम सिंह वरिष्ठ वैज्ञानिक गन्ना अनुसन्धान केन्द्र कुशीनगर, श्रीमती पार्वती सिह, श्री राजवली सिंह, रमेश सिंह, हंस कुमार सिह, कुंवर भारत सिंह, श्री सी. पी. सिंह रिटायर्ड आई.जी (सी.आर.पी.एफ.), श्री अमर नाथ सिंह भदौरिया, श्रीमती गीता सिंह, आशा सिंह तोमर, श्रद्धेय वड़े भ्राता श्री दिनेश सिंह एडवोकेट, कुँवर रंजन सिंह, प्राचार्य मॉ सरस्वती वाल विघा मन्दिर, वड़ी भाभी श्रीमती निर्मला सिंह, स्वाती सिंह, श्री शिवराम सिंह ज्येष्ठ प्रमुख शंकरगढ़, अरूण कुमार भदौरिया।

प्रस्तुत शोध प्रवन्ध को मै अपने **पूज्य पिता श्री राजकुमार सिंह** एवं **माता सरस्वती सिंह** को समर्पित कर रहा हूँ। मेरी स्व. भगिनी श्रीमती प्रतिभा सिंह जिनका इस संसार में नाममात्र शेष है की आत्मा इस शोध के

अनुक्रमणिका

प्रथम - अध्याय

प्रस्तावना

प्रस्तावना

पुराण भारत का सच्चा इतिहास है । पुराणों में भारतीय जीवन का आदर्श, भारत की सभ्यता , संस्कृति तथा भारत के विघा वैभव के उत्कर्ष का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है । पुराण इस अकाट्य सत्य के घोतक हैं कि भारत आदिजगदगुरु था । पुराण न केवल राजवंशों का इतिहास है अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी उन्नति का मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

वेदों की महिमा अपार है, पर उनकी शब्दावली दुर्बोधि और प्रतिपादन प्रकिया पर्याप्त जटिल है । वेदों को बड़ी कठिनता से ठीक-ठीक समझा जा सकता है परन्तु पुराण अकेले ही उनके समस्त अर्थों को सरल शब्दों में सामान्य बुद्धि वाले पाठकों को हृदयंगम करा देते हैं ।

पुराणों में वेदों की समस्त पद्धति सरल ढंग से बताई गई है । इनमें भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान और कल्याणकारी जानकारियाँ उपलब्ध हैं । यह पुराण-वाडंमय वर्तमान के समस्त विश्व- साहित्य की अपेक्षा सभी प्रकार से शुद्ध सभ्य भाषायुक्त , सुबोध कथाओं से समन्वित और मधुरतम पद विन्यासों से समलंकृत है।

संस्कृत वाङ्‌मय मे पुराणो का एक विशिष्ट स्थान है । इसमें वेदों के गुढ़ार्थ के स्पष्टीकरण की अपूर्व क्षमता है। अतः पुराण सर्वथा वेदानुकूल है । पुराणों का एक भी विषय वेद विरूद्ध नहीं है। और इसकी प्रमाणिकता के प्रति भी संदेह नहीं है ।

वेद पुराण-स्मृति न्याय दर्शन आदि में पुराणों की अति प्राचीनकता सिद्ध की गयी है :-

ऋचः समानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

उच्छिंष्टाज्जाज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ।। 24।।

अर्थववेद।।11/7/24

इतिहासं पुराणं पंचमं वेदानां वेदम् ।।62।।

न्याय दर्शन।।4/1/62

पुराणं सार्वशास्त्राणां प्रथम ब्रह्मणा स्मृतम् ।

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः ।।

मत्स्य पुराण।53/3

पुराण ' शब्द सुनते ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुराण क्या है ? इसका अर्थ क्या - क्या है ? अनेक ग्रन्थों में इसकी व्याख्या कैसे की गई है ।

' पुरा अपि नवं पुराणम् ' से यह प्रतीत होता है कि पुराना होने पर भी जो नवीन हो वह पुराण है । वायु पुराण के अनुसार :-

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत स्मृतम ।

वायु0।।1/1/83

जो पूर्व में सजीव था , वह पुराण कहा गया है। हमारे धर्म-शास्त्रों में पुराणों की बड़ी महिमा बखान किया गया है

उन्हे साक्षात हरि का रुप बताया गया है । जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत को आलोकित करने के लिए भगवान सूर्य के रुप में प्रकट होकर बाहरी अन्धकार को नष्ट कर देते हैं। उसी प्रकार हमारे ह्रदयान्धकर को दूर करने के लिए हरि पुराण विग्रह धारण करते हैं।

वेदों की भॉति पुराण भी हमारे यहॉ अनादि माने गये हैं और उनका रचयिता कोई नहीं माना गया है लेकिन बाद में व्यवस्थित ढ़ंग से संकलन कर्ता वेद व्यास को माना जाता है । इसकी प्राचीनता के विषय में इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि सृष्टि कर्ता ब्रह्मा जी भी पुराणों का स्मरण करते हैं ।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथम ब्रहमणा स्मृत्।

पुराण विद्या महर्षियों का सर्वस्व है। 20वीं तथा 21वीं शताब्दी जिसे विज्ञान का मध्यान्ह् काल माना जाता है, किन्तु जितने भी ज्ञान विज्ञान आज तक उच्च भूमि पर पहुँच चुके हैं, जितने अभी अधूरे तथा अभी गर्भ में ही हैं । उनमें से एक

भी ऐसा नहीं है, जिसके सम्बन्ध में पुराणों में कोई उल्लेख न मिलता हो । हजारो वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों को इन सब बातों का ज्ञान था , जो आज के ज्ञान-विज्ञान में है अथवा नहीं है।

राजनीति , धर्म-नीति, इतिहास, समाज-विज्ञान, ग्रह-नक्षत्र ,विज्ञान,आयुर्वेद, भुगोल, ज्योतिष आदि समस्त विघाओं का प्रतिपादन पुराणो में हुआ है । पहले हम समझते थे कि पुराणों में कथायें ही होगी परन्तु जब हमने इसका अध्ययन किया तब तो हम चकित रह गये । संसार का ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो पुराणों में न हो । वेदों का जहॉ मुख्य प्रतिपाघ विषय यज्ञ है वहीं पुराणों का मुख्य विषय लोकवृत (चरित्र) है । लोकवृत्तीय समाज में प्रमुख स्थान मानव का होता है ।

समस्त जीवों का मूलाधार जल,वायु,सूर्य तथा पृथ्वी है। अतः इसी लिए पुराणों में इसके संरक्षण की बात कही गयी है । वैसे पुराणों के समय में पर्यावरण जैसी कोई समस्या की बात नहीं कही गयी है।

पुराणों के समय में पर्यावरण जैसी कोई समस्या नहीं थी फिर भी पुराणों मे इसके सरक्षण को धर्म वताया गया है। अतः इससे यह प्रमाणित होता है कि प्राचीन काल में हमारे ऋषि पर्यावरण के संरक्षण तथा पर्याप्त संतुलन बनाए रखने की बात पर बल देते थे। यह तथ्य आज के परिवेश को देखते हुए भी अति प्रासांगिक है क्योंकि वर्तमान मे मानव विज्ञान तथा उसके द्वारा बनाए गए यंत्रों पर आधारित होता जा रहा है जिससे न केवल पर्यावरण असंतुलित हो रहा है अपितु प्रदूषित भी होता जा रहा है । यहॉ पर यह यक्ष प्रश्न भी हमारे सामने आता है कि वर्तमान यान्त्रिक जीवन शैली को अपना कर के आज का मानव किस दिशा में प्रगति कर रहा है ? क्या इस प्रकार की असंतुलित सोच से हम संपूर्ण मानव जाति का ही अस्तित्व तो खतरे में नहीं डाल रहे है ? इन प्रश्नों से उपजी शंकाओं का समाधान केवल पुराणों में वर्णित तथा ऋषिओं द्वारा दिए गए प्राकृतिक नियमों पर चल कर ही प्राप्त हो सकता है । अतएव , समस्त मानव जाति को पुराणों में दिए गए सुविचरित आख्यानों पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए तथा अपनी जीवन शैली को पर्यावरण के अनुकूल बनाना चाहिए ताकि हम अपनी आने वाली पीढ़ी को एक स्वच्छ तथा संतुलित पर्यावरण प्रदान कर सकें ।

पर्यावरण क्या है ?

सस्कृत के वृ धातु का अर्थ है आवृत करना, जो भूमण्डल को परितः आवृत करे वही पर्यावरण है । पर्यावरण की परिधि मे समग्र सृष्टि गृहीत है । वैदिक वृत ही अवेस्ता मे वॅरेथ (warrenth) अग्रेजी में वीदर (Weather) हो गया है।

पर्यावरण शब्द ' परि ' और आवरण से मिलकर बना है । इसके अन्तर्गत हमारे चारो ओर का विस्तृत वातावरण आता है जिसमे सभी जीवित एव निर्जीव वस्तुएँ और पदार्थ सम्पूर्ण जड़ ओर चेतन जगत सम्मिलित हे । पृथ्वी के चारो ओर प्रकृति तथा मानव निर्मित समस्त दृश्य या अदृश्य पदार्थ पर्यावरण के अंग हैं । हमारे चारों ओर का वातावरण और उसमे पाये जाने वाले प्राकृतिक , अप्राकृतिक जड तथा चेतन जगत सभी का मिला जुला नाम पर्यावरण है और उसके पारस्परिक तालमेल तथा अन्योन्य किया व पारस्परिक प्रभाव को पर्यावरण सन्तुलन कहते है।

पर्यावरण अनेक कारकों का सम्मिश्रण है , अर्थात तापक्रम , प्रकाश , जल , मिट्टी इत्यादि । कोई वाह्य वल ,पदार्थ या स्थिति जो किसी भी प्रकार किसी प्राणी के जीवन को प्रभावित करती है उसे पर्यावरण का कारक माना जाता है

हमारा पर्यावरण , हमारे चारो ओर का समग्र वातावरण है जिसमे " जल,वायु,पेड़-पौधे ,मिट्टी और प्रकृति के अन्य तत्व तथा जीव-जन्तु आदि शामिल हैं । हमारे चारो ओर का वातावरण एवं परिवेश जिसमें हम आप और अन्य जीवधारी रहते हैं , सब मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं। पर्यावरण का तात्पर्य उस समूची भौतिक जैविक व्यवस्था से भी है जिसमें समस्त जीवधारी रहते हैं , स्वभाविक विकास करते हैं तथा फलते-फूलते हैं । इस तरह वो अपनी स्वभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं । ऐसा पुराणों में दिए गए उद्धरणों से भी स्पष्ट होता है।

किरी भी जीव के पर्यावरण मे वे राभी भौतिक व जैविक घटक सम्मिलित होते हैं । पृथ्वी से करोड़ों मील दूर होते हुए भी जीवो के पर्यावरण के लिए सूर्य का प्रकाश उतना ही महत्वपूर्ण है जितना जल,वायु तथा मिट्‌टी आदि । पर्यावरण के सभी घटक और कारक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । जैसे - सूर्य-उर्जा से जल व वायु गर्म होती है जिससे वाष्प बनती है और वायु उपर उठती है, वायु के वहने के साथ वाष्प बादलों के रुप मे एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाती है । बादलों द्वारा सूर्य की उर्जा को पृथ्वी तक पहुचने में बाधा उत्पन्न होती है । जिससे जल बरसता है फिर पेड़-पौधे पनपते हैं । अतः सपष्ट है कि पर्यावरण के किसी भी कारक के बिना अन्य कारक प्रभावित नहीं हो सकते हैं वस्तुतः पर्यावरण के कारक आपस में इस तरह गुँथे होते हैं जैसे जाल का ताना बाना ।

पर्यावरण एक व्यापक शब्द है , सीधे शब्दों में हम कह सकते हैं कि पर्यावरण है तो हम हैं , इसके विना किसी भी प्राणी अथवा वनस्पति का कोई भी अस्तित्व नहीं है । जल,

थल और वायुमण्डल किसी भी स्थान के पर्यावरण के मुख्य अग होते हैं । इसके साथ मानव की जीवन कियाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभावित करने वाले सभी भौतिक तत्वों तथा अन्य जीवों का भी पर्यावरण के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है । पर्यावरण में समय के अनुसार परिवर्तन होना स्वभाविक ही है । जीवों तथा वनस्पतियों के विकास का सीधा सम्बन्ध पर्यावरण से है । इस लिए एक निश्चित सीमा तक प्राकृतिक परिवर्तनों को यथा बारिश अकाल , झंझावात , बाढ़ तथा भूकंप आदि का सामना करने का तथा उससे बचाव का उपाय इत्यादि करते हुए जीवों को प्रकृति के ही अनकूल ढलने के लिए सामर्थ्य स्वॅय पर्यावरण ही प्रदान करता है । ऐसा वैज्ञानिकों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है । जैसे कि चार्ल्स डारविन का प्राकृतिक चयन का सिद्धॉत जिसके अनुसार प्रत्येक जीव की अग्रिम तथा विकसित प्रजाति के रुप में जन्म का कारण प्राकृतिक घटनाओं तथा पारिस्थिकी से उसका संघर्ष है । अतएव इस धरा पर विभिन्न प्रकार के जीव जन्तुओ तथा वनस्पतियों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं का अप्रत्यक्ष कारण पर्यावरण ही है ।

पृथ्वी का धरातल और उसकी सारी प्राकृतिक दशायें- प्राकृतिक संशाधन , भूमि , जल ,पर्वत - मैदान , पौधे सम्पूर्ण प्राणी जगत , जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव को प्रभावित करती है । वे पर्यावरण के अन्तर्गत आती हैं ।

पर्यावरण का स्वच्छ होना सम्पूर्ण मानवता के लिए अति आवश्यक है । यद्यपि , हमारे देश की प्राचीन संस्कृति पर्यावरण के संरक्षण के अनुरुप ही रही है । प्रत्येक जीव की पर्यावरण के कारकों के प्रति एक निश्चित सहनशीलता होती है , सहनशीलता की सीमा से अधिकता के कारण मानवीय जीवन कियाओ पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । ऐसा पौराणिक धर्म ग्रन्थों में वर्णित है ।

पर्यावरण के घटक पारस्परिक ताल-मेल नहीं रखते तो पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति व्याप्त हो जाती है। इसी लिए पारिस्थिकी सन्तुलन को वनाये रखने के लिए हमारे प्राचीन मनीषीगण पर्यावरण के उपादनों पर दैवीय रुपों का प्रत्यारोपण किया है । इसी लिए पर्यावरण के सहायक तत्वों

के सम्वर्धन के प्रति ऋषि गण काफी उत्साहित दिखाई देते है तथा पर्यावरण के विकास के तत्वो को धर्म तथा धार्मिक कियाओ से जोड़कर आम जनता को इसकी (पर्यावरण) महत्ता का दर्शन कराया । जिससे आम जनता भी पर्यावरण के विकास में अपना योगदान दे सके । पौराणिक युगीन साहित्यकार् शूद्रक ने अपने प्रसिद्ध सस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम' मे भी तरह तरह के पर्यावरण पर आधारित उत्सवों जैसे बसन्तोत्सव , शरदोत्सव आदि का हर्षोल्लास से तत्कालीन नगरों में मनाए जाने का जिक किया है जिसमे आम जनता भी बढ चढ़ कर भाग लेती थी । इससे यह सिद्ध होता है कि पौराणिक समाज विशेष रुप से नगरीय समाज पर्यावरण के संतुलन के प्रति जागरुक था।

पौराणिक कालीन सस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास के लगभग समस्त नाटकों में प्राकृतिक सौन्दर्य का विशद तथा मनोहारी वर्णन है जिससे यह पता चला है कि

जीवन के प्रत्येक स्तर चाहे वह साहित्य सृजन हो या फिर धार्मिक कियाओ का संपादन हो , पौराणिक समाज पर्यावरण के समस्त घटको में उचित संतुलन बनाए रखने के प्रति सचेष्ट था।

हमारा पर्यावरण हमारे चारों ओर का समग्र वातावरण है जिसमें शामिल है जल,वायु ,पेड़-पौधे , मिट्टी और प्रकृति के अन्य तत्व जीव-जन्तु आदि । पर्यावरण के सभी तत्व प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से मानव-स्वास्थ्य और मानव कल्याण को प्रभावित करते हैं ।

अतः पर्यावरण के मुख्य घटको पृथ्वी , जल , वायु , अग्नि तथा सूर्य आदि का हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में विशद वर्णन है । जिनके संरक्षण तथा संवर्द्धन की बात हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों (वेद,उपनिषद तथा पुराणो) में की गई है । तथा पर्यावरण के सभी धटकों की पूजा की बात स्वीकार की गयी है ।

आर्यों के मूल देश उत्तरी ध्रुव और उसके आस पास उपल प्रपात (ओला गिरना) होने के कारण वृत

अर्थात पर्यावरण को शत्रु मान लिया गया है क्योंकि वह मानवता के लिए अनुपयोगी और घातक था । उत्तरी ध्रुव में छः महीने की रात और छः महीने का दिन होता है , इसी को रामायण में कुम्भकरण की संज्ञा दी गयी है । उपल प्रपात बहुल ईरान में वर्ष में 10 महीने तक सूर्य नहीं दिखाई पड़ता था । इस ऋतु दैत्य को दसमुख - दशकन्धर रावण की संज्ञा दी गयी है । इसे पर्यावरण का बुरा पक्ष माना जा सकता है । इसी लिए मानवीकृत इन तीनों को (ऋतु,रावण और कुम्भकरण) मानवता का विरोधी राक्षस कहा गया है । जिससे मानवता का हित होता है , कल्याण होता है और जो मानवता के लिए उपयोगी हो, पर्यावरण का वही रुप देवता है तथा वन्दनीय है । भारत आगमन पर आर्यों को प्रकृति सुन्दरतम रुप में प्राप्त हुई थी । प्रकृति का हर रुप शोभनीय था, सुहावना था , चित्ताकर्षक एवं उपयोगी था ।

उसने (प्रकृति) आर्यों के मन को मोहा , उन्होंने (आर्यों) प्रकृति के इस रुप पर अपने को न्योछावर कर दिया

था । प्रकृति का हर अग मानवता के लिए उपयोगी था, प्रेरणा प्रद था , मनमोहक एव चित्ताकर्षक था । उन्होंने इन सब की प्रशसा की और उनका (प्रकृति) स्तवन किया ।

यह ' प्रकृति पूजा ' ही भारतीय आर्यो का वृहद धर्म बन गया । जो प्राणियों को धारण करे , मानवता को धारण करे , उसके लिए सुखद हो , शोभनीय हो तथा उपयोगी हो वही धर्म है और वही अनुकरणीय है । वैदिक ऋषियों ने इसे ही धर्म की सज्ञा दी है । परन्तु बाद में चलकर यही मत विकृत हो गया तथा यह माना जाने लगा कि सामाजिक व्यवस्था के लिए जिसे मानव धारण करे , वही धर्म कहलाने योग्य है । यही धर्म मानवता के प्रति हो सकता है , देश , जाति और राष्द्र के प्रति हो सकता है । प्रकृति के प्रति हो सकता है , समग्र प्राणियों के प्रति हो सकता है । यही पर्ववर्ती धर्म का सार तत्व है । वेद ज्ञान राशि है , साक्षात कृत धर्मा है , ऋषियों के मुख से निकले सहज उद्गार हैं ।

ऋषियों का मन प्रकृति के अंग - प्रत्यंग में अणु-अणु में रम गया था , उसमें समा गया था इसी कारण वेद प्रकृति पूजा का उदगार है ।

उसका उद्घोष है , वस्तुतः प्रकृति पूजा ही धर्म है । प्रकृति ही जीवन का आधार है , समग्र प्राणियो का जीवन बिना सूर्य के निष्प्राण है । सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है : -

सूर्यो आत्मा जगतः वस्तुतश्च।

समग्र ब्रहमाण्ड में सूर्य ही एक मात्र चेतना का आधार है , वह प्रकाश का आदि देव है । प्रकाश के बिना जीवन असम्भव है । सूर्य ही ' सवित्र ' है । सवित्र का अर्थ है प्रेरक - देव। सविता मानवों का प्रातः कर्मों में प्रवृत करता है । संध्या बेला में सविता ही कार्य से निवृत हो गृहों में विश्राम करता है । सविता की प्रेरणा से समग्र प्राणी अनुप्राणित हैं। देव सविता का गायत्री मंत्र समग्र भारतीयों की उपासना का श्रेष्ठतम धर्म है । सूर्य का एक रुप पूषन है । यह खोये , नष्ट हुए पशुधन का प्रापक देव है , यह मार्ग से भटके जनों का पथ - प्रदर्शक है । सूर्य का ही एक रुप मित्र है । यह मानवों का सखा रुप है , पृथ्वी का जो भाग सूर्य की ओर है उसका अधिष्ठाता मित्र है जो अन्धकार की ओर है उसका

अधिष्ठाता वरुण है । दिति ईरान भूमि है और भारत अदिति ' भूमि ' है । अदिति के पुत्र आदित्य है । द्वादश रुप सूर्य भारत भूमि अदिति के पुत्र कहे गये हैं।

आर्य कभी उत्तरी ध्रुव में निवास करते थे , वहाँ की छः महीने का रात और छः महीने का दिन कुम्भकरण है , ईरान में 10 महीने का का उपल प्रपात दशमुख रावण है। राम आर्यों के निवास और प्रसार का देवता है । वह दुर्दान्त दशमुख को आदित्य हृदय के पाठ से समाप्त करता है । राम आदित्य हृदय के स्रोत से रावण को मारते हैं ।

सूर्य जो ईरान के 10 महीने के उपल प्रपात को नष्ट करके पर्यावरण के अनुकुल तथा मानव के रहने योग्य क्षेत्र बनाया । अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यों का जो प्रसार हुआ उसमें पर्यावरण का मुख्य योगदान रहा है । क्योंकि उत्तरी ध्रुव का वातावरण अच्छा नहीं था । वहाँ जीवन कष्ट साध्य था अतः वातावरण की खोज में आर्यों का प्रसार भारत भूमि में हुआ । इससे स्पष्ट है कि पर्यावरण का जो सुखद पक्ष था उसे ही आर्यों नें चुना ।[1]

---

1. समुद्र मंथन- प्रो0 हरिशंकर त्रिपाठी

<u>तृतीय - अध्याय</u>

पशु पक्षी एवं पर्यावरण

पशु पक्षी एवं पर्यावरण

पर्यावरण की सुरक्षा मे पशुओ का विशेष स्थान है, ऋग्वेद में गो , अश्व , वृषभ , अज , अपि , भेड़, श्वान आदि का पर्याप्त वर्णन है । जहॉ कृषि के लिए गौ तथा वृषभ का उपयोग था , वहीं युद्ध के लिए अश्व का था । प्रारंभिक अवस्था में श्वान का मानव समाज में अत्याधिक उपयोग था । ऋग्वेद में यम के श्वानों का उल्लेख है : -

अति द्रव सारमेयो श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना यथा।

अथा पितृन्त्सुविदित्रां उपेहि यमेन ये सथमादं भवन्ति। ।10।।

हे सघोमृत (जीब) , चार नयन वाले ,चित्रित शरीर के जो दो पुत्र श्वान हैं ; वो तुम्हे दिखाई पड़ेंगे । उनके द्वारा प्रदर्शित अच्छे मार्ग से अत्यन्त शीघ्र गमन करो ।अनन्तर यमराज के साथ एक ही पंक्ति में प्रसन्नता से जो अन्नादि उपभोग कर लेते हैं । उन अपने अत्यंत उदार पितरों के पास उपस्थित हो जाओ।

इस ऋचा में हाल में मृत व्यक्तियों को उपदेश दिया गया है कि उचित मार्ग से आगे बढ़कर सभी बाधाओं को हटाते हुए यमलोक ले जाने वाले दो संरक्षक श्वानों के पास वह जल्द आ पहुँचें ।

यौ ते श्वानों यम रक्षितारौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।

ताम्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वति चास्मा अनमीवं

च देहि //ऋग्वेद 10-14-11//

हे यमराज! मनष्य मात्रों पर ध्यान रखने वाले,चार नयन वाले तथा मार्ग के संरक्षक ये जो तुम्हारे दो रक्षक श्वान हैं। उनके अधीन इसे कर दो तथा कल्याण और आरोग्य इसे प्राप्त करा दो।

उरुणसावसुतृया उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतौ जनॉ अनु।

तावस्मभ्यं दृश्ये सूर्याय पुनदतिमसुमघेह भद्रम//12//

ऋग्वेद-10-14 -12

विशाल नासिका युक्त (मुमूर्ष लोगों के) प्राण अपने अधिकार में रखने वाले महापराकमी यम के दो दूत मर्त्यलोक में भ्रमण करते रहते हैं । वे आज हमारे मगलमय प्राण फिर प्रत्यार्पित कर दें । ताकि हमें नित्य सूर्य दर्शन हो सके ।

ऋग्वेदीय शर्मापणि संवाद में पणियों द्वारा चुराई गयी पशु संपति का पता लगाने शर्मा नाम की कुतिया पणियों के पास गई थी । उसने चुराई गयी गायों का पता लाकर इन्द्र को सूचित किया था । इसी तरह अश्वधारी युगल देवता का नाम अश्विनौ पड़ा । अवेस्ता में पृथ्वी गो रुप धारण कर अहुर के पास जाती है और उस पर होने वाले अत्याचार की सूचना अहुर को देती है । पौराणिक साहित्य में भी पृथ्वी गो रुप धारण कर विष्णु से अपनी रक्षा की याचना करती है। भगवान कृष्ण तो स्वॅय गोपाल हैं । उनका समस्त किया - कलाप गो , गोप-गोपियों के लिए समर्पित है । बलराम का आयुध ही हल है, इसीलिए वे हलधर कहलाते हैं ।

राम कथा में वानर और रीक्ष यही दोनों सहायक हैं । राम कथा में राम निवास का देवता है , वायु रुप हनुमान पर्यावरण है । सीता कृषि संपति है ।

सीता के परित्याग करने पर लव-कुश अर्थात लता और कुश की उत्पत्ति होती है ।

इसी प्रकार राम और कृष्ण पर्यावरण से संबद्ध हैं । पौराणिक देवताओं में गणेश गजमुख हैं , उनका वाहन चूहा है, गंगा का मकर है , सरस्वती का मयूर , दुर्गा का वाहन सिंह , शिव का वाहन वृषभ है , विष्णु का वाहन गरुण , लक्ष्मी का वाहन कमल और उलूक , शीतला का गर्दभ , भैरव का श्वान , स्कन्द का मयूर हैं । दुर्गा उपासना में श्रृंगाल शिवा को बलि देने का विधान है । पितृ पक्ष में कौअे को खीर खिलाने का विधान है । चींटी और मछलियों को चारा देने की परंपरा है । इस के अतिरिक्त कच्छप , मत्सय , वाराह , नृसिंह को परम ब्रम्ह विष्णु का अवतार माना गया है । जैसा कि ऋग्वेद में उद्दृत है -

वास्तोष्पते प्रति जानीहय स्मान्त्स्वावेशो अनमीयो भवा नः ।

यत्वमहे प्रति तृन्नो जुपस्व शं नो भव शं चतुष्पदे।।1।।(56) (7.54) ऋक्सूक्तसती ऋग्वेद 7.54.1

हे वास्तोष्पते मुझसे आत्मीयता रखो , सुन्दर निवास वाले और हमारे लिए रोग रहित होओ (रहो) जो तुम्हे हम समर्पित करते हैं उससे प्रसन्न होओ । हमारे द्विपाद और चतुष्पाद प्राणियों के लिए कल्याण पद हो ।(होओ)

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।

अजयस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व । ।2 । ।   ऋक्सूक्तसती ऋग्वेद 7.54.2

हे वास्तोष्पते ! हमारे लिए सुन्दर , विपत्ति पार करने वाला होवो । गायों और अश्वों से घर को समृद्धि करने वाला होवो । तुम्हारी मित्रता के लिए हम जरा रहित रहें। जैसे पिता - पुत्र के प्रति प्रेम रखता है उसी प्रकार हमसे प्रेम रखो ।

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते समीक्षमहि रण्वया गातुमत्या ।

याहि क्षेम उत् योगे उत् योगे वरै नो यूपं पाल स्वस्तिभः सदा नः । ।3 । ऋक्सूक्तसती (ऋग्वेद) 7.54.3

इस प्रकार सभी देवता कहीं न कहीं पशुओं से संबद्ध दिखाई देते हैं । इससे स्पष्ट होता है कि पशु- पक्षी पर्यावरण के संवाहक थे क्योंकि सभी देवता किसी न किसी रुप में पशु - पक्षिओं से संबद्ध दिखाई पड़ते है अतः इससे यह ज्ञात होता है कि पशु पक्षी पर्यावरण के अभिन्न अंग थे ।

मानव और पशु-पक्षियों का सम्बन्ध प्राचीन काल से ही अति घनिष्ट रहा है । क्योंकि ये कही न कहीं एक दूसरे के सहायक अवश्य रहें है । अतः सभ्यता के इतिहास में इसे कम करके नहीं ऑका जा सकता है । पशु- पक्षी भी पर्यावरण के अभिन्न घटक होते हैं । इस लिए पुराणों आदि में इसके संरक्षण की बात कही गयी है । इसी लिए इन्हे देवताओं के साथ जोड़ा गया है क्योंकि प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने के लिए इनका संरक्षण अति आवश्यक है । इसी लिए हमारे प्राचीन धर्मग्रन्थों में पशु पक्षियों को कहीं दैवीय रुप में तो कहीं दैवीय शक्ति के सहायक के रुप में स्वीकार किया गया है । जैसा कि अग्निपुराण के

नौवे अध्याय में सम्पाति , हनुमान ,सुग्रीव का जिक आया है। मूलतः ये सभी पशु वर्ग से संबंधित हैं लेकिन मानव समाज तथा पर्यावरण में अपने योगदान के कारण अविस्मरणीय है तथा इन्हे पौराणिक मान्यताओं के अनुसार देवताओ में स्थान मिला है । इससे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समाज के पुनर्निमाण मे पशु-पक्षी का , जो कि पर्यावरण के अभिन्न अंग माने जाते हैं , महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

प्राचीन धर्मग्रन्थों जैसे वेद, पुराण तथा पुराणोत्तर साहित्यों में पशु- पक्षियों में मानवीकरण का प्रत्यारोपण किया गया है जैसे रामायण में सुग्रीव, हनुमान ,जाम्वंत,जटायू,सम्पाति,नल-नील, अयोध्यापति श्री रामचंद्र की मानव कल्याण के प्रयासों में अपना योगदान प्रदान किये थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि पशु - पक्षी मानवता के कल्याण के लिए सदैव तत्पर रहे हैं । पर्यावरण के संतुलन में पशु-पक्षी सदा ही मानव के साथ रहे हैं लेकिन आज का मानव अपनी क्षुद्र लिप्सा के कारण उन्हे नष्ट कर रहा है जो कि आज के पर्यावरण के लिए चुनौती है ।

बहुत से पशु पक्षी अपने वंश रक्षा के लिए मानव समाज का मुँह ताक रहे है ।

बहुत से पशु- पक्षी की प्रजातियाँ मानव के कुत्सित स्वार्थ के कारण विलुप्त हो गई हैं और कई प्रजातियाँ विलुप्त होने की कगार पर हैं । अतः पर्यावरण के प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के लिए इनका संरक्षण जरुरी है ।

पुराणकालीन समाज में ऐसे कई उदाहरण आए हैं जहाँ पशु-पक्षी के संरक्षण के लिए मानव समाज को उचित दिशा निर्देश दिए गए हैं । इसके लिए वैदिक समाज तथा पौराणिक समाज ने धर्म का सहारा तथा मार्गदर्शन लिया और इनके प्रति हिंसा को प्रतिबंधित किया है इससे यह सपष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में पर्यावरण की समस्या न होते हुए भी हमारे ऋषिगण पर्यावरण संतुलन के प्रति सचेष्ट थे जैसा कि अग्नि पुराण के 231 अध्याय में दिया भी गया है कि-

गोश्वोष्द्रगर्दभश्वानः सारिका गृहगोधिका ।

चटका भासकूर्माघाः कथिता ग्रामवासिनः ।।11।।

गाय , घोड़ा ,उँट , गधा , कुत्ता , मैना , छिपकली , गौरैया , भास ; पक्षी - विशेषद्ध तथा कछुए इत्यादि ग्रामवासी पक्षी कहलाते हैं इनका वध निषिध माना गया है।

कुछ पशुओं को छोड़कर इनमें ऐसे भी पशु-पक्षी हैं जिनका मानव समाज में कोई योगदान नहीं है फिर भी इनके संरक्षण की बात करना हमारे ऋषियो के उच्च बौधिक जागरुकता का प्रतीक है । इससे यह स्पष्ट है कि वे पर्यावरण के संतुलन के प्रति सजग दिखाई पड़ते है ।

अजाविशुकनागेन्द्राः कोलो महिषवायसौ।

ग्राम्यारण्या विनिर्दिष्टाः सर्वे3न्ये वनगोचराः ।

अग्निपुराण / /231-12/

मार्जारकुक्कुटौ ग्राम्यौ तौ चैव वनगोचरौ।

तयोर्भवति विज्ञानं नित्यं वै रुपभेदतः / /13/ /

बकरी, भेड़ा, तोता, हाथी, सुकर, महिष तथा कौआ ये जीव ग्राम्य और अरण्य दोनों के जीव कहे गए हैं। विलाड़ और मुर्गा ग्राम्य जीव होते हुए भी वन में देखे जा सकते हैं। रुप भेद से इनकी पहचान का निश्चय किया जाता है कि कौन अरण्य के पशु हैं और कौन ग्राम्य के पशु हैं ।

सॉप, मयूर, चकवाक, गधा, हारिल, कुलाह, जंगली मुर्गा, बाज, गीदड़, खंजन, बिच्छू, गौरैया, श्यामा, नीलकंठ, जलकाक, तोता, सारस, कुक्कुट, भरदल पक्षी और सारंग दीवाचर जीव हैं।। अग्नि पुराण।।231-14, 15, 16।।

वागुर्युकूलशरभकौंचाः शशककच्छपाः ।

लोमासिकाः पिंगालिकाः कथिता रात्रिगोचराः ।।17।

वागुरि, उलूक, शरभ, कौंच, कच्छप, श्रगाली, पिंगिरक ये रात्रिचर जीव हैं । ।।अग्निपुराण-237-17।।

हंसाश्च मृगमार्जारनकुलर्क्षभुजंगमाः ।

वृकारिसिंहव्याघोष्द्रग्रामशूकर मानुषाः ।।18।।

श्वाविदवृषभगोमायुवृककोकिलरारसाः ।

तुरगकौ गोधा हयूभयचारिणः ।।19।।

।।अग्निपुराण-231 अध्याय

हंस, मृग, विलाड़, नेवला, रीछ, सर्प, कुत्ता, सिह, बाघ, ऊँट, ग्राम्य शूकर, मनुष्य, साही, बैल, गीदड़, भेड़िया, कोयल, सारस, पीनर और गोह उभयचर प्राणी हैं ।

उपरोक्त सभी पशु - पक्षी पर्यावरण के विधायक पक्ष माने गए हैं क्योंकि इनमें से बहुत से पशु- पक्षी मानव द्वारा उच्छिष्ट पदार्थ तथा मरे हुए पशुओं का भक्षण करके वातावरण को शुद्ध रखते हैं । जिससे पर्यावरण हमारे रहने के अनुकूल होता है । अतः स्पष्ट है कि उपरोक्त पशु-पक्षी पर्यावरण के अभिन्न अंग माने गये हैं । इससे ज्ञात होता है कि जलचर थलचर तथा उभयचर जीव पर्यावरण के सहायक तत्व होते हैं

इसीलिए पुराणों मे इन पशु-पक्षियो के संरक्षण के लिए धर्म का सहारा लिया गया है । इसमें तमाम पशु-पक्षी ऐसे

हैं कि जिनसे हमें लगता है कि हमारे लिए इनकी कोई उपादेयता नहीं है लेकिन फिर भी पर्यावरण के लिए इनका विशिष्ट योगदान है । इसीलिए इनका संरक्षण मानवता ही के लिए ही नहीं अपितु समस्त प्रकृति के लिए इनका संरक्षण जरुरी है । ये हमारे पर्यावरण के लिए उपयोगी नहीं हैं बल्कि हमारे आर्थिक उपदानों में भी इनका विशेष महत्व है। वर्तमान समय में तमाम चिड़ियाघर तथा राष्ट्रीय पार्कों में चलाए जा रहे संरक्षण अभियानों में पौराणिक साहित्यों में वर्णित आदर्शों का पालन आवश्यक प्रतीत होता है । इससे पर्यटन का भी विकास होता है तथा इन जीवों का संरक्षण भी हो रहा है ।

लेकिन वर्तमान समय मे वनों की बेतहाशा कटाई तथा कृषि में व्यापक पैमाने में कीटनाशको का प्रयोग तथा अवैध शिकार की वजह से बहुत से दुर्लभ पशु-पक्षी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं । उनमें से कई प्रजातियाँ विलुप्त होने की कगार पर हैं तथा इन प्रजातियों को बचाए रखने के लिए और इनकी जनसंख्या वृद्धि के लिए सरकार को प्रयत्नशील होना चाहिए क्योंकि सभी पशु- पक्षियों का मानव

जीवन के साथ परोक्ष तथा अपरोक्ष रुप से घनिष्ठ संबंध रहा है । जैसे- गिद्ध , श्रृंगाल , कच्छप आदि पशु-पक्षी मरे हुए जानवरों का खाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाते हैं लेकिन मानव द्वारा अपने उपभोग के लिए इन पशु-पक्षियों का विनाश कर रहे हैं । अतः इन्ही सब कारणों से सरकार ने 1980 एव 1988 में वन संरक्षण नीति पारित किया । इन अधिनियमों के तहत पर्यावरण के स्थाई बचाव के लिए विशेष बल दिया गया है । स्वतंत्रता के पश्चात 1960 ई0 में

पशु कूरता अधिनियम पारित किया गया जिनमें कुछ पशु- पक्षियों को पूरी तरह अवध् घोषित कर दिया गया है अतः जो इन पशु- पक्षियों का शिकार करेगा उसे सरकार अपराधी मानकर दंड देगी ।

वर्तमान समय में जो पशु-पक्षियों के अस्तित्व पर खतरा है उसका जिम्मेदार मनुष्य है इन पशु-पक्षियों का पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि सभी जीव-जन्तु पर्यावरण के प्रमुख घटक होते हैं इस लिए इनका संरक्षण अति आवश्यक है । इन पशु-पक्षियों की उपादेयता

को देखते हुए प्राचीन कालीन धर्मग्रन्थों में इन्हे किसी न किसी देवता से जोड़ दिया गया है । जिससे आम जनता इनके प्रति सद्व्यवहार करे । तथा इनके संरक्षण के प्रति सचेष्ट रहे ।पुराणों में पर्यावरण के संतुलन के प्रति विशेष ध्यान ऋषियों का था । यह सर्वविदित है कि उस समय पर्यावरण का कोई संकट नहीं था फिर भी उनका दृष्टिकोण इसके प्रति सकारात्मक था क्योंकि निम्न से निम्न पशु-पक्षी का देवी देवताओं से संबंध जोड़कर उन्हे मानव की दृष्टि में सम्मान दिलाना था इसकी जानकारी हमे लगभग सभी पुराणों में मिलती है ।

अतः इन पशु-पक्षियों की प्रजातियों का विलुप्त होना पर्यावरण के लिए बहुत ही चिन्तनीय है क्योकि यह पारिस्थिकी क्षरण को दर्शाता है अतः इनका संरक्षण उनके लिए न होकर मानवता के संरक्षण के लिए है । इसलिए इनका संरक्षण नितॉत आवश्यक है । पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बनाए रखने के लिए इनका विकास जरुरी है । पशु - पक्षी हमारे जैविक वातावरण के महत्वपूर्ण अंग हैं । मानव कल्याण के हित में इस वर्ग का संरक्षण नितॉत जरुरी है ।

चतुर्थ - अध्याय

पंच महाभूत एवं पर्यावरण

पर्यावरण एवं पंचमहाभूत।

पर्यावरण के मुख्य घटक पंचमहाभूत हैं जिसके अर्न्तगत पृथ्वी जल वायु आकाश तथा सूर्य हैं । यही पर्यावरण के मुख्य स्रोत हैं इन्ही के अर्न्तगत समस्त सृष्टि का निर्माण होता है । इसके बिना सृष्टि की कल्पना करना बेमानी होगी ऐसा गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में लिखा भी है कि क्षिति,जल,पावक,गगन,समीरा से पंचभूत का निर्माण होता है।

पंचमहाभूत के निम्न अंगो का विवरण पुराणकालीन स्रोतों के अनुसार निम्न है।

तेज

तेज के अन्तर्गत सूर्य,अग्नि तथा चंद्रमा आते हैं।

सूर्य

सूर्य प्रकृति की महत्तम शक्ति का द्योतक है , जगत और जीवन का मूलाधार है । इसलिए आदिकाल से मनुष्य के हृदय में सूर्य के प्रति अपार श्रद्धा का भाव रहा है । विश्व के सभी धर्मो एव संस्कृतियों में सूर्य को एक सम्मानीय देवता के रुप में प्रतिष्ठित किया गया है । ऋग्वेद में सूर्य को एक प्रधान देवता के रुप में स्वीकार किया गया है ।

वैदिक वाग्ङमय के प्रमुख ग्रन्थों रामायण , महाभारत ,पुराणों तथा उपपुराणों मे सूर्य देवता की उपासना के विशद प्रमाण उपलब्ध हैं सर्वत्र ही उनके स्तवन और गुणगान मे अनेक मंत्रों तथा श्लोकों की रचना की गई है ।

पुराणों में वर्णित सौरतीर्थो से सौरसंप्रदाय की व्यापकता का ज्ञान होता है । भविष्य पुराण और साम्ब पुराण जैसे परवर्ती पुराणों से सौर संप्रदाय का विस्तृत परिचय मिलता है । यहॉ प्रत्यक्ष देवता सूर्य स्पष्ट रुप से सर्वातिशायी देवता है ।

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः ।

तस्मादभ्यदिका काचिद् देवता नास्ति शाश्वती।।

भवि0पुराण।।1-48-2

शिव महिमा पर आधारित पुराण को सूर्यपुराण नाम देने से प्रकट होता है कि सौर उपासना पर शैव मत का प्रभाव पड़ा । पौराणिक सौरोपासना वस्तुतः वैदिक तथा उत्तरपौराणिक सूर्योपासना के बीच एक महत्वपूर्ण कड़ी है । पुराणों में सूर्य देवता के स्वरुप मे परिवर्तन आया है। जहॉ वैदिक काल मे प्रकृति का प्रमुख देवता होकर सभी जीवों तथा वनस्पतियों का प्राण रुप था वहीं पुराणों के समय सूर्य को एक देवता के रुप मे ही स्वीकार किया गया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि सूर्य का प्रकृति देवताओं मे प्रमुख स्थान था क्योंकि सूर्य ही पर्यावरण का प्रमुख कारक है क्योकि वही समस्त पर्यावरणीय गतिविधियों का आधार नियामक है ।

सूर्य उपासना का स्वर्णिम काल गुप्तो के शासनकाल के बाद से मध्यकाल तक था सम्भवतः भविष्य स्कन्द , ब्रह्म , वाराह , विष्णुधर्मेत्तर तथा साम्ब आदि पुराणों का प्रणयन हुआ । इसमें सूर्य को प्रमुख देवता के रुप में स्वीकार किया गया है तथा उस समय के कुछ राजवंशों को सूर्य वंश से जोड़ा गया है ।

सातवीं शताब्धी में सूर्यभक्त मयूर ने सूर्य शतक की रचना की । जनश्रुति के अनुसार मयूर को भयंकर कुष्ठ रोग था जो सूर्य के प्रभाव से रोग मुक्त हुए थे जिसके फलस्वरुप उन्होंने सूर्य की महिमा में सूर्यशतक की रचना की । उन्होंने बताया है कि सूर्य के स्तवन तथा अर्चन से उन्हे भयंकर रोग से छुटकारा मिला । इसलिए उन्होंने सूर्य की महिमा का वर्णन किया ।

सूर्य का जितना महत्व धार्मिक दृष्टि से है उससे अधिक महत्व प्राकृतिक , आर्युवेदिक तथा पर्यावरणीय दृष्टि से है जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है कि ' सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषच ' कहकर ऋग्वैदिक ऋषियों ने जगत में सूर्य को सर्वोच्च शक्ति के रुप में स्वीकारा है । पुराणों में सूर्य का रोग निवारण तथा स्वास्थ्य लाभ के लिए विशद विवरण मिलता है । सूर्य पर्यावरण का सबसे प्रधान अंग है क्योंकि सूर्य के उदित होने से ही जीवों का जीवनचक शुरु होता है और सूर्य के अस्त होते ही जीवनचक रुक जाता है । सृष्टि का एकमात्र प्रकाश का स्रोत सूर्य ही है ।

प्रारंभिक पुराणों में अधिकतर सूर्य के उपकारी रुप का चित्रण है। सूर्य को वर्षक अन्ननिष्पादक और हिमप्रदाता के रुप में स्तुति की गई है।

जगत का उद्धारक सूर्य अपनी तीक्ष्ण रश्मि द्वारा जल ग्रहण करते हैं । सूर्य का जलशोषण लोक कल्याण के लिए है क्योंकि सूर्य की गर्मी से पृथ्वी का जल वाष्प बनकर बादल के रुप में संघनित होता है । पुनः सूर्य के प्रभाव से जल बरसाता है । सूर्य अपनी किरणों के द्वारा ही वर्षण कार्य करते हैं ।

एष भाति तपत्येष गभस्तिभिः ।

।। ब्रहम पुराण।।30-10।।। साम्ब पुराण।।2-10।

सूर्य अपनी सहस्र रश्मियों से चार सौ रश्मियों के द्वारा वर्षा करता है ।1।

---

1. मत्सय पुराण 128।19-20 ब्रह्म पुराण 24।26-30
भविष्य पुराण 1।78।21-24 साम्ब पुराण 7।46-48
लिंग पराण 59।24-28

सूर्य की मेघ मूर्ति नमस्करणीय है । सूर्योपासक इस वैज्ञानिक तथ्य से परिचित थे । सूर्य ही मेघो की उत्पत्ति का कारण और वर्षा का मूलाधार है ।

यस्मादम्बुधरोत्पत्तिर्यस्मिादवर्षणसम्भवः ।

धर्मेत्तरपुराण।1/30/-7

सूर्य एव तू वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते

मत्स्य पुराण।।125/27 वायु पुराण ।।1।51/51

पकाता है इसीलिए सूर्य के बिना तृण से लेकर के औषधि तक कुछ भी उत्पन्न नहीं हो सकता है । सूर्य के ही द्वारा अन्न की उत्पत्ति होती है जिससे प्राणियों का जीवन चलता है । इसलिए सूर्य वन्दनीय है।।1।।

1.मत्स्य पुराण।125।27-35 वायुपुराण। 1।51।51-53,1।52।39-42
विष्णु पुराण। 2।9।12-23 ब्रह्म पुराण ।22।57-59

इतना ही नहीं सूर्य आयु और आरोग्य के स्वामी हैं। उनकी कृपा से ही मनुष्य इसको प्राप्त कर सकता है । उनके स्तोत्र का जप करने वाला मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है ।

जपमानस्य नश्यन्ति जीवेच्च शरदां शतम् ।

मार्कण्डेय पुराण में वर्णित है कि सूर्य की कृपा से राजा राज्यवर्धन की आयु बढी थी । स्कन्द पुराण में वर्णित है कि सूर्य के प्रभाव से ऋषि नारद श्रापजनित वृद्धावस्था को छोड़कर कुमारावस्था को प्राप्त किया । अन्य देवों की अपेक्षा सूर्य से आरोग्य की याचना अधिक की गई है । पौराणिक सूर्य देव के स्वरुप का एक महत्वपूर्ण पक्ष है उनका अनिष्टनिवारक और रोगनाशक होना । सूर्य की भवित करने से व्याधि तथा दुखों को नहीं प्राप्त करता है ।।1।।

1.स्कन्द पुराण ।5।1।32।64

सूर्य स्तोत्रों मे सूर्य को रोगनाशक देवता के रुप में स्वीकार किया गया है। पुराणों में ऐसी मान्यता है कि सूर्य देव का कुछ विशेष रोगों को दूर करने के लिए आह्वान किया जाता था। जैसे चर्मरोग।1।

जब व्याधिग्रस्त कुष्ठ रोग से अभिभूत जीर्ण देह वाला मनुष्य माता-पिता,बन्धुओं द्वारा त्याग दिया जाता है तब सूर्य ही उसकी रक्षा करते हैं। ऐसा स्कन्द पुराण में वर्णित है।।1।2/51/71 कुष्ठ के विनाश के लिए सूर्य देव विशेष रुप से प्रार्थनीय हैं।

सूर्य ने स्वॅय अपनी पूजा करने से 18 प्रकार के कुष्ठों, सभी प्रकार के पापों तथा रोगों से मुक्ति संभव बताई है।

सूर्य दिनों को नापते हैं, अ.ु, के दिनों को बढाते हैं, बीमारी और प्रत्येक प्रकार के दुखों का नाश करते हैं। जीवन का अर्थ ही सूर्योदय का दर्शन है।3।

---

1. स्कन्द पुराण 7।1।322।25
2. ऋग्वेद 10।37।4
3. ऋग्वेद 4।25।4

सभी प्राणी सूर्य पर अवलम्बित है क्योकि प्रकृति में सतुलन के लिए पर्यावरण और जल का शुद्ध होना अनिवार्य है। क्योंकि सूर्य के प्रकाश से ही जल की अशुद्धता दूर होती है। प्रकाश की अनिवार्यता से जल में रहने वाले कीटाणु अपने आप मृत हो जाते हैं। पुराणों में सूर्य स्तोत्रों की जो कल्पनाएं मिलती हैं वह धार्मिक होने के साथ साथ वैज्ञानिक धरातल पर भी खरी उतरती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से सूर्य के सात अश्व सूर्य किरणों के सात प्रकार या सूर्य किरणों में विघमान सात रंग हैं । आरोग्य के लिए सूर्य प्रकाश की महत्ता को आर्युवेद के वैज्ञानिक इसे वैज्ञानिक दृष्टि से इसे जॉचते हुए इसे अनेक रोगों का नाशक बताया है। सूर्य प्रकाश से क्षय रोग,पीलिया,नेत्र दोष, बच्चों का सूखा रोग,त्वचा संबंधी रोग दूर होते हैं। अतः पुराणों में इसे लिए सूर्य की स्तुति रोगनिवारण के लिए की गई है। आज भी सूर्य स्नान को आरोग्यता का कारण माना जाता है। सूर्य किरण चिकित्सा को जानकर ही पुराणों में सूर्य की स्तुति का विधान है।

चन्द्र

तेज के अन्तर्गत दूसरा प्रमुख स्थान चन्द्रमा का है। चन्द्र का अर्थ है आहलादक और मा धातु का अर्थ मापना है। उतयोमास सायल का अर्थ मापन है। चन्द्रमास का अर्थ आहलाद मापक काल

से है। आहलाद काल मापक चन्द्रमा का विधान करता है। यह दिन रात का विधायक है चन्द्रमा की पन्द्रह कलायें हैं।1।

भारतीय साहित्य में चन्द्रमा सोम है। चन्द्रमा में अमृत के सदभाव की कल्पना है। चन्द्रमा आकाशीय है। इसीलिए स्वर्ग से अमृत की धारा अनायन की कथा है। समुद्र मन्थन में चन्द्रमा की कथा का वृतान्त है।शिव ने समुद्रोभूत विष का पान किया । विषशमन के लिए चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किया । समुद्रमंथन में मेरुमथानी था। सर्परज्जु था । देव वर्ग पुच्छ की तरफ था । असुर वर्ग मुख की ओर थे। असुर सर्प की साँस से मुर्क्षित थे । विष्णु ने अमृत को देवों में बाँटा। इस घटना से ईरान के असुरोपासक बाबेरुशासक अहि के अत्याचारों की गन्ध मिलती है। इस प्रकार असुर स्पन्तमइन्यु शिव के रुप में उभयविधि सोम को लेकर के अवतरित हुआ । इस प्रकार सोम शिव से सर्वथा संबंध भंग ही है। चन्द्रमा के साथ सोम का समीकरण,उसकी शीतलशांतगुणीयता के कारण है। सोम की पंचरस कलायें हैं । ये पंचरस नित्यानित्य है। उनमें हास तथा वृद्धि है। प्रतिपदा से एक एक कला कम होते अमा को सर्वसः कला का अभाव होता है और पुनः प्रतिप्रदा को एक कला उदित होती है और पुर्णिमा को पंचदश कलायें दृष्ट हो उठती हैं। अमा की कला शून्यता में प्रतिप्रदा को एक कला की उत्पत्ति के

1. दशपूर्णमासाय ग्रन्थ- प्रो0 हरिशंकर त्रिपाठी

कारण स्वरुप पंचदश कला के अतिरिक्त अमा और प्रतिप्रदा के मध्य षोडषी कला की कल्पना की गई है। यही नित्य कला है,अमृता है, सूक्ष्मा है, इसी अदृश्या षोडषी से समस्त कलाओं का विकास हुआ है। इसी का आरोपण चरक और सुश्रुत ने सोम पर किया है।

सोमो नामोषधि राजः पंचदशपर्वा सोम इवहीयते बर्धते च।

सोम नाम औषधि राज है, यह पंचदश पर्व वाला है। चन्द्रमा की भॉति घटने बढने वाला है।

सर्वेषमेव सोमानां पत्रादि दशपंच च।

तानि शुक्ले च कृष्णे जायते निष्पतन्ति च।

एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्त्र था।

शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत पंचदशच्छदः ।।

शीयर्ते पत्रमेकैकं दिवसे दिवसे पुनः ।

कृष्णपक्षक्षये चापि लता भवति केवलः ।।2।

---

1. चरक।6: 4: 7

2. सुश्रुत 4।29।20-22

समग्र सोम के पंचदश पर्व होते हैं। वे पर्व शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष में उत्पन्न होते हैं और क्षरित होते हैं। सोम का एक पत्र प्रतिदिन उत्पन्न होता है। शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को यह पंचदश हो जाता है। पुनः एक-एक दिन एक-एक पत्र क्षरित होता है। कृष्ण पक्ष के क्षय होने पर केवल लता शेष बचती है।

यही सोमोपासना दशपूर्णमास में व्यक्त है। यही तंत्र विघा में श्रीविघा है, पंचदशी है,षोडसी है। श्रीविघा सोमोपासना का परवर्ती विकास है।

सोम अपनी शीतलता के लिए प्रसिद्ध है। इसके प्रकाश में प्राणी का चित्र शान्त रहता है क्योंकि शीतलता बुद्धि को बढाती है इसीलिए पुराणों में चन्द्र की उपासना प्रचलित हुई और इसकी महत्ता की वजह से तमाम राजवंशों नें अपने को चन्द्रवंश से जोड़ा इससे स्पष्ट होता है कि पुराणों में पर्यावरण के साथ चन्द्रमा को जोड़ा गया है।

अग्नि

संस्कृत की अज धातु का अर्थ प्रकाशित करना है इसी से अग्नि पद निर्गत है इसका लैटिन और ऑग्ल रुप इग्निश (Egnis)

है। इसी से ऑग्ल इगला, इग्नाईट; (Ignite) और इग्नीफाई (Ignify) कियाएं बनती हैं। इनका अर्थ प्रकाशित करना है। अग्नि दुर्दान्त मौसम से, दुर्दान्त दानव से मानव की रक्षा करने वाला है। उष्मा और प्रकाश देने वाला, भोजनादि का परिपाक करने वाला है। इसीलिए ईरानी और भारतीय आर्यों ने अग्नि को देवता रुप में स्वीकारा है। अवेस्ता में इसे वेरेथन्थ कहा गया है। इसी को आतर बराबर संस्कृत का अथ्र भी कहा गया है। अवेस्ता में अग्नि के दश अवतारों की कल्पना की गई है। उपल ;ओलाद्ध बहुल ईरान में अग्नि ही मानवता का मुख्य रक्षक था । भारतीय आर्यों ने भी समग्र याज्ञिक कियाओं का आधार अग्नि को ही माना है।-

त्वमस्मे घुमिस्त्वमाशुशुक्षणिः त्वमदभ्यस्तमनस्यरि।

त्वंवनेभ्यस्त्वमोषीभ्यस्त्वंनृणां नृपते आयसे शुचिः ।।

हे अग्नि! तुम दिवस के साथ उत्पन्न होते हो, तुम शीघ्र प्रकाश करने वाले हो, तुम जलों से उत्पन्न होते हो, तुम पाषाण और मेघों से उत्पन्न होते हो तथा तुम काष्ठ से उत्पन्न होने वाले हो, तुम औषधियों से उत्पन्न होने वाले हो, मानव के स्वामी तुम प्रकाश को भी उत्पन्न करते हो। ऋग्वेद में अग्नि का स्तवन सर्वाधिक है इससे पुरोहित ऋतिक होता है और इसे साक्षात देवता कहा गया है। यह प्राचीन और नूतन समग्र षियों द्वारा पूजित

है।यह वीरवत्तम्, यशस और पोषण को देने वाला है। इसकी महत्ता के संबंध में दो मंत्र उद्धरणीय हैं।

1. अग्निर्होतां क्रविक्रेतुः सत्यश्चिश्रंवस्तमः देंवो देवोभिरागंमत।

2. यदडंग दाश्रुषेत्वम्। यर्द्। अंग दाजुर्षेत्वम्।

अग्ने भद्रं कंरिष्यसि। अग्ने भद्रम। करिष्यसि।

तवेत्तत्सत्यमंडिगरः । तवं द्वइत। तत सत्यम अग्डिरः ।।

अग्नि होता नामक पुरोहित है। कविकतु है । सत्य भूत है और सर्वाधिक विचित्र यशोयुक्तम है। वह देव अग्नि देवताओं के साथ यज्ञ में आवें । हे अग्नि तुम हविष्य प्रदाता के लिए जो कल्याण करोगे। वह वन्दनीय है।

वैदिक ऋषि दिन रात अग्नि के स्तवन में निरत हैं। अग्नि यज्ञों पर शासन करने वाला, यज्ञों पर आधिपत्य करने वाला है। ऋत का रक्षक है। प्रकाशक है। यज्ञ गृहों में निरन्तर प्रज्वलित रहने वाला है। इसीलिए ऋषियों ने इसकी प्रार्थना की है।

स नः पितेव सूनवेरग्ने सूयायनो भवं। सचंस्वा नः स्वस्तयें।।

हे अग्ने जैसे पुत्र के लिए पिता सुलभ होता है उसी प्रकार तुम पिता के समान मेरे लिए सुलभ रहो। हमारे कल्याण के लिए सदैव साथ रहो।

अग्नि भूत प्रेतात्माओं आदि को दूर करने वाला है। गृहस्थों के सारे के सारे कर्मो का साक्षी है। जन्म से लेकर के मृत्यु तक सभी संस्कारों में अग्नि की उपस्थिति अनिवार्य होती है। प्रसूतिगृह में दरात्माओं से रक्षा के लिए अग्नि प्रज्वलित रहती है।समस्त गृह कार्मों में अग्नि दीप रुप में और अपने वास्तविक रुप में विघमान रहता है। यह लौकिक अग्नि सूर्य रुप अग्नि का ही रुपान्तर मात्र है। अग्नि का मुख्य कार्य अंधकार को दूर भगाना है। जब आर्य उत्तरी धुव कस्यप सागर तुरान; रशियन तुर्किस्तानद्ध इरैती विर्जयती; सुमेर या अलबुर्जद्ध के पास था। उस समय घोर उपल-प्रपात होता था। ऐसे में जीवन दूभर होने के कारण स्वभाविक ही अग्नि का महत्व बढ जाता है। इसीलिए आर्य जन अग्नि के प्रति कोटिशः नत हैं और अग्नि को सर्वस्य माननने वाले हैं।

अतः ऋग्वैदिक समाज में वर्णित पर्यावरण के कष्टमय जीवन से अग्नि मनुष्य की रक्षा करता है क्योंकि यह वेदों में वर्णित तेज रुप सूर्य और चन्द्र का ही रुपान्तरण है। अग्नि से ही वैदिक आर्यों का कष्टमय जीवन दूर होता था इसीलिए अग्नि की सर्वाधिक पूजा

का उल्लेख मिलता है। पौराणिक काल में अग्नि देव रुप में पूजित हो गया है । यह परंपरा कालान्तर मे लगातार जारी रही । पुराणों में तो इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की गई है।

वायु

वैदिक देवता रुद्र झंझावत का दैवीकृत रुप है, मरुतों कों रुद्र का पुत्र कहा गया है। जो अदिति के गर्भ से उत्पन्न है और इन्द्र द्वारा सत्तथा विभाजित है। यह पृथ्वी ही अदिति है, अंतरिक्ष पृथ्वी का उदर है और सत्व,मरुत लघु वायुरुप खण्ड है। इस प्रकार रुद्र और मरुत वायु के प्रतिरुप हैं। रुद्र और मरुत दोनों औषधिप्रद हैं । मरुत की स्तुति इस प्रकार है।-

या वो भेषजा मरुतः श्रुचीनि या रांतमा वृषणो या मयोभु।

यानि मनुवृणीता पिता नस ता शं च योश्च रुद्रस्य पश्मि।।

हे मरुतों जो तुम्हारी शुद्ध औषधियॉं हैं। जो रोग को शान्त करने वाली हैं। जो सुखप्रद हैं। जिसको कि हमारे पूर्वपुरुष मनु ने चुना था उन औषधियों को प्रदान करो।मैं उन औषधियों को चाहता हूँ । रुद्र की रोगशामकता और रोगविदूरकता को चाहता हूँ।

रामकथा में हनुमान अवेस्तीय वायु का रुपान्तर है। वह वानर रुप है। वायु वृक्षों पर व्यक्त होता है। और वानर ही वृक्षों पर रहता है इसीलिए वानर रुपी हनुमान वायु ही हैं। किन्तु कालान्तर में इन्हे वायु रुपी कह दिया गया है।

हमारी पुथ्वी के चारों ओर वायु है। वस्तुतः हमारे चारों ओर हवा का एक समुद्र फैला गया है। हम उसकी तली में उसी प्रकार रहते हैं जैसे जल में प्राणी। प्राणी की जीविता के लिए वायु आवश्यक है। इस प्राणदायक वायु के बिना क्षण भर भी जीवित रहना असंभव है इसीलिए वायु की शुद्धता पर प्राचीन काल से ही जोर दिया जा रहा है। वायु पर्यावरण का एक प्रमुख अंग है क्योंकि इसके प्रतिकूल प्रभाव से मनुष्य का जीवन संकटमय हो जाता है।

वैदिक समाज में तथा पुराणकालीन समाज में जो यज्ञ की संकल्पना थी वह वायु की शुद्धता से ही संबंधित थी। यज्ञ में जो हविष्य डाले जाते थे वें वातावरण को शुद्ध बनाते थे क्योंकि यज्ञ में जो समिथा प्रयोग की जाती है उनमे तमाम तरह के रासायनिक गुण होते हैं जो यज्ञ में पड़कर पर्यावरण को स्वच्छ बना देते हैं। प्राचीन काल में यज्ञ को धर्म से जोड़कर वातावरण को शुद्ध बनाने का एक वैज्ञानिक प्रयास था क्योंकि प्राचीन ऋषियों का मुख्य उद्देश्य लौकिक जीवन के प्रति था अतः उन्होंने लौकिक जीवन के साथ - साथ

भौतिक जीवन के प्रति सचेष्ट थे इसलिए वे वायु,जल आदि की शुद्धता पर विशेष बल देते थे । उनका मानना था कि वातावरण में बहुत से सूक्ष्म जीव होते हैं जो मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रतिकूल होते थे अतः इससे बचने के लिए यज्ञ का विधान किया था।

ऋग्वेद में वायु और वात को पृथक पृथक रुप में स्वीकार किया गया है तथा इनका स्तवन किया गया है। 'वात' भैषज गुण युक्त और जीवनप्रद है। यह साक्षात प्राण ही है।प्राण से ही समस्त प्राणी अनुप्राणित हैं। प्राण; वायुद्ध का अभाव ही मृत्यु है। इसीलिए वायु अमरता का देवता है तथा इसे समस्त भुवन का राजा कहा गया है। वायु का उग्र रुप गर्जनायुक्त संहारयुक्त है। इसकी प्रशंसा में एक मंत्र उद्धरणीय है।

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भोयथावंशंचरित देवएवः ।

घोषा इदस्य श्रृण्विरे न रुपं तस्मै वाताय हविषा विथेम्।।

वैदिक रीडर आथर ऐन्थोनी मेक्डोनल

(वात पृ0 218,श्लोक-4)

यह देव वात देवों की आत्मा है, भुवन का गर्भरुप है और स्वेच्छा से विचरण करता है। इसकी गर्जना सुनाई पड़ती है। इसका रुप दिखाई नहीं पड़ता, हम इस वात के लिए 'हविष्य '(पूजा) विधान करें।

इसके विषय में पुराणों में भी विशद चर्चा की गई है तथा इसके संरक्षण की बात कही गई है। वैदिक ग्रन्थ को इसके स्तवन में भरे पड़े हैं।1।

1. द्वाविमो वातौ आ सिन्धोरा परावतः ।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः । ।2।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे। ।3। ।

आ त्वगमं शंतातिभिरथो अटिष्टतानिभिः ।

दक्षं ते भद्रामाभर्ष पर यक्ष्मं सुवामि ते। ।4। ।

आपः इद्धा उ भेषजीरायो अमोवचातनो।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषज्। ।6। ।

ऋग्वेद 10/134

इससे स्पष्ट होता है कि वायु पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। इसी की शुद्धता के लिए धर्मग्रन्थों में यज्ञ का विधान था जिससे आम जन पर्यावरण को शुद्ध बनाए रखें यह हमारे ऋषियों की उच्च कल्पना का प्रतीक है। पुराणों में तो वायु को अत्याधिक महत्व दिया गया है तथा इसके पूजा तथा स्तवन का विधान बताया गया है जो यज्ञ के रुप में होता था ।

पृथ्वी

धावा पृथ्वी पर्यावरण की आधारभूता है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 160 सूक्त में इसकी स्तुति की गई है। धों धातु को अर्थ है चमकना, दिव से दिवस पद का धौस हो गया । धौ का जेउस रमने इसे धैास का पिता कहा गया है। धौस पितर का लैटिन ज्यूपिटर है। पृथ्वी ही समस्त सृष्टि की माँ है। प्रस्तुत प्रसंग में धावा पृथ्वी की स्तुति की गई है। धावा पृथ्वी के अन्दर ही समाहित है । वायु, जल, मानव, पशु-पक्षी, वनस्पति सब पृथ्वीं पर ही स्थित हैं । धावा पृथ्वी की स्तुति में एक मंत्र उद्धरणीय है।

ते हि धावा पृथ्वी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।

सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवी देवी धर्मणा सूर्यः श्रुचि।।1।

श्लोक संख्या-1 पृथ्वी वैदिक रीडर, आथर ऐन्थोनी मेक्डोनल

यह घावा पृथ्वी सबके लिए कल्याणकारी है। ऋत का पालन करने वाली है। वायु को धारण करने वाली, सुन्दर जन्म पद् है। इसके मध्य देव सूर्य नियमानुकूल विचरण करता है।

उरुव्यचसा महिनी असघता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।

सुधृष्टमे वपुष्ये3न रोदर्सा पिता यत्सीमभि रुपखासपतं।।2।।

घावा पृथ्वी,पिता और माता के रुप मे सम्पूर्ण भुवन की रक्षा करती है। ये दोनों परस्पर न मिलने वाली विशाल और विस्तृत है। ये दोनों (अत्याधिक स्वाभिमान युक्त और सुन्दर हैं) पिता इन दोनो को सौन्दर्य से ढक दिया है।

प्रकृति मे चारों ओर सौन्दर्य है, ईश्वर ने चारों ओर प्रकृति का सौन्दर्य विखेरा है। स्थान-स्थान पर पर्वत हैं। नदियों का जाल विछा है। पृथ्वी पर सर्वत्र हरीतिमा का साम्राज्य है, वन है,उपवन हैं। तडाग है, सब प्रकृति की छटा के अंग हैं। इन सब की समग्रता पर्यावरण है। पर्यावरण के क्षरण से प्राणियों की हानि है। इसी लिए तो वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण के विविध रुपों को देवता के रुप मे स्वीकारा है।

वायु- द्वाविमो वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ।।2।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।। 3।।

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अटिष्टतानिभिः ।

दक्षं ते भद्रामाभार्ष पर यक्ष्मं सुवामि ते।।4।।

आप इद्वा उ भेषजीरायो अमावचातनो।

आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषज्।।6।।

ऋग्वेद।।10-134 पृथ्वी सूक्त

अथर्ववेद के द्वादश काण्ड में भूमि सूक्त संकलित है। इस सूक्त में 62 मंत्र हैं। इसमें पृथ्वी के समग्र ऐश्वर्यों विशेषताओं एवं विभूतियों का वर्णन है।

एक ऋषि कहता है-

माता भूमिः पुत्रोहम् पार्शव्याः ।

भूमि मेरी माँ है, मै उसका पुत्र हूँ। यह सूक्त राष्ट्रीयता की दृष्टि से पर्यावरण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। यह घावा पृथ्वी विविध संपत्ति औषधियो को धारण करने वाली है।-

नाना वीर्या औषधीर्या विभर्ति पृथिवीनः प्रथता राध्यतांमनः ।

पृथ्वी के स्वरुप के वर्णन में कुछ मन्त्र उद्धरणीय हैं-

सत्यं वृहदृन्तमुग्र दीक्षा तपो व्रहम यज्ञः पृथिवी धारयति।

सा नो भूतस्य भवयस्य पत्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।1।।

अथर्ववेद द्वादश काण्ड

सत्य वृहद ऋत शक्ति दीक्षा,तप,व्रहम और यज्ञ को पृथिवी धारण करती है। यह उत्पन्न और उत्पत्3माण जीवों की स्वामिनी पृथ्वी हमारे लिए इस लोक का विस्तार करती है।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचिकिटे यस्यां देवा असुटानभ्यवतर्यन।

गवामश्वनां वयसश्व विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दथातु।।5।।

अथर्ववेद द्वादश काण्ड

जिसमें पहले पूर्व पुरुषों ने विचकमण ; घूम-टहलद्ध जिसमें देवों ने असुरों को प्रत्यावर्तिति किया। गायों,अश्वो,पक्षियों आदि की आधार रुपा पृथ्वी हमें भग झ ऐश्वर्य, वर्चस प्रदान किया है।

असंबाधं बध्यतो मानवानः यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।

नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ।।2।।

अथर्ववेद द्वादश काण्ड पृथ्वी सूक्त

यस्यां समुद्र उत सिन्धरायो यस्यान्नं कृष्टयः संवभुवः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजद सा नो भूमिः पूवपेये दधातु।।3।।

पृथ्वी सूक्त द्वादश काण्ड; अथर्ववेदद्ध

जिसमें नदियॉ है, समुद्र हैं,जल है। जिसमें नदियॉ है , जिसमें मानव उत्पन्न हुए हैं। जिसके भीतर श्वास लेता हुआ और विचरण करता हुआ प्राणि जगत् प्रसन्न रहता है। वह भूमि हमें पूर्वपेय के सम्बन्ध में स्थित करे।

विश्वमरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।

वैश्वनरं विभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषिभा द्रविणे नो दधातु।।6।।

यह पृथ्वी, विश्वभरा सथका पोषण करने वाली है। वसुधानी निधियों को धारण करने वाली है। यह जीवों की प्रतिष्ठाझ आधार रुपा है। यह हिरण्यनक्षत्रा

स्वर्णिम उरोज वाली है। जगतोनिवोसनीझ जगत को विश्राग देने वाली है। वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाली है इन्द्र जिसका स्वामी है वह पृथ्वी हमें धन-धान्य से स्थित करे।

यस्यामापः परिचरः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।

सा नो भूमिर्भूरिधारा पथो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।। 9।।

जिसमें जल समान रुप से विचरणशील है और दिन-रात बिना प्रमाद किये बहते रहते हैं। अनेक जल धाराओं वाली भूमि हमारे लिए पयसा दूध और जल का दोहन करे और वर्चस (कान्ति) से अभिसिंचित करें।

इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय में पयः।।10।।

शचीपति इन्द्र ने जिसको अपने लिए मित्र युक्त बनाया। वह भूमि हमारे लिए उसी प्रकार पयस का सृजन करे जैसे माता पुत्र के लिए पयस ; दूधल्द्ध का सृजन करती है।

वभ्रं कृष्णां रोहिणीं विश्वरुपां थवां भूमि पृथिवीमिन्द्रगप्ताम्।

अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम।।11।।

हे पृथिवी! तुम्हारे गिरि समूह पर्व युक्त एवं हिमयुक्त रहे। तुम्हारे अरण्य सुखकर हो। मैं वभ्रु; भूरील्द्ध वर्णा, कृष्ण वर्णा विश्वरुपा स्थिर थुवा; स्थिरल्द्ध विस्तृत फैली हुई इन्द्र द्वारा रक्षिता भूमि पर अविजित आथात रहित और अक्षत होकर, मैं पृथ्वी पर स्थित रहूँ।

यत ते मघ्यं पृथिवी यच्च नभ्यं यास्त उर्जस्तन्व संबभूवः ।

तासु नो थेहयाभि नः यवस्व माता भूमिः पुत्रो अहम् पृथिव्याः ।

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्त।।12।।

हे पृथिवी! जो तुम्हारा मध्य भाग है, जो तुम्हारा नाभि स्थान है, जो तुम्हारे उर्जस; बलल्द्ध युक्त है, शरीर से उत्पन्न है, उन स्थानों

पर हमें स्थापित करो। हमारे लिए वायु को प्रवाहित करों। भूमि मेरी माता है,मैं उसका पुत्र हूँ। पर्जन्य (मेघ) हमारे पिता है, वह हमें कष्टों से पार लगाये।

यस्ते गन्धः पृथिवी संवभूव यं विभ्रत्योषधयो यमायः ।

यं गन्धर्वा अप्सरसश्व भेजिरे तेन मा सुरभिं कृणु मा नों

द्विक्षत कश्वन।।23।।

हे पृथ्वी! जो तुम्हारी सुगन्ध उत्पन्न है जिसे औषधियॉ धारण करती हैं। जिसे जल धारण करते हैं, जिसे गन्धर्वों एवं अप्सराओं ने प्राप्त किया, उस गन्ध से मुझे सुगन्धित करो। मुझसे कोई द्वेष न करे।

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या उन्कारं नमः ।।26।।

शिला भूमि पाषाण पान्सु; धूलिद्ध इन सवसे भूमि धारण की गयी है। उस स्वर्णिम उरोज वाली पृथ्वी को प्रणाम करता हूँ।

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या धुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।।27।।

जिसमे वनस्पतियॉ जातीय वृक्ष प्रतिदिन स्थिर रुप से स्थिर है। उस विश्व का पोषण करने वाली, धारण करने वाली पृथ्वी को स्तवन करता हूँ।

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहारात्रे पृथिवी नो दुहाताम्।।36।।

हे भूमे! ग्रीष्म शरद शिशिर हेमन्त बसन्त से युक्त तुम्हारे वर्ष हैं। वार्षिक ऋतु , तुम्हे ऋतु विहित हैं।रात- दिन विहित है। हे पृथिवी तुम्हारे लिए दोहन करें।

यस्मां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यौलिगः ।

मघ्यन्ते यस्यामाकन्दो यस्यां बदति दुन्दुभिः ।

सा नो भूमिः प्र णुदतां सपलानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु।।4।।

जिस भूमि पर मानव नाचते,गाते,एवं युद्ध करते हैं और जिस पर निनाद करने वाली दुन्दभी वजती है। वह भूमि हमारे शत्रुओं को दूर कर दे। पृथिवी हमें शत्रु रहित बना दे।

ये त आरण्याः पशवो मृगा वने हिताः व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति।

उलं वृकं पृथिवी दुच्छुनामति ऋक्षीकां रक्षो अपबाध्यास्मत्।।49।।

हे पृथ्वी! जो तुम्हारे अरण्य पशु हैं, जो बन में स्थित पशु है, जो नरभक्षी सिंह और व्याघ्र विचरण कर रहे हैं। उन उल वृक को हिंसेक्षुका, दुर्भावना राक्षसों को हमसे दूर करें।

यां रक्षन्त्यस्वप्न विश्वदानीं देवा भूमि पृथिवीममप्रमादयम्न्।

सा नो मधु प्रियं दुग्धमथो उक्षतु वर्चसा।।7।।

जिस विश्व दायिनी अतिविस्तृत भूमि को न साने वाले, देवलोक प्रमाद रहित होकर रक्षा करते हैं। वह हमें प्रिय मधु का दोहन करें और वर्चस; कान्तिद्ध से अभिसिंचित करें।

यस्या हृदयं परमे व्योमिन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।

सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातून्तमे।।8।।

जिस पृथिवी का हृदय परम व्योम है अर्थात पर्यावरण में। इसका अमृत तत्व सत्य से ढक गया है। वह भूमि उत्तम राष्द्र में द्विशि; तेजद्ध प्रदान करे।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मत्यरिस्त्वं बिभर्वि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।

तमेव पृथिवी प3-च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उघन्त्सूर्यो

रश्मिभिरातनोति।।5।।

हे पृथ्वी! मानव तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं। तुम्हारे उपर ही विचरण करते हैं, तुम दो पैर वाले और चार पैर वालों को धारण करती हो। आर्यों की पञ्च जातियाँ तुम्हारी हैं। जिनके लिए उदित होता हुआ सूर्य अमृत ज्योति का पिन्चनन (फेलना) करता है।

विश्वस्वं मातरमोषाधीनां ध्रुवं पृथिवीं धर्मणा धृताम।

शिवां स्योनामनु चरेम विश्ववहा।।17।।

समग्र औषथियों की माता ध्रुवा प्रथिता प्राकृतिक नियमों से धारण की गयी, शिवा कल्याणकारी शियोनाझसुखप्रदा प्रतिदिन हम पर विचरण करें।

भूमे उन सबको मुझमें संयुक्त करो। मुझसे कोई द्वेष न करे।

यस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः प3-च कृष्टयः ।

भूम्यै पर्जन्यत्न नमोस्तुते वर्षमेंदसे।।42।।

जिसमें ब्रीहि यव आदि अन्न है। जिसमें ये आर्यों की पॉच जातियॉं हैं। उस वर्षा से आर्द्रयर्जन्य की पत्नी भूमि के लिए नमस्कार है।

निधिं विभ्रती बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्य पृथिवी ददातु में।

वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु ददातु में।

बहुधा निधि को धारण करने वाली पृथ्वी हमें गुह्यधन,मणि,हिरण्य प्रदान करे। धन दायनी सौमनस्य धनप्रदा सौमनस्य भाव युक्ता देवी पृथ्वी हमें धन दें।

जनं विभ्रती बहुधाविचासं नानाधमणिं पृथ्वी यथौकसम।

सहस्रं धारा द्रविणस्य में दुहाम धवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।45।।

विविध भाषाओ वाले विविध धर्मो वाले यथा निवास स्थान स्थित जनों

को बहुधा धारण करने वाली पृथिवी धन की सहस्र धाराओं को मेरे लिए दोहन करें। जैसे स्थिर न हिलने-डुलने वाली दुग्ध का दोहन करती है।

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूभ्याम्।

ये संग्रागाः सगितयस्तेषु चारु वदेग ते।।56।।

जो ग्राम है, अरण्य है और पृथ्वी पर जो जन सभायें हैं। जो संग्राम है जो तुम्हारी समितियाँ हैं उनमें हम मधुर शब्द बोलें।

भूमि सूक्त का ऋषि अर्थवा की कामना है- या विभ्रति बहुधा प्राणदवजद् सानोभूमिः गोसु अपि अन्ने दधातु। जो श्वसन (प्राणन) करते हुए गतिशील प्राणियों को धारण करती है। वह भूमि हमें पशुओं के मध्य और अन्य के मध्य स्थित करें।

यह भूमि अदिति है,माता है,बहुधा विभाचसं जनं विभ्रती- विविध भाषा भाषी जन धारणी है। नानाधर्मा जनधारपति - विविध धर्मो को धारण करने वाली है। गवाम अश्वनां वयसस्च विष्ठा-

गायों,अश्वों और पक्षियों को आश्रय प्रदान करती है। यह विश्वम्भरा है, वसुधानी है, प्रतिष्ठा है, हिरण्यवक्षा है।

जगतो विवेसनी त्र विश्राम दायनी है।

विश्वरुपा, ध्रुवा, कृष्णा, रोहणी है। यह औषधिनी माता है, द्विपद चतुष्पद-धारयी, धर्मणाधृता है, शिवा और स्योता है, विश्वछाया है, विमृग्वरी क्षमा है, उर्जं पुष्टं विभ्रती त्र शक्ति और पोषक तत्व धारणी है, प्रतिशीवरी है, यह पर्जन्य पत्नी है, वसुदा सुमनस्यमाना रासमाना है, यह वराहेण संविधाना, वराह द्वारा रक्षिता है। वर्षेणवृता त्र वृष्टि से आवृता है,

प्रथमाना है, ययस्वनी है, सुरभिमयी, गंधमयी है, कामदुहा है, जनानां आवयनी है, पृथिवी इन्द्रगुप्ता है, इन्द्रभृषजा है, नाना वीर्या-औषधि धारिणी है, प्राणदेजत्प्राणि धारिणी है। यह प्रिय है, यह मधु दुधा है,ऋर्क दायिनी है, वर्चस से अभिसि3-चेनकारियी है। यह भूरिधारापयो वती है, अग्नि वासा है।

ऋषि भूमि विंसृजतां माता पुत्राय में पयः कह कर कामना कृत है।'माता भूमिः पुत्रोहं पुथिव्याः' कह कर अभिवादन कृत है। नः प्रजा संदुहताम् समग्रावाचः मधु देहि पहयम् कहकर प्रार्थना कृत है।

जरदष्टिः पृथिवी मा कृणोतु,प्राणागायुर्दधातु यस्तेगन्धः ।

पृथिवि तून मा सुरभि कृणु, यस्तगन्धः पुरुषेषु, स्त्रीषु तेन मा सुरभिं कृणु उदीरण्य उतासीनास्तिष्ठन्त प्रकामतः ।

पदभ्यां दक्षिण सव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भभ्याम् ।

यही ऋषि की कामना है।

' शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु' यह भी कामना है।

'स्वास्ति भूमे नो भव मा विदन् परियभ्यिनः ' यह भी कामनाकृत है।' मा हिसीस्तत्रयभूमे सर्पस्य प्रतिशवरि ' यह कामना है।

'यन्ते भूमे विश्वनभि क्षिप्रं तदपिरोहतु-

हे भूमे! तुम्हारे जिस्म को खोदता हूँ, नहीं वढे और उगें,

'माते मर्म विमृगवरि मा ते हृदयम्पिर्यम्'

- तो मर्म स्थल को, हृदय को न कुचलूँ, यह ऋषि का उदात्त भाव है, ऋषि का यह कथन पर्यावरण का सार है। उसकी आत्मा है,

समगसः सप्त है, यही ऋत् है,ऋत् सत्ता है और ऋत सत्ता का प्रमाण है।

जल

ऋग्वेद में वरुण को जलो का शास्ता बताया गया है उन्होंने ही सरिताओं को प्रवाहित किया है। ये सरिताएं वरुण के ऋत का अनुशरण करती हुई सतत प्रवाहित होती रहती है।

प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ता ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति।

न श्राम्यन्ति न वि म3-चन्त्येते ।।4।।

ऋग्वेद(2-28-4)

वरुण की माया के बल से ही सरितांए, तीव्र गति से समुद्र में गिरकर भी उसे भर नहीं पातीं। वरुण और मित्र सरिताओं के मित्र हैं। ऋग्वैदिक साहित्य से वरुण का तादात्म्य समुद्र से भी स्थापित

किया जा सकता है क्योंकि ऋग्वेद में एक जगह आया है कि सातों नदियाँ वरुण के मुख में गिरती हैं। वस्तुतः अंतरिक्षस्थ जल से भी संबंधित होता है।

मनुष्यों के सत्य और अनृत का अवेक्षण करते हुए स्वच्छ एवं मधु बरसाने वाले वरुण जल में विचरण करते हैं। वरुण के वेशभूषा जल है। वरुण और मित्र उन देवताओं में से हैं जो जल बरसाते हैं। वरुण (बादल की) मशक से द्युलोक,पृथ्वी और अंतरिक्ष में पानी छिड़कते हैं।1।

1. नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्र सर्सज रोदसी अन्तरिक्षम्।ऋ05-85-3

सभवतः सलिल एवं वर्षा के साथ सम्बद्ध होने के कारण वरुण को निघण्टु के पॉचवे काण्ड में द्युलोकस्थ एवं अन्तरिक्षस्थ देवताओं में गिना गया है।ऋग्वेद में वरुण को नैतिक व्यवस्था का निमायक देवता माना गया है। इससे स्पष्ट होता है कि ऋग्वैदिक काल में जल को देवता के रुप में माना गया है। यह उसकी पर्यावरणीय उपादेयता के कारण ही था।

सारे जीव जन्तुओं तथा मनुष्यों का जीवन जल के बिना शून्य है। संसार की सभी चीजें जल से ही वनीं हैं। जल के बिना न तो कोई जीवधारी जीवित रह सकता है। न तो कोई वनस्पति। आदि कालीन मानव अपना निवास स्थान वहीं वनाया जहॉं जल के स्रोत उपलब्ध थे। बड़ी-वड़ी सभ्यताएं नदियों के किनारे ही विकसित हुई।

जल जीवन का आधार है। जीवन की प्रत्येक किया में जल भाग लेता है, शरीर का दो तिहाई भाग किसी न किसी रुप में जल से निर्मित है। इस पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी पदार्थों का 75ः जल ही है चाहे वो फल हों, पौधे हों या अन्य प्राणी । प्रत्येक प्राणी को अपनी जीविता के लिए जल की आवश्यकता होती है। और इस पृथ्वी पर जल का आधिक्य है। जल पर्यावरण का प्रमुख घटक होता है इसीलिए प्राचीन काल से आज तक इसके संरक्षण की बात कही गई है तथा जल ही जीवन है कहकर इसकी महत्ता सिद्ध की गई है तथा इसके संरक्षण की बात कही गयी है तथा हमारे पौराणिक धर्मग्रन्थों में जल देवता के रुप में जल पूजा का विधान है। ऋग्वेद से लेकर आज तक के साहित्य में जल को प्रमुख स्थान दिया गया है। पुराणो में तो जल संरक्षण तथा तालावों आदि के निर्माण को अति पुण्य कार्य बताया गया है।

पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जितना पुण्य करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ करने से प्राप्त होता है। उतना पुण्य मात्र एक तालाव वनवाने से होता है।

ऋगवेद से लेकर आज तक जल के साहित्य में जल को देवता के रुप में माना गया है। पुराणों में तो जल संरक्षण तथा तालावों

आदि के निर्माण को अति पुण्य कार्य बतलाया गया है क्योकि जितना पुण्य करोड़ो अश्वमेघ यज्ञ के करने पर होता है, उतना पुण्य मात्र एक तालाब बनवाने से होता है, इससे जल की महत्ता सिद्ध हो जाती है। ऋग्वेद में तो जल को देवता रुप माना गया है तथा जल के उपर वहुत से सूक्त लिखे गये हैं।

समुद्र जल राशि का अगाथ स्रोत है अतः इसके विषय में लिखा गया है।

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।

इन्द्रो या वज्री वृषभो रशद ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।1।।

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः आपः त्रिष्टुप सातवॉ मं0-49

समुद्र जिनका अगुआ है, ऐसी पवित्र करने वाली, विश्राम न करने वाली जल देवियॉ जिन्हे शक्तिशाली बज्रयुक्त इन्द्र नेखोजा है। वे मेरी रक्षा करें।

या आपो दिव्या उत व स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।

समुद्रार्था याः सुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।2।।

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः आपः त्रिष्टुप जल 55 सातवॉ मं0-49

जो आकाशीय जल है अथवा जो खोदी गई नदियों के जल हैं अथवा जो स्वयंभू जल है,जो शुद्ध हैं और निर्मल हैं। वे जलदेवियाँ मेरी यहाँ रक्षा करें।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्य3-जनानाम्।

मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।3।।

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः आपः त्रिष्टुप सातवाँ मं0-49

जिन जल देवियों का राजा वरुण है, लोगों के बीच सत्त और अनृत को देखते हुए चलता है, जो मधु श्रावणी है,निर्मल है और पवित्र करने वाली हैं, वो जलदेवियाँ मेरी रक्षा करें।

यासु राजा वरुणो, यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्ज मदन्ति।

वैश्वानरो यास्वग्नि प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।।4।।

वशिष्ठो मैत्रावरुणिः आपः त्रिष्टुप सातवाँ मं0-49

जिन जलों का राजा वरुण है, जिनमें सोम स्थित है,जिसमें स्थित समग्र देव उर्जा से हर्षित हैं जिनमें वैश्वानर अग्नि प्रविष्ट हैं वे जल देवियाँ मेरी रक्षा करें।

उपरोक्त वैदिक सूक्तों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन ऋषि जल की शुद्धता के प्रति कितने सचेष्ट थे। उनका जलीय पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण बड़ा ही विस्तृत था। इसीलिए इन्होंने जल को देवी मान कर अपनी रक्षा के लिए आहवाहन किया है।

अग्निपुराण के सप्तदशोध्यायः श्लोक सं० 7 में आया है कि ईश्वर ने सृष्टि के निमित्त सर्वप्रथम जल की सृष्टि की है-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः ।

अयनं तस्य ताः पूर्व ते नारायणः स्मृतः ।।

जल से ही सृष्टि निर्माणकर्ता ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। जल को शुद्ध रखने के लिए लगभग सभी पुराणों में चर्चा हुई है क्योंकि शुद्ध जल पीने से किसी भी प्रकार का रोग नहीं होता है। जैसा कि वर्तमान समय की विज्ञान रिपोर्ट भी यह वताती है कि 80% बीमारी प्रदूषित जल से होती है।

अतः पुराणों के समय में जल प्रदूषण न होते हुए भी जल पर विशेष ध्यान दिया गया है। मार्कण्डेय पुराण के 31 वें अध्याय में कहा गया है कि-

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं न समाचरेत्।।25।।

अर्थात जल में किसी भी प्रकार की गंदगी न करने का पुराणों में निर्देश दिया गया है। जल की महत्ता की वजह से वरुण का देवताओं की कोटि में विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है क्योंकि जल पर्यावरण का प्रमुख अंग होता है और जल से ही समस्त वनस्पतियॉ तथा अन्न उत्पादित होता है।

जल, द्रव तथा ठोस तीनों रुपों में पाया जाता है। तीनों रुपों का पर्यावरणीय संतुलन के लिए सामंजस्य जरुरी है। वर्तमान समय में विश्व के सामने जो ग्लोबल वार्मिंग के बारे में जो बातें उठ रही है वह जल के इसी भयावह रुप की कल्पना की गई है क्योंकि वातावरण जब गर्म होगा तब उस अवस्था में जल का ठोस रुप पिघलेगा जिससे समुद्र का जलस्तर बढेगा जिससे समुद्र के किनारे के कई देश जलमग्न होकर अपना अस्तित्व समाप्त कर देंगे। जो मानवता ही नहीं बल्कि पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने वाले जीव जंतु तथा वनस्पतियॉ भी नष्ट हो जाएंगी । तथा इसी प्रकार गैसीय जल भी बादल के रुप में भयंकर वर्षा करने लगेंगे तो भी

समस्त जीव जंतु तथा वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा। आज तक जो धर्मग्रन्थों में प्रलय के विषय में अवधारणा मिलती है वह जल प्रलय की ही मिलती है। अतः सृष्टि के विनाश में जल की अवधारणा को स्वीकार किया गया है।

जब सृष्टि का सबसे भयंकर तथा सबसे सुन्दर रुप जल है तो इसे स्वच्छ बनाए रखना मानवता का प्रथम कर्तव्य है इन्ही सब कारणों से हमारे समस्त धर्मग्रन्थों में जल को देवी तथा देवताओं के रुप में प्रतिष्ठित किया गया है।

पर्जन्य (मेघ)

पर्जन्य बादल का रुप होता है। यह भी जल का एक स्रोत है। कृश धातु का अर्थ है आर्द्र करना । कृश का एक रुप स्प्रिंकिल (sprinkle) या आर्द्र भी है। पर्जन्य धातु कृश धातु से निर्गत है। पर्जन्य वैदिक देवताओं में महत्वपूर्ण है। यह वृष्टि का देवता है। पर्जन्य पर समस्त प्रकृति की सत्ता निर्भर है यह सृष्टिक पद है। वृष्टि से ही वन वनस्पतियाँ तथा औषधियों की उत्पत्ति संभव है। जल जीवन है इसलिए मेघ जीवन प्रद है। मूव धातु का अर्थ है घूमना , अंग्रेजी में यह move है। इसी से मोटीवेट(motivate),

म्यूटेट(mutate), मोमन्ट(moment), रिमोट(remote), डिमोट(demote), प्रमोट(promote) आदि पद है।

जल रुप के साथ, जल को लेकर घूमने के कारण मेघ को जीवमूत = जीमृत कहा गया है। नदी, समुद्र, जलाशय की सत्ता मेघ या पर्जन्य पर निर्भर रहता है। इतना ही नहीं कृषि व्यापार पशु-पालन सारे कार्यों में जल संशाधन मूल में है।

मंडूकों को मेघ(पर्जन्य) का दूत कहा गया है। इसीलिए इस संदर्भ में ऋग्वेद के 7वें मण्डल का 103वें सूक्त में मंडूको की स्तुति है-

'देवंहिति जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नटो न प्र मितन्त्यते'

'संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता थर्मा अश्नुवते विसर्गम्।।'

इस-संवत्सर- वारहवें-मास- के बारे में देवों द्वारा निर्धारित नियम को उन्होंने पूरा पालन किया है। ये -मण्डूक रुपी - पुरुष निश्चित समय का अतिकमण नहीं करते। वर्ष के निश्चित समय में वर्षा काल के प्रारंभ होने पर ये-मण्डूक रुपी- संतप्त थर्म-ताप- मुक्त होने का अनुभव लेते हैं।

वैदिक परंपरा का निरवहन ग्रामीण परंपरा में विद्यमान है। अनावृष्टि के समय वर्षा होने के लिए गॉवों में बालक मण्डूक बनकर आर्द्रा की हुई भूमि में लोटते-पाटते हैं। और ऐसा माना जाता है कि उसी किया से वृष्टि होती है । इसे कलौटी कहते हैं। वायु पर्जन्य का मित्र है। पर्जन्य वायु रुप सखाभूत वाहन पर आरुढ होकर सर्वत्र भ्रमण करता है।

वन एवं पर्यावरण

ऋगवेद के दशम मण्डल का 146वॉ सूक्त अरण्य देवता अरण्यानी को समर्पित है।

अरण्यानी अरण्य की अधिष्ठात्री देवी है यह भय रहित है समस्त पशु पक्षी अपने अपने विविध शब्दों मे इन्हीं का स्तवन करते हैं। मनुष्य भी परम शान्ति तथा मौलिक ज्ञान के लिए अरण्यानी की शरण लेता है। अरण्यानी वन्य पशु-पक्षियों की माता कही गयी है। यह अपने सन्तानों का भरण पोषण करती है।

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।

कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरवि विन्दती।।1।।

ऋगवेद 10 मण्डल [10-146-1]

हे अरण्यानी जो तुम गुप्त हो जाती हो (देखते ही देखते अचानक) वह तुम गॉव की (गॉव के मार्ग) ही पूॅछतॉछ क्यों नहीं करती। तुम्हे भय तो मानो स्पर्श ही नहीं कर सकता है।

वृषारवाय बदते यदुपावति चिच्चिकः ।

आघाटि भिरवि धावयन्नरण्यानिर्महीयते।।2।।

ऋगवेद दशम् मण्डल[10 –146 – 2]

जिस समय महान शब्द करने वाले वृषरव का मानों किंकिणियों के ताल पर दौड़ाकर चिच्चिक साथ देता है। उस समय अरण्यानी की महानता स्पष्टतया प्रतीत होती है।

उत गावइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यन्ते ।

उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति।।3।।

ऋग्वेद दशम मण्डल [10 - 146 - 3]

मानो गायें ही [दूरी पर] चर रही है और मानो [दूर कहीं]कोई एकाध गृह दृष्टिपथ में आता है । और शाम के समय वह अरण्यानी मानो छोटी - मोटी गाड़ियों को [भर कर गॉव के पास] छोड़ रही है ।

गाम्रगैंप आ हदयति दार्वगैंपो अपावर्थात् ।

वसन्नरण्यान्यां सायमकुक्षदिति मन्यते ।।4।।

ऋग्वेद् दशम मण्डल [10 - 146 - 4]

[यह देखो] इधर कोई अपनी गाय को [लौट आने के लिए] बुला रहा है। दूसरे किसी ने सचमुच वृक्ष की सूखी शाखा [लकड़ी] नीचे गिरायी है । [इस नानाविधि आभासों की अनुभूति लेकर] सॉय के समय अरण्यों में वास करने को विवश हुआ, कोई मनुष्य [सहायता के लिए दूसरा कोई पुरुष] आक्रन्दन कर रहा है। ऐसा मानता है।

ना वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्रेनाभिगच्छति ।

स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पयते। ।5। ।

ऋग्वेद् दशम मण्डल [10-146-5]

सचमुच देखा जाय तो यदि दूसरा कोई व्याघादि हिंस्र पशु इस प्रकार सायं के समय आरण्यानी में वास करने वाले मनुष्य पर आक्रमण न करेगा तो स्वयं अरण्यानी उसका बाल - बॉका नहीं होने देती । इतना ही किन्तु[उसमें उपलब्ध होने वाले] मधुर फलों का आस्वाद लेकर वह मनुष्य अपनी इच्छा से, आराम से पड़ा रहता है।

आंचनगन्धिं सुरभिं बहन्नामकृर्पाफलाम् ।

प्राहं मृगाणां मातरमण्यानिमशांसिपम् ।। 6।।

ऋग्वेद दशम मण्डल[10-146-6]

(इस प्रकार) चारों ओर से अंजन जैसे सुगन्ध से परिपूर्ण आकर्पक किसान का हस्त स्पर्श न होते हुए भी विपुल अन्नधान्य से सम्पन्न वन्य पशुओं की यह माता जो अरण्यानी उसकी मैनें प्रशंसा की है।

यच्छल्मलौ भवति यन्नदीपु यदोपथीभ्यः परिजायते विपम् ।

विश्वे देवा निरितस्तुत सुवन्तु मां पघेन रपसा विदत्तसरु।।6।।

सेंमर के वृक्ष पर अथवा नदियों में दिखाई देने वाला या वनस्पतियों से पैदा होने वाले उस विपत्ति को सभी देवता यहाँ से दूर हटा दें। वह रेंगने वाला कीड़ा मेरे पैर के घाव से मुझ पर हावी न हो। पुराणों में वन, उपवन आदि के विपय में प्रचुर सामग्री मिलती है। भुगोल विघा की दृप्टि से जिसका अघ्ययन आपेक्षित है। इस प्रसंग में वन सम्वन्धी विवरणों का एक संकलन है।

वन के पर्याय - वन के लिए कई अन्य विशिप्ट शब्द भी पुराणों में प्रयुक्त होते हैं ।1।

वन के लिए अटवी(स्कन्द0,केदार0,33/148), उघान (भागवत0 5/16/15),कानन(स्कन्द0 सेतु0 17/53) आदि शब्द आए हैं। महावन (वायु0 38/78), वन का अनुबन्ध (वायु0), वनखण्ड(वायु038/70), वनिका(मत्स्य0 31/1-2), आकीड़ (वायु0 42/79-81) तपोवन,उपवन भी प्रयुक्त हुए हैं। वन के लिए 'गहन' शब्द भी पुराणों में आया है। (लिंग0 1/29/5)

वन और कानन एक दूसरे के पर्यायवात्ची भी हैं क्योंकि आनन्दवन (काशी) के लिए 'आनन्दकानन 'शब्द को प्रयोग पुराणो में आया है। यथा - ' सशैलवन - कानना मेदिनी (1) । अतः इनमें कुछ भेद दीख पड़ता है। यह स्पप्ट भी है। अरण्य और वन का समानार्थक प्रयोग भी है। क्योंकि 'वृन्दावन' के लिए 'वृन्दारण्य ' प्रयोग मिलता है। उसी प्रकार जिसको वेदारण्य कहा गया ।(2) उसको वेदकानन भी माना गया है।(3) वन के लिए वनिका शब्द भी पुराणों में आया है।(4) इस स्थल से यह भी स्पप्ट हो जाता है कि वनिकाक्षुद्रतम वन है।

उघान भी वन के लिए आया है। काशी के लिए जैसे आनन्द-वन का प्रयोग है, उसी प्रकार 'विश्वेश्वरोघान ' शब्द भी मत्स्यपुराण में वाराणसी में आया है।

---

1. (मत्स्य 1/29)

2. (स्कन्द0 सेतु0 7/45)

3. (स्कन्द0 सेतु0 17/13)

4. (अशोक वनिका- मत्स्य0 31/1-2)

इस प्रकार 'आकोडवन '(1) 'मृगयावन '(2) आदि शब्द भी पुराणों में है। स्कन्दपुराण में 'वनत्रय ' और 'अरत्वय ' की पृथक गणना है।(3) वायुपुराण में वन के चारों ओर 'कानन ' की बात आई है। (4) जिससे यह सूचित होता है कि वन बहुत घना जंगल है और कानन उस घने जंगल के चारों ओर का असाधारण वन है। पर यह अर्थ अभी विवादास्पद है। वाय0 में 'स्थली मनो- हरा तत्र वन- विभूपिता ' । (5) कहा गया है । यदि स्थली का ठीक स्वरुप विज्ञात हो जाए, तो वन का स्वरुप भी अधिकार स्पप्ट होगा।

कभी- कभी 'वन' शब्द मूल नाम में पृथक रुप से और कभी नित्य ही लगता है। 'वृन्दावन' इसका एक उदाहरण है। विष्णुपुराण में एक स्थल पर 'वृन्दावन वन ' ऐसा कहा गया है।(6) यह शब्द की तरह ही प्रसिद्ध हो जाता है।(वृन्दावन का वन, यह अर्थ लुप्त सा होकर 'वृन्दावन' पूरा एक बवयवार्थ- निरपेक्ष नामक वन बन जाता है।) तब 'वृन्दावन नामक वन' इस अर्थ में वृन्दावन ऐसा कहना पड़ता है। वनों के नाम संज्ञा कहलाते हैं। यथा - इक्षुवण प्लक्षवण, आम्रवण,कार्व्यवण, खादिर- वण,पीयूक्षावण इत्यादि ।

---

(1) (मतस्य पुराण अवन्ती क्षेत्र0 44/27)

(2) (मतस्य पुराण अवन्ती क्षेत्र 50/9)

(2) (स्कन्द पुराण 6/189/13,16) (4) (वायु पुराण 38/29)

(5) (वायु पुराण 38/67) (6) (वायु पुराण 5/25/4)

इन नियमो के उदाहरण पुराणों में मिलते हैं। यथा-आम्रवण(1) यहॉ गत्व हुआ है।

देवदारुवन (2) वार्तिक बल से गत्व नहीं हुआ ।

शरवण (3) यहॉ गत्व हुआ है।

आम्रवण वल्कि एक विशिष्ट वन का नाम है, चाहे उसमें आम्रवृक्ष कम हो या अधिक हो या न हो। 'आम्रवन 'कहा कहा जाएगा तव उसका अर्थ होगा आम्रवृक्षों का कोई भी वन।

वनों का नामकरण-

वनों के नामकरण के विपय में एक सामान्य नियम यह था कि जिस वन में किसी महापुरुप नें तप किया। उस वन का नाम उसके पुण्य नाम से पड़ जाता था। उदाहरणार्थ-

---

(1) (मार्कण्डेय0 104/27/29) (2) (वायु 77/91)

(3) वामन0 55/18, वायु0 72/32)

'अदितिवन 'को लिया जा सकता है। जहाँ अदिति ने तप किया था।1। यह स्पष्ट है कि अदितितप के कारण ही इसका नाम 'अदितिवन' पड़ गया।इसी प्रकार आपव के वन को'आपववन' कहा गया।2/मधुवन का नाम भी मधुदैत्य के वासस्थान के कारण पड़ गया था।3/ उसी प्रकार वशिष्ठवन भी वशिष्ठ के नाम के अनुसार है।4।

वृक्षप्राधान्य के अनुसार भी वनो का नामकरण किया गया है। जैसे - आम्रवन।5।,पद्मवन।6।,विल्वन।7।,विल्वन।8।,द्राक्षवन, कदलीवन,दाड़िमवन,खजूरवन।9। इत्यादि। यह नामकरण 'त्यपदेशस्तु भूयस्त्वात्' - इस न्याय से ही किया गया है। यह स्पष्ट है।

स्थान नाम के अनुसार भी वनों के नाम मिलते हैं। जैसे- हिमवद्वन।10। हिमभूभृत उपवन।11। राजगृहवन जो गया में था। 12। रैवत पर्वतस्थ रैवतोद्यान।13।,पुस्करतीर्थस्थ पुष्करारण्य।14।, कुरुक्षेत्र वन।15।

---

(1) (वामन० 34/12) (2) (मत्स्य० 43/41/42,वायु०94/43/45)

(3) (विष्णु० 1/12/3) (4) (वायु० 94/43-44)

(5) (मार्कण्डेय० 104/20-22)(6) (वायु० 37/6)

(7) (वायु० 37/9) (8) (वायु० 28/29)

(9) (वायु० 38/68-69) (10) (स्कन्द० प्रभासक्षेत्र० 22/172)

(11) (मार्कण्डेय 54/273) (12)(गरुण० 1/83/1,वायु०108/73)

(13) (विष्णु० 5/36/12) (14)(वामन० 65/31)

(15) (वामन० 27/12)

वन का तीर्थरुप- वन को 'तीर्थ','क्षेत्र','पुण्यायतन'आदि के रुप में भी माना गया है। भारत का यह उदार दृष्टिकोण 'वनमहोत्सव'करने वाले सज्जनो को भी मान्य होना चाहिए। कुछ पुण्यवनों के नाम यहॉ दिए जा रहे हैं।

गुरुविशालवन (जो कामरुप में है) को एक सिद्ध क्षेत्र कहा गया है।1। गधृवन-एक तीर्थ।2। देवदारुवन को श्राद्ध- योग्य स्थान।3। और तीर्थ भी कहा गया है।4। नैमिपारण्य एक तीर्थ भी है। यह तो सर्वत्र कहा गया है।पंचवन को श्राद्ध- योग्य स्थल माना गया है।5। मगधारण्य एक तीर्थ है।6। सिद्धवन भी तीर्थ है।7।

कुछ वनों को अन्य वनों की अपेक्षा अधिक पुण्य-जनक माना जाता है।जैसे वामनपुराण में नन्दनवन के विषय में कहा गया है-'वनेपु पुण्येपु हि नन्दनयशा '।8। पुराणकार की दृष्टि में नन्दनवन की श्रेष्ठता क्यों है, यह विचारार्श है। इस वन का सम्बन्ध देव से है,यह ज्ञातव्य है।

---

(1) (मार्कण्डेय0109/57-58) (2) (कूर्म0उत्तरार्ध 37/38)

(3) (वायु077/91) (4) (कूर्म02/37/53)

(5) (वायु077/99) (6) (कूर्म0 2/37/9)

(7) (मत्स्य0 22/55) (8) (12/48)

इतना ही नहीं, अधिष्ठित देव के अनुसार वन का विशेषण भी दिया गया है।जैसे शरणवण के लिए रौद्र(रुद्र अर्थात शिव से सम्बंधित) विशेषण का प्रयोग।1।

वन को तीर्थ के अंगविशेष की तरह भी माना गया है।स्कन्दपुराण में कहा गया है कि कोई तीर्थ श्मशान है।कोई उसर है, पर यह महाकालवन तीर्थ एकाधार में श्मशान, उसर, क्षेत्र, पीठ और वन भी है।2।

वन में अधिष्ठित देव - कुछ ऐसे भी वन हैं जिनमें किसी देव आदि का अधिष्ठान या स्थान पुराणकारों ने माना है। इसलिए इन वनों को बहुत पवित्र भी माना जाता था। यथा-

दण्डकवन - वनस्पति(देव का अधिष्ठान)।3।

देवदारुवन - दारुकवन के महादेवातार का सीन।4।

माथववन - सुगन्धा देवी का सीन।5।

---

(1) (वामन० 57/15) (2) (अवन्ती क्षेत्र० 1/40-42)

(3) (वामन०90/26) (4) (लिंग०24/101)

(5) (मत्स्य० 13/37)

वृन्दावन - राधा का अधिष्ठान ।1।

शालवन - वन(देव) का अधिष्ठान ।2।

शिखण्डीवन - महादेव के शिखण्डी अवतार का स्थान ।3।

सैन्धवारण्य . सुनेत्र देव का अधिष्ठान ।4।

हैतुक वन - महादेवावतार अत्रि का अधिष्ठान ।5।

प्रियालवनक्षेत्र-अम्विकापति शिव का स्थान ।6।

रक्तकाननक्षेत्र- शिवस्थान ।7।

श्वेतारण्य शिव स्थान ।8।

भिल्लीवन महायोग का अधिष्ठान ।9।

---

(1) (मार्कण्डेय013/38) (2) (वामन090/32)

(3) (लिंग01/24/88) (4)(वामन090/31)

(5) (लिंग01/24/56) (6)(स्कन्द0अरुणा015/58)

(7) (स्कन्द0अरुणा015/78) (8) (स्कन्द0अरुणा015/53)

(9) (वामन030/24)

वनों का वर्णन- अनेक प्रसिद्ध वनो का रोचकवर्णन पुराणों मे उपलब्ध होता है।

बहुलोदकशाडवल वन।1।- यहॉ जल और नव तृण प्रचुर मात्रा में है।

नील देवदारुवन।2। इसी प्रकार सुमेरु पर्वत के एक शिखर के पास अवस्थित किसी वन के वर्णन में स्कन्द पुराण में कहा गया है - ' वहॉ के सभी कानन उत्कृष्ट मृगनाभिगन्ध से आमोदित है। वहॉ के लतागृह रतिस्थान है।वे सिद्ध विघा- थरो के आश्रय हैं और प्रवीण किन्नरों के कण्ठस्वर से निनादित हैं।3।

परिजात वन के विशेपण में 'रुक्म'(सुवर्णवर्णवाला) शब्द आया है।4। शखण को भी रुक्म कहा गया है।शिव को ज्योतिके कारण।5। विन्ध्यागिरिस्थ वन वर्णन, विल्वन श्रीवन और चम्पकवन का वर्णन।6। भी द्रप्टव्य है।

---

(1) (स्कन्द,अवन्तीक्षेत्र056/20) (2) (मत्स्य0117/4)

(3) (अवन्ती क्षेत्र01/15/16) (4) (वायु0112/35)

(5) (वामन057/19) (6) (वाय037अ0)

शखण पर 'शुभ्रं शखणं नाम चित्रं पुष्पितपादपम्।1।कहा गया है।

किंशुक वन के विषय मे वायु0 ने उसके गन्ध की प्रशंसा की है-'यस्य गन्धेन दिव्येन वास्यते परिमण्डलम्।'2। ही मिलता है।

वन में घटित विशिष्ट घटनाएँ- पुराणों में ऐसी अनेक घटनाओं का विवरण है,जो वनों में घटित हुई थी। नीचे कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख मात्र किया जा रहा है। पूर्ण विवरण तत्-तत् स्थलों में द्रष्टव्य है।

अलकास्थ चैत्ररथवन में पुरुरवा ने उर्वशी के साथ विहार किया था।3। अशोक वनिका मे ययाति ने वृषपर्वा की पुत्री को रखा था।4। उमा वन में राजा सुधुम्न स्त्री में परिणित हुए थे।5।

---

(1) (वायु पुराण 72/32) (2) (वायु पुराण 38/39)

(3) (विष्णु04/6/29;वायु091/68)

(4) (मत्स्य031/1/2) (5)(वायु085/25/28)

दण्डकवन की घटना तो रामायण में प्रसिद्ध ही है। द्वैतवन सम्बन्धी घटना भी महाभारत मे प्रसिद्ध है। नौमिपारण्य में कई बार विशाल यज्ञ अनुष्ठित हुआ था, यह पुराण प्रसिद्ध है।महाभारत में भी इसका उल्लेख है-'नौमिपारण्ये शौनकस्य फुलपतेः द्वादशवार्षिके सत्रे' /1/

इसमें पर्यायवाची शब्दो का भी व्यवहार मिलता है।जैसा उमावन /2/ को स्कन्दपुराण में गौरीवन कहा गया है।ऐसा प्रतीत होता है /3/ इसका कारण स्पष्ट है।

वन विचार के प्रसंग मे वृक्ष और पुष्प पर भी विचार होना चाहिए। पुराणों में स्थान -स्थान पर इन दोनों की सूची दी हुई है।यथा 74 वृक्षों की सूची /4/ इत्यादि।

वनों की संख्या- पुराणों में प्रायः किसी-किसी विशेष स्थानों से सम्वन्धित पर्वत,नदी आदि की संख्या भी दी गयी है। इस विषय में 'अष्टोत्तरमहाशैलाः तथाष्टवरपर्वताः /5/

---

(1) (आदि01/1) (2) (वायु085/25-28)

(3) (1/3/6/81)

(4) (प्रभाष क्षेत्र0327/2-11,196/15 से कुछ श्लोक इत्यादि)

(5) (वायु042/81)

कह कर महाशैलों और पर्वतों की सख्या स्पप्ट कर दिया गया है।स्कन्दपुराण में भी नदी संख्या पर 'सहस्त्रविशातिश्चैव पटशतानि तथैव च'।1। कहा गया है। उसी प्रकार प्रत्येक वर्प (द्वीपों का खण्ड मे) कितने नदी, पर्वत, आदि हैं। उनकी संख्या भी पुराणान्तर गत भुवनकोशों में दी हुई है। वन के विपय में यद्यपि इस प्रकार प्रतिद्वीपान्तर्गत संख्या नहीं मिलती। .

नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्रात और सर्वतोभद्र यह भागवत।2।की ऐसी गणना दुर्लभ है।

अरव्यत्रय=पुप्कराव्य, नैमिपारव्य और धर्मारप्य।3।, वनत्रय= ृन्दावन, खाण्डववन और द्वैतवन।

---

(6)(कुमारिका11/50)

(7)(5/16/15 भागवत पुराण)

(8)(स्कन्द06/189/13)

पूर्वाचार्यो की गणना इस प्रकार थी-

''सैन्धवं दण्डकारण्य जम्बूमार्ग च पुष्करम्

नैमिषं उत्पलारण्यमारण्यं नैमिष कुरुजाड्.गलम्

हेमदमर्बुद चैव नवारण्याः प्रकीर्तिताः ।।

वन के विषय में पौराणिक निर्देश- इसमें भौगोलिक तथ्य भी दिए रहते है। जिसमें वन सम्बन्धी इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं।

नागेश्वरपोवनम्- नर्मदा क्षेत्र के गर्गेश्वर तीर्थ के पास है1 तपोवन में ही आता है।

पुष्यशीतवन- यह कुरुक्षेत्र के अन्तर्गत है।2 कुरुक्षेत्रान्तर्गत अन्यान्य अनेक वनों का भौगोलिक विवरण वामनपुराण में है।

अरविन्दवन- गयास्य मुण्डपृष्ठपाद पर्वतके ऊपर3।

---

1. मत्स्य0 191/83 2. वामन0 34/5

3. गरुड़ 1/86/5

काम्यकवन- इसकी पूर्व दिशा में एक कुब्जा था इतनी छोटी वात भी पुराण मे दी गयी है।1

चम्पकवन- गुरूड़ पुराण मे इसकी स्थिति के विषय में कहा गया है।

''गयाशीर्षाद दक्षिणतों महानघाश्च परिश्मेंतत् स्मृतं चम्पकवन तत्र पाण्डु शिलास्ति हि।'' के दक्षिण और पश्चिम में यह वन है यहाँ पाण्डुशिला है।

महाकालवन-यह अवन्तीक्षेत्र है।इसका परिणाम एक योजन है। यहाँ स्कन्दपुराणान्तरण अवन्तीक्षेत्र माहात्म्य के आरम्भ में कहा गया है।

द्वैतवन- सरस्वती नदी यहाँ प्रवाहित है।2

धर्मवन- हिमवतपृष्ठ पर यह वन है।3

ब्रह्मारण्य- गयास्थमय नदी के पश्चिम में है।4

---

1. वामन0 42/1 2. वामन0 32/4

3. कूर्म0 1/14/26 4. गरूड़0 1/83/40

शरवण- उदयगिरि मे स्थिर तथा शतयोजन परिणाम युक्त।1

नागवन- वायु पुराण मे कहा गया है-

कौशिक्याद्या समुद्राच्च गड्.गाया:स्तदनन्तरम्।

अञ्जनस्यैवमूलस्य प्राच्या नागवन तु तत्।।

सुप्रतीकवन- उत्तरात् वस्य विन्ध्यस्य गड.गायादक्षिणे चयत् गंगोद्भेदात् करूषेभ्यः सुप्रतीकस्य तत् वन2।यहॉ इस वन की उत्तर दक्षिण दिशा से सम्वन्धित विन्ध्य गंगा का नाम भी है।

कर्दमाश्रम के चारो ओर जो वन है, उसके लिए 'समन्तादयोजनशत तद्वन परिमण्डल कहा गया है3। गोलाकार के कारण दैर्ध्यादि न कहकर परिधि नाम का कहा गया है।

---

1. वामन0 57/15
2. वायु0 69/241
3. वायु0 38/7

पुराणो में उद्भिद् विषयक अवधारणा

चिरकाल से ही इस देश के लोकमानस में वृक्ष पर असाधारण श्रद्धा की दृष्टि रही है। और यहाँ के निवासी वृक्षों को चेतन मानकर उनका लालन पालन करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते है। वे वृक्ष की लौकिक उपादेयता ही नहीं समझतें, बल्कि वृक्षों पर पूज्य दृष्टि भी रखते है। पुराणों में इस विषय में विपुल सामग्री सुरक्षित है। वृक्षों की उपादेयता-अनुपादेयता, कौन वृक्ष छेदनीय है कौन नही है, वृक्षों से लौकिक विशिष्ट लाभ-इत्यादि विषयों पर इन ग्रन्थों में जो मत मिलते हैं, परीक्षण-पूर्वक उन मतों की उपयुक्तता को जानकर उनका यथा सम्भव उपयोग करना चाहिए। यहाँ इस विषय में एक सामान्य विचार अपेक्षित है-

वृक्ष की सृष्टि और उसका मुख्यत्व-

भारतीय दृषिट में वृक्ष चेतन जीव है। इसमें आचार्यो में मतभेद नहीं है। पुराणों के सृष्टि प्रकरण में वृक्षोत्पत्ति को 'मुख्य सृष्टि'कहा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण में इस विषय का विवरण इस प्रकार मिलता है-

स्र्वतस्तमसा चैव वीजजकुम्भलतावृतः ।

हिन्तश्चाप्रकाशस्तथा निः संज्ञ एवं च।।

यस्मात् तेषां कताबृद्धिर्दुः खानि करणानि च।

तस्मात् ते संवृत्तात्मानों नगा मुख्याः प्रकीर्तिताः ।।

ब्रह्मामण्ड पुराण '1/5/33-34'

इस श्लोक से पता चलता है कि वृक्ष वह चेतन प्राणी है जो तामस अज्ञान से बाह्यतः आवृत्त है यघपि अन्तर में वह ज्ञानवान है। वृक्ष को इस लिए 'संवृतात्मा' कहा जाता हे इसका दूसरा नाम 'मुख्य' है।

यह प्रकरण कूर्म. 1/7/3-5, वायु. 6/38-40 है।

इस प्रसंग में विष्णुपुराण का मत भी आलोच्य है। वहाँ कहा गया है कि उद्भिद (स्थावर) सर्ग पाँच भागों में विभक्त है तथा यह प्रतिबोधवान है। (मै कौन हूँ ऐसा ज्ञान वृक्षों में नहीं है। शब्दादि वाह्यविषय एवं सुखादि आन्तर विषय में यह प्राणी ज्ञान शून्य है। संवृतात्मा मूढ़ स्वभाव। श्लोक इस प्रकार है-

पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतोऽ प्रतिबोधवान्

बहिरन्तोऽ प्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः

मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम्।।

विष्णु पुराण (1/5/6-7)

श्रीधर स्वामी कहते हैं कि 'वृक्ष-गुल्म-लता-वीरुत-तृण' यह पाँच स्थावर के भेद हैं। स्वामी ने यह सूचना दी है कि पर्वतों की सृष्टि वृक्षों से पहले हुई थी।

इस विषय में भागवत का वाक्य भी द्रष्टव्य है-

सप्तमी मुख्य सर्गस्तु षड्विध स्तस्थुषां चयः ।

वनस्पत्योषाधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ।

उत्स्रोतसस्तमः प्राया अन्तस्पर्शाविशेषिणः ।।

भागवत पुराण 3/10/18-20

स्थावर सृष्टि को मुख्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह 'मुखमिव प्रथमं कृतः'। स्थावर सृष्टि की प्राथमिकता के औचित्य पर जड़ वैज्ञानिकों का भी ऐकमत्य है यह ज्ञातत्य है।

उद्भिद् का लक्षण- उद्भिद या उद्भिज्ज का लक्षण है 'भूमिम् उद्भिय जायते वृक्षादिकम्' इससे यह स्पष्ट होता है कि वृक्ष जीव है1 तथा वे उकस्मात् प्रादुर्भाव होते हैं। वस्तुतः एक मत भी था कि भूमि या उदक का भेदन कर जो उत्पन्न होता है। वह उद्भिद् है। स्थावर उद्भिद और जगम उद्भिद के विषय में रत्न प्रभाकर ने कहा है- ''उदकम् उद्भिभ यूकादि जगड.मम।''

तु. भित्वा तु पृथिवी यानि जायन्ते काल पर्ययात्।

उद्भिज्जानि च तान्याहुर्भूतानि द्विजसत्तमाः ।

(महाभारत अनुशासन पर्व)

चतुर्विध प्राणियों का अन्यतम उद्भिद्- पुराण में चार प्रकार जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज इन चार प्रकार के प्राणियों में, एक-दूसरे से क्या भेद है, इस पर महाभारत में एक असाधारण उल्लेख आया है-

एवं चतुर्विधां जातिमात्मा संसृत्य तिष्ठित्।

स्पर्शनैकेन्दियेणात्मा विष्ठत्युद्भिपजेषु वै।।

शरीरस्पर्श - रूपाभ्यां स्वदजेष्यपि तिष्ठति।

पञ्चभिश्चेन्द्रिय - द्वारैर्जिवन्त्यण्डजरायुजाः ।।

(महाभारत अनुशासन पर्व 227/13-14)

उद्भिद् में आत्मा केवल स्पर्शेन्द्रिय से अपने को व्यक्त करती है। स्वेदज प्राणियों में इसी प्रकार शरीरस्पर्श और रूप से अपने को व्यक्त करती है।

भूमि और जल के संयोग से उद्भिद का जन्म होता है। शीत उष्ण के संयोग से स्वेदज प्राणी उत्पन्न होते हैं। क्लेद और बीज के संयोग से अण्डज तथा शुक्र शोणित के संयोग से जरायुज प्राणी का

जन्म होता है। यहाँ इन श्लोकों पर विचार करने के लिए स्थान नहीं है। अतः केवल निर्देश मात्रा कर दिया गया है।

पुराणो में इन चतुर्विध प्राणियों के प्रकारों की गणना हैं यह गणना किस तत्व पर आधृत है इसकी उपपत्ति करनी चाहिए। इस विषय में यह श्लोक बहुत ही प्रसिद्ध है।

एकविंशतिलक्षाणि अण्डजाः परिकीर्तिताः ।

स्वदेजाश्यच तथैवोक्ता उद्भिज्जास्तत् प्रगाणतः ।

जरायुजाश्च तावन्तो मनुष्याघाश्च जन्तवः ।।

महाभारत अनुशासन पर्व शान्ति. 184/17

वृक्षों के जीवत्व में प्रमाण - महाभारत में इस विषय में एक श्लोक है-

सुखदुः खयोश्च ग्रहणच्छिन्नस्य च विरोहणात्

जीव पश्यामि वृक्षाणां अचैतन्यं न विघते

अग्नि. 282 अध्याय

यहाँ वृक्षों की सजीवता को युक्ति से उपपादित किया गया है और आज के वैज्ञानिक इस सत्य को प्रयोग से भी सिद्ध कर रहे हैं।

मानव शरीर के साथ वृक्षों का आन्तरिक सादृश्य हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि जैसे मानव एक चेतन प्राणी है, ठीक उसी प्रकार वृक्ष भी एक चेतन प्राणी है, उसी प्रकार वृक्ष भी एक चेतन जीव है।

पुराणों में वृक्ष-विघा-

वृक्ष विघा पर विचार करना पुराणों का एक प्रिय विषय है पुराणों में तो वृक्षायुर्वेद का प्रकरण भी मिलता है। ब्राह्मण पुराण में कहा गया है-

''वृक्षाणाम् ओषधीनां च वीरुधां च प्रकीर्तिनम्।

आम्रादिनां तरुणां च सर्जन। व्यञ्जनं तथा।

(ब्राह्मण्ड पुराण 1/1/51-52)

यह पुराण विषय सूची में कहा गया है। जिसमें इस विषय की महत्ता सिद्ध होती है।

पौराणिक वाड.मय में वृक्ष विघा पर विशिष्ट बातें है। यह भी इस श्लोक से ज्ञात होता है जो दृष्टव्य है-

''यथा च पादपो. मूल-स्कन्ध-शाखादिसंयुतः ।

अघवीजात प्रभवति वीजान्यन्यानि वै ततः ।।

प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमाः ।

तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः ।।

(ब्रह्मपुराण 23/32-34)

आद्यबीज से मूलस्कन्धआदि युक्त वृक्ष उत्पन्न होता है। उससे पुनः द्रुम होता है। बीज से वृक्ष अपने कारण के धर्म का अनुगत होकर होता है यह यहाँ कहा गया है। इसकी व्याख्या किसी अधिकारी विद्वान को करनी चाहिए।

पुनः इसी स्थल पर कहा गया है-

बीजाद् वृक्षप्ररोहेण यथा नाप चयस्तरोः ।

भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ।।

(ब्रह्मपुराण 23/36)

अर्थात् बीज से वृक्ष के प्ररोहण होने पर बीज का अपचय नहीं होता।

वृक्ष के भेद-

श्रीमद्भागवत पुराण में स्थावर वृक्ष के छः भेद बताये गये है।1 यथा वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम। इन सबों के लक्षण इस प्रकार है।

1. **वनस्पति**- ये पुष्प विना फलन्ति - पुष्प के विना जिसका फल होता है।
2. **औषधि**- फलपाकान्त = फलपाक होने पर जो मर जाता है।
3. **लता**= आरोहणापेक्षा = जो किसी पर आश्रित रहती है।
4. **त्वक्सार** = वेणु, बांस आदि
5. **वीरुध्** काठिन्य के कारण जो लता आरोहण पर अनपेक्ष हो जाती है।
6. **द्रुम**- ये पुष्पैः फलन्ति।

उपरोक्त शब्द की व्याख्या महाभारत में भी मिलती है-

यथा- उद्भिज्जाः स्वावरा प्रोक्ता स्तेषां पञ्चैवजायतः ।

वृक्ष गुल्मलतावल्लयः त्वक्सारास्तृणजातयः ।।

देवबोध- ''उद्भिज्ज जायत इत्युद्भिज्जाः । वृक्षः स्कन्धशाखादिमा्। गुल्माः भिन्नजटाः । समूलभेदिनोऽ तस्यादयः । लताः प्राश्रयप्ररोहा लवङ्.द्राक्षादयः । वल्लयः एक जटाला शकादयः ।

महाभारत भीष्म पर्व 5/18

वृक्ष के पांच विभाग2 -इसमें जो ''वृक्षादिभेदैर्यद्वेदि'' कहा गया है, वह भेद पाँच प्रकार का है- वृक्ष, गुल्म, लता, वीरुध और तृण। त्वकसार में बाँस आदि आते हैं। इन सभी के विशिष्ट लक्षण मिलते

हैं। उद्भिद् के ये भेद अन्य पुराणों में मिलते हैं। मार्कण्डेय पुराण में कहा गया है-

''वृक्षेष्वय लता-गुल्म-त्वकसार, तृणजातिषु''

मार्कण्डेय पुराण 4/19

यह वर्गीकरण किस आधार पर किया गया है। इस पर वृक्ष विद्या विदो को विचार करना चाहिए।

वृक्ष सम्बन्धी रुपकालंकार-

वृक्षों के विभिन्न अवयवों को लेकर रूपक अंलकार का प्रयोग पुराणों में अनेक स्थानों पर मिलता है। मार्कण्डेय पुराण में संसार और वृक्ष का एक असाधारण रूपक मिलता है। यथा

अहमित्यड.कुरोत्पन्नोममेति स्कन्धवान महान्।

गृहक्षेत्रोंच्चशाखाश्च पुत्रदारादि-पल्लवः।।

धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्धितः।

पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुः ख-महाफलः।।

तत्र मुक्ति पथव्यापि मूढसम्पर्कसेचनः।

विधित्साभृड.गमालाढय्यो कृतज्ञानमहातरु।।

यैस्तु सत्संग पाषाणशितेन ममतातरुः।

छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना।।

मार्कण्डेय पुराण 38/8-12

यहाँ अज्ञान-मूलक ममता को तरु मानकर जो रूपक दिखाया गया है, उसकी चमत्कारिता देखते ही बनती है। यहाँ वृक्ष से सम्बन्धी इन शब्दों का व्यवहार है- अंकुर, स्कन्ध, उच्च शाखा, अग्रपुष्प, महाफल, सेचन इत्यादि।

विष्णु 3/17/29

एक ऐसा ही दूसरा रूपक महाभारत में मिलता है महाभारत के पर्वो के साथ वृक्षावयवो का रूपक आदि पर्व में दृष्टव्य है।

महाभारत 1/1/88-91

यहाँ वृक्ष सम्बन्धी निम्नोक्त शब्द मिलते है- वीज, मूल, स्कन्द, विटड्.क, सार, महाशाखा, पलाश इत्यादि। ऐसे स्थल पुराणों में भी है।

वृक्ष रुपी विष्णु-

विष्णु पुराण में विष्णु की स्तुति में कहा गया है-

भी गाँव में यह दृष्टि कही-कहीं दृष्टिगोचर होती है। यह मान्यता अग्निपुराण के निम्नोक्त श्लोक में प्रतिभात होती है-

तस्मात् सुबहवो वृक्षा रोप्याः श्रेयोऽ मिवाज्छता।

पुत्रवत् परिपाल्याश्च ते पुत्रा धर्मतः स्मृतः ।।

उद्भिद की तरह उपकार कहाँ मिलेंगे? ये अपने पत्र से, पुष्प से, फल से, छाया से, वल्कल से और काष्ठ से सबका उपकार करते है। पुराणों में ठीक ही कहा गया है-

पुत्र, पुष्प, फल-च्छाया-मूल-वल्कल-दारुभिः ।

परेषामुपकुर्वन्ति तारयन्ति पितामहान्।।

वृक्षों की इस उपादेयता के कारण ही वृक्ष-सम्बन्धी उत्पातों के प्रमशन के लिए कुछ उपाय भी पुराणों में कहे गए हैं। मत्स्य पुराण के 23वें अध्याय में यह विषय आया है। (अद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रमशनं नाम) यहाँ कहा गया है कि जब वृक्षों का रस स्वतः अधिक क्षरित होता है, तब आँधी के बिना वृक्ष-शाखा गिर पड़ती है। अकाल में फल, पुष्प, उत्पन्न होते हैं। सहसा यों ही वृक्ष शुष्क हो जाते है। उस परिस्थिति में उन उत्पातों को शान्ति के लिए कौन सा कर्म करना चाहिए। सम्भवतः ज्योतिर्विद गर्ग का इस विषय पर कोई ग्रन्थ था। जिससे यह प्रकरण लिया गया है अतिवृष्टि अनावृष्टि के प्रतिकार के लिए भी गर्ग का मत 233 वें अध्याय में दिया गया है।

मत्स्य पुराण के 59 अध्याय में 'वृक्षोत्सव' का विवरण मिलता है। जिसका नामान्तर है ''वृक्षोद्यापनविधि'' वृक्ष प्रतिष्ठा के अर्थवादपरक जो श्लोक यहाँ कहे गए है, उनमें कुछ सत्य का अंश भी है, यह ज्ञातव्य है।

वृक्षारोपण की महिमा के विषय में एक सारवान विवरण पद्मपुराणा में मिलता हैं यद्यपि यहाँ की सब बाते धार्मिक दृष्टि से कही गयी है। तथापि उनसे कुछ लौकिक ज्ञान भी हो जाता है। यथा जल के समीप वृक्षारोपण करने से अधिक फललाभ होता है। इस दृष्टि की सत्यता साधारण वुद्धि से भी जानी जाती है।

बिल्व, निम्ब, न्यग्रोध आदि वृक्षों की इस उपकारिता को देखकर इस पुराण में यह भी कह दिया गया है कि 'कृत्रिभवन' की रचना करने वाला स्वर्गभाक होता है। आज भी उन कृत्रिम उन कृत्रिम वनों की महती आवश्यकता है। यह विज्ञजन जानते ही है। पद्मपुराण का यह श्लोक कितना महनीय है कि वृक्ष पुत्रहीन के प्रति पुत्रवत होते हैं।

''अपुत्रस्य च पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते''।

प्रसंगतः यह भी ज्ञातव्य है कि कौन वृक्ष किस प्रकार से माड. गल्यप्रद होता है और उपादेय वृक्ष भी किस हेतु कब वर्जनीय होता है। इसका एक उत्कृष्ट विवरण ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है। इस स्थल का वैज्ञानिक अध्ययन आवश्यक है।

छठा अध्याय

पर्यावरण एवं तीर्थमाहात्म्य

पर्यावरण एवं तीर्थमाहात्म्य

भारतीय ऋषियों ने तीर्थ के लिए उन्हीं स्थलों को चुना जहाँ प्रकृति में कुछ विशिष्टता, रमणीयता या सुन्दरता थी, जिससे कि उसका मन संकीर्ण विचारधाराओं के ऊपर उठ सके और अनन्त में अपनी स्थिति का परिज्ञान कर सकें। भारतीय मनीषियों ने तीर्थ स्थल के लिए ऐसे स्थलों का चुनाव किया जो प्रकृति के खुले वातावरण में हो। इसीलिए भारत के जितने भी तीर्थ स्थल हैं वे सभी पर्यावरण की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि जितने भी तीर्थस्थल है वे सभी जन कोलाहल से दूर प्रकृति के गोद में स्थित हैं। वैसे प्राचीन काल में पर्यावरण की कोई समस्या नहीं थी फिर ऋषिगण इसके प्रति सचेष्ठ दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि ऋषिगण नगर से दूर वनों में अपना आश्रम बनाते थे। उनकी मान्यता थी प्रकृति के नजदीक रह कर शुद्ध वातावरण में ही व्यक्ति अच्छी विद्या को अर्जित कर सकता है। जैसा कि वर्तमान विज्ञान भी मानता है कि शुद्ध वातावरण में ही अच्छे मस्तिष्क का विकास होता है। अतः इसीलिए प्राचीन काल में पर्यावरण की समस्या न होते हुए भी पर्यावरण के संरक्षण का विशेष ध्यान दिया गया था।

अतः इसीलिए वर्तमान समय में तीर्थ एवं पर्यावरण विषय अति प्रासांगिक हो उठता है। प्राचीन काल के जितने भी तीर्थस्थल है वे नगरीय जीवन से दूर प्रकृति की रमणीक गोद में, कहीं पर्वत की चोटी पर, कहीं घने जंगलों के बीच अथवा नदी के सुन्दर तटों पर स्थित थे। अतः इन तीर्थस्थलों को धार्मिक मान्यताओं से जोड़कर जन सामान्य

के लिए इसे सुलभ बना दिया। जिससे व्यक्ति यहाँ जाकर प्रकृति की मनोरम कृति को समझ सके। तीर्थस्थल प्रकृति संरक्षण के अति महत्वपूर्ण उपादान सिद्ध हुए क्योंकि प्रकृति के मनोरम स्थलों को जैसे नदी, पर्वत तथा वनों में तीर्थस्थल की स्थापना करके उसके ऊपर धर्म का आवरण डाल दिया जिससे जन सामान्य पूजा अर्चन करके प्रकृति के इन मनोरम स्थलों को सुरक्षा प्रदान की। अतः इसीलिए तीर्थस्थल पर्यावरण के अभिन्न अंग हो गये। तीर्थस्थल आज नगरों या कस्बों में हो गये इसका मतलब यह नहीं है कि तीर्थों की स्थापना नगरों में की गयी थी। आज के नगरीकरण की वजह से तीर्थस्थलों के पास उनकी प्राकृतिक सुन्दरता पर्यावरण की शुद्धता की वजह से तीर्थों के पास नगरों या कस्बों का विकास संभव हो सका।

अतः जितने भी देवी देवताओं के मन्दिरों की स्थापना प्राचीन काल में की गयी उनसे अधिकांश पर्वतों की चोटियों पर या घने जंगलों में या नदियों के किनारे सुरम्य स्थानों पर। प्राचीन मनीषियों की धारणा रही है कि प्रकृति की मनोरम छटा में व्यक्ति के अन्दर अच्छे विचार आते हैं जैसा कि प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत जिसमें व्यक्ति अपना बौद्धिक विकास करता था वह था ब्रह्मचर्य आश्रम और वानप्रस्थ था। ब्रह्मचर्य आश्रम में व्यक्ति शिक्षा का अर्जन करता था जो नगरों से दूर घने जंगलों में होता था। जहाँ व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता था। वानप्रस्थ में भी व्यक्ति चिन्तन करता था जो जंगलों में ही होता था। अतः इससे स्पष्ट है कि प्रकृति की छठा में ही शुद्ध पर्यावरण में ऋषिगण समाज के लिए उत्कृष्ट व्यक्तित्व के निर्माण में अपना योगदान प्रदान करते थे।

अतः गृहस्थ जीवन के लिए तीर्थस्थल ही व्यक्ति को शुद्ध वातावरण में ले

जाकर उनके व्यक्तित्व और आध्यात्मिक विकाश में योगदान प्रदान करते थे। यदि कहीं कोई सुन्दर रमणीक जन कोलाहल से दूर सुरम्य स्थान है तो पश्चिम के लोग वहाँ यात्रियों के लिए होटल निर्माण की बात सोचेंगे, किन्तु वही प्राचीन भारतीय लोग किसी पवित्र तीर्थस्थल के निर्माण की बात सोचते थे।

प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रायः सभी पहलू धर्म से प्रभावित थे। तीर्थ धर्म का विधायक (जोड़ने वाला) था। अतः धर्म के संवर्द्धन में तीर्थस्थलों का महत्वपूर्ण स्थान है। तीर्थस्थलों की स्थापना प्रायः प्रकृति के गोद में होता था जो शुद्ध और शान्त वातावरण में होता था। अतः जितने भी देवी देवताओं के पूजा स्थल है। प्रायः सभी पर्वतों की चोटियों घने जंगलों या नदियों के तट पर स्थित है। अतः इसीलिए भारतीय साहित्य में नादियों को देवी तथा वनों को भी अरण्य देवी के रूप में माना गया था। संभवतः इन प्राकृतिक उपमानों को प्रदूषण से बचाने के लिए इनको दैवी रूप में स्वीकार किया गया है। जिससे पर्यावरण को किसी प्रकार की समस्या न हो।

तीर्थयात्रा

सभी धर्मों में कुछ विशिष्ट स्थलों को पवित्रता पर बल दिया गया है और वहाँ जाने के लिए धार्मिक व्यवस्था बतलायी गयी है। या उनकी तीर्थयात्रा करने के विषय में प्रशंसा के वचन कहे गये हैं। मुसलमानों के पांच व्यावहारिक धार्मिक कर्तत्वों में एक है जीवन में कम से कम एक बार हज करना मक्का एवं मदीना जाना जो क्रम से मुहम्मद साहब के जन्म एवं मृत्यु के स्थल है। बौद्धों के चार तीर्थ स्थल हैं; लुम्बिनी (रुम्मिनदेई), बोधगया, सारनाथ एवं कुशीनारा, जो क्रम से भगवान बुद्ध के जन्म-स्थान सम्बोधि-स्थल (जहाँ उन्होंने पहला धार्मिक उपदेश दिया था। एवं निर्वाण स्थल (जहाँ उनकी मृत्यु हुई)

के नाम से प्रसिद्ध है। ईसाइयों के लिए जेरुसलेम सर्वोच्च पवित्र स्थल है, जहाँ ऐतिहासिक कालों में बड़ी-बड़ी सैनिक तीर्थयात्रायें की गयी थीं।

भारतवर्ष में पवित्र स्थानों ने अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। विशाल लम्बी नदियाँ, पर्वत एवं वन सदैव पुण्यप्रद एवं दिव्य स्थल कहे गये हैं। भारतवर्ष ने तीर्थ यात्रा के स्थलों को वहां चुना जहाँ प्रकृति में कुछ विशिष्ट रमणीयता या सुन्दरता थी, जिससे की उसका मन संकीर्ण आवश्यकताओं से ऊपर उठ सके और अनन्त में अपनी स्थिति का परिज्ञान कर सके।

आधुनिक पाश्चात्य लोगों तथा प्राचीन एवं मध्यकाल के भारतीयों के दृष्टिकोण में मौलिक भेद है मौलिक भेद है (जो आजकल अत्यधिक मात्रा में विराजमान है)। यदि कहीं कोई सुन्दल स्थल है तो वहाँ पश्चिम के अधिकांश लोग वहाँ यात्रियों के लिए होटल-निर्माण की बात सोचेंगे, किन्तु वहीं प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय लोग किसी पवित्र स्थल के निर्माण की बात सोचते थे।

पवित्र अथवा तीर्थ के स्थलों पर देवताओं का निवास रहता है, अतः इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्राओं पर बल दिया है। विष्णुधर्मसूत्र (2/16-17) के अनुसार सामान्य धर्म में निम्न बातें आती हैं - क्षमा, सत्य, दम (मानस संयम), शौच, दान इन्द्रिय-संयम, अहिंसा, गुरुशुश्रुषा, तीर्थयात्रा, दया, आर्जव (ऋजुता) लोभशून्यता, देवब्राह्मण पूजन एवं अनभ्यसूया (ईर्ष्या से मुक्ति)।

जिस प्रकार मानव शरीर के कुछ अंग, यथा दाहिना हाथ या कर्ण, अन्य अंगों से अपेक्षाकृत पवित्र माने जाते हैं उसी प्रकार पृथिवी के भी कुछ स्थल पवित्र माने जाते

हैं। तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं - यथा स्थल के कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक विशेषताओं के कारण, या किसी जलीय स्थल की अनोखी रमणीयता के कारण या किसी तपःपूत ऋषि या मुनि के वहाँ (स्नान करने, तप साधना करने आदि के लिए) रहने के कारण। अतः तीर्थ का अर्थ है वह स्थान या स्थल या जलयुक्त स्थान (नदी, प्रपात, जलाशय आदि) जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जाग्रत करे। इसके लिए किसी आकस्मिक परिस्थिति का होना आवश्यक नहीं हैं।[1] ऐसा भी कहा जाता है कि वे स्थल जिन्हें बुद्ध लोगों एवं मुनियों ने तीर्थ की संज्ञा दी, तीर्थ है; जैसा कि अपने व्याकरण में पाणिनी ने नदी और वृद्धि जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। स्कन्द. (1/2/13/10) ने कहा है कि जहाँ प्राचीनकाल से सत् पुरुषर पुण्यार्जन के लिए रहते थे वे तीर्थ स्थल हैं। मुख्य बात महान पुरुषों के पास जाना है तीर्थयात्रा करना तो गौण है।[2]

ऋग्वेद में जलों, सामान्य रूप से सभी नदियों तथा कुछ विख्यात नदियों की ओर श्रद्धा के साथ संकेत किया गया है। उन्हें दैविक शक्तिपूर्ण होने से पूजार्ह माना गया है। ऋग्वेद के चार मंत्रों में ऐसा आया है - *'ता आपो देवीरिह मामवुन्तु' अर्थात दैवी जल हमारी रक्षा करें।* ऐसी कुछ स्तुतियाँ हैं जो देवता स्वरूप जलों को सम्बोधित है। वे मानव को न केवल शरीर रूप से पवित्र करने वाले कहे गये हैं, प्रत्युत सम्यक् मार्ग से

---

1. यथा शरीरस्योद्देशााः केन्चिभेध्यतमाः स्मृताः। तथा पृथिव्या उद्देश्याः केचित् पुण्यतमाः स्मृताः II प्रभावाददद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा। परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता II पद्यम. (उत्तर खण्ड 237/25-27) स्कन्द (काशीखण्ड 6/43-44); नारदीपपुराण (2/62/46-47)।

2. मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषंगतः। सद्भिः समाश्रितो भूप भूमिभागस्तयोच्यते।। स्कन्द. (1/2/13/10); यद्धि पूर्वतमैः सद्भिः सेवितं धर्मसिद्धये। तद्धि पुण्यतमं लोके सन्तस्तीर्थ प्रचक्षते।। स्कन्द. (पृथ्वीच. पाण्डुलिपि 135)

हटने के फलस्वरूप संचित दोषों एवं पापों से छुटकारा देने के लिए भी उनका आह्वान किया गया है। तै. सं (2/6/8/3) ने उद्घोष किया है कि सभी देवता जलों में केन्द्रित है (आपों वै सर्वा देवता)। अर्थववेद (1/33/1) में जलों को शुद्ध एवं पवित्र करने वाला कहा गया है, और सुख देने के लिए उनका आह्वान किया गया है।[1] ऋ. (10/104/8) में इन्द्र को देवी एवं मनुष्यों के लिए 99 बहती हुई नदियों को लाने वाला कहा गया है। ऋ. (10/64/8) में सात की तिगुनी (अर्थात् 21) नदियों की चर्चा है और उसके आगे वाली ऋचा में सरस्वती, सरयू एवं सिन्धु नामक तीन नदियों को देवी एवं माताओं के रूप में उल्लखित किया गया है। ऋ. (1/32/12, 1/34/8, 1/35/8, 2/12/12, 4/28/1, 8/24/27 एवं 10/43/3) में सप्त सिन्धुओं का उल्लेख किया गया है। सरस्वती के लिए तीन स्तुतियाँ कहीं गयी है। (ऋ. 6/61 तथा 7/95 एवं 96) में इसका उल्लेख हुआ है। ऋ. (7/92/2) में आया है कि केवल सरस्वती ही जो पर्वतों से बहती हुई समुद्र की ओर जाती है, अन्य में ऐसी है जिसने नाहुष की प्रार्थना सुनी और उसे स्वीकार किया। सरस्वती के तटों पर एक राजा तथा कुछ लोग रहते थे। ऋ. (7/96/1) में सरस्वती को नदियों में असुर्या (दैवी उत्पत्ति वाली) कहा गया है। ऋ. (2/4/16) में सरस्वती को नदियों और देवियों में श्रेष्ठ कहा गया है। (अम्बित में नदीतमें देवितमे सरस्वती)। ऋ. (1/3/11-12) ने सरस्वती को प्रशंसा नदी एवं देवी के रूप में, पावक (पवित्र करने वाली) मधुर एवं सत्यपूर्ण शब्दों को कहलाने वाली, सद्विचारों को जगाने वाली अपनी बाढ़ों की ओर ध्यान जगाने वाली कहते हुए की है।

ऋ. (8/6/28) में सम्भवतः कहा गया है कि पर्वतों की घाटियाँ एवं नदियों के

---

1. हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः। या अग्नि गर्भ दधिरे सुवर्णास्ताम न आपः शं स्योना भवन्तु II अथर्व. (1/33/1)।

संगम पवित्र है। प्राचीन लोगों ने पर्वतों को देव निवास माना है। ऋ. में पर्वत को इन्द्र को संयुक्त देवता कहा गया है - हे इन्द्र एवं पर्वत आप लोग हमें (हमारी बुद्धि को) पवित्र कर दे। (ऋ. 1/122/3) हे इन्द्र एवं पर्वत, आप दोनों युद्ध में आगे होकर अपने वज्र से सेना लेकर आक्रमण करने वाले को मार डालो। गौतम, बौ. ध. सू. एवं वसिषृठधर्मसूत्र में भी वही सूत्र आया है कि वे स्थान (देश) पुनीत है और पाप के नाशक हैं वे हैं पर्वत, नदियाँ, पवित्र सरोवर, तीर्थ-स्थल, ऋषि-निवास गोसाला एवं देवों के मंदिर ।

वायु. (77/117) एवं कूर्म पुराण (2/37/49-50) का कथन है कि हिमालय के सभी भाग पुनीत हैं, गंगा सभी स्थानों में पुण्य (पवित्र) है; समुद्र में गिरने वाली सभी नदियाँ पवित्र हैं और समुद्र सर्वाधिक पवित्र है।[1] पद्म. (भूमि खण्ड 39/46-47) का कथन है कि चाहे सभी नदियाँ चाहें वे ग्रामों से या वनों से होकर जाती हैं पुनीत है और जहाँ नदियों के तट का कोई तीर्थनाम न हो उसे विष्णुतीर्थ कहना चाहिए।

---

1. सर्व पुण्यं हिमवतों गंगा पुण्या च सर्वतः। समुद्रगा समुद्राश्च सर्वे पुण्याः समन्ततः II वायु. (77/1/17); सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गंगा .... ततः I नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः II कूर्म. (2/37/49-50)। 'राजा समस्ततीर्थनां सागरः सरितांपतिः।' नारदीय. (उत्तर 58/19)। सर्वाः समुद्रगाः पुण्याः सर्वे पुण्या नगोत्तमाः I सर्वमायतनं पुण्यं सर्वे समुद्रगाः पुण्याः वनाश्रमाः II (तीर्थकल्प. पृ. 250); पद्म. (4/93-46) में भी ये ही शब्द आये हैं, केवल वराश्रयाः पाठ-भेद है। बड़े-बड़े पर्वत, जिन्हें कुलपर्वत कहा जाता है, सामान्यतः ये हैं - महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः I विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः II कूर्मः (1/47/23-24), वामन. (13/14-15) वायु0 (1/85), मत्स्य (113/10-1) एवं ब्रह्म. (18/16) ने उन्हें भिन्न रूप से परिगणित किया है। नीलमत पुराण में (57) में ऐसा आया है - महेन्द्रों ... ऋक्षवानापि I विन्ध्यश्च पारियात्रश्च न विनश्यन्ति पर्वताः I ब्रहमाण्ड. (2/16-39) एवं वायु. (45/108) ने समुद्र में गिरने वाली नदियों के विषय में लिखा है 'तास्तु नद्यः सरस्वत्यः सर्वा गंगाः समुद्रगाः I विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः II'

हिमाच्छादित पर्वतों, प्राणयायिनी विशाल, नदियों एवं बड़े वनों की सौन्दर्य शोभा एवं गरिमा सभी लोगों के मन को को मुग्ध कर लेती है और यह सोचने को प्रेरित करती है कि उनमें कोई दैवी सत्ता है और ऐसी परिवेश में परमब्रह्म आंशिक रूप में अभिव्यंजित रहता है। आधुनिक काल में प्रोटेस्टैंट यूरोप एवं अमेरिका में कदाचित ही कोई व्यक्ति तीर्थ यात्रा करता हो। हां इसके स्थान पर वहाँ के लोग विश्राम करने, स्वास्थ्य लाभ के लिए, प्राकृतिक शोभा के दर्शनार्थ एवं संकुल जीवन से हटकर खुले वातावरण में भ्रमणार्थ आते-जाते हैं। किन्तु आज भी तीर्थ-स्थान में रोग-निवारणार्थ जाना देखने में आता है। डा. अलेक्सिस कैरेल, जो एक प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक हैं एवं नोबेल पुरस्कार-विजेता हैं के ग्रंथ - 'ए जर्नी टू लौर्डेस' में फ्रांस में स्थित लौर्डेस में प्रकट हुए चमकत्कारों के वर्णन से पश्चिम के लोगों में तीर्थयात्रा के विषय में एक नयी मनोवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ है।

ऋ. (10/146/1) में विशाल वन (अरण्यानी) को देवता के रूप में संबोधित किया गया है। वामन पुराण (34/3-5) ने कुरुक्षेत्र के सात वनों को पुण्यप्रद एवं पापहारी कहा है, जो ये हैं - काम्यकवन, अदितिवन, व्यावसन, फलकीवन, सूर्यवन, मधुवन एवं पुण्यशीतवन।[1]

महाभारत एवं पुराणों में तीर्थों की महिमा गायी गई है और उन्हें यज्ञों से बढ़कर माना गया है। वन पर्व (82/13-17) में देवयज्ञों एवं तीर्थयात्राओं से तुलना की गयी है। यज्ञों में बहुत से पात्रों, यन्त्रौं, संभार-संचयन पुरोहितों का सहयोग, पत्नी की उपस्थिति आदि की आवश्यकता होती है अतः उनका संपादन राजकुमारों एवं धनिक लोगों द्वारा ही

1. शृणु सत्त वनानीह कुरूक्षेत्रस्य मध्यतः I येषां नामानि पुष्यानि सर्वपापहराणि च II काम्यकं च वनं पुण्यम्.। वामन पुराण (34/3-5)।

संभव है। निर्धनों विधुरो, असहायों, मित्रविहीनों द्वारा उनका संपादन नहीं है। तीर्थ यात्रा द्वारा जो पुण्य प्राप्त होते हैं वे अग्निष्टोम जैसे यज्ञों द्वारा जिनमें पुरोहित को अधिक दक्षिणा देनी पड़ती है, प्राप्त नहीं हो सकते अतः तीर्थयात्रा यज्ञों से उत्तम है।[1] तीर्थयात्रा से पूर्ण पुण्य प्राप्त करने के लिए उच्च नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों पर बहुत बल दिया है। ऐसा कहा गया है - जिनके हाथ, पांव मन, सुसंयत है, जिसे विद्या, तप एवं कीर्ति प्राप्त है वही तीर्थ यात्रा से पूर्ण फल प्राप्त कर सकता है। जो प्रतिग्रह (दान ग्रहण आदि) से दूर रहता है जो कुछ मिल जाय उससे संतुष्ट रहता है, एवं अहंकार से रहित है वह तीर्थफल को प्राप्त करता है। जो अकल्कक (प्रवंचना या कपटाचरण से दूर है) है, निरारम्भ है, (धन कमाने के उद्योगों से निवृत है), लाध्वाहारी (कम खाने वाला) है, जितेन्द्रिय है और वह भी जो अक्रोधी है, सत्यशील है, दृढ़व्रती है, अपने समान ही दूसरे को जानने-मानने वाला है वह तीर्थयात्राओं से पूर्ण फल को प्राप्त करता है।[2]

स्कन्द (काशीखण्ड 6/3) ने दृढ़तापूर्वक कहा है कि जिसका शरीर जल से सिक्त है उसे केवल इतने से ही स्नान किया हुआ मान सकते हैं जो इन्द्रिया संयम से सिक्त है (अर्थात् उसमें डूबा हुआ है), जो पुनीत है, सभी प्रकार के दोषों सं मुक्त एवं कलंकरहित है, केवल वही स्नात (स्नान किया हुआ) कहा जा सकता है।[3] वायुपुराण में

---

1. अवगणैः तक्षादिसहायरहितैः, यज्ञस्य कुण्डमण्डपादिसाध्यत्यात, एकात्मभिः पत्नीरहितैः, असंहतैः ऋत्विगादि संघातरहितैः। मत्स्यपुराण (112/12-15), पद्म पुराण (आदिखण्ड 11/14-17) एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण (3/273/4-5)।
2. यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या, तपस्य कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते II नामक श्लोक ब्रह्म. (25/2) एवं अग्नि (109/1-2) में आया है।
3. नोदकक्लिन्नगात्रस्तु स्नात इत्यभिधीयते I स स्नातो यो दमस्नातः स बाह्माभ्यान्तरः शुचिः II अनुशासन पर्व (108/9) I।

आया है - पापकर्म कर लेने पर यदि धीर (दृढ़संकल्प या बुद्धिमान) श्रद्धवान, जितेन्द्रिय व्यक्ति तीर्थयात्रा क़रने से शुद्ध हो जात है तो उसके विषय में क्या कहना जिसके कर्म शुद्ध हैं? किन्तु जो अश्रद्धावान है, पापी है, नास्तिक है, संशयात्मा है (अर्थात् तीर्थयात्रा के फलों एवं वहाँ के कृत्यों के प्रति संशय रखता है) और जो हेतु द्रष्टा (व्यर्थ के तर्कों में लगा हुआ) है - ये पाँचों तीर्थफलगामी नहीं होते हैं।[1] स्कन्द. (1/1/31/37) का कथन है कि पुनीत स्थान (तीर्थ), यज्ञ एवं दान कलियुग में भले प्रकार से सम्पादित नहीं हो सकते, किन्तु स्नान हरिनाम स्मरण सभी प्रकार के दोषों से मुक्त है। विष्णु-धर्मोत्तर पुराण में आया है - जब तीर्थ यात्रा की जाती है तो पापी के पाप कहते हैं, सज्जन की धर्मवृद्धि होती है, सभी वर्गों एवं आश्रमों के लोगों को तीर्थफल देता है।[2]

कुछ पुराणों (यथा - स्कन्द, काशीखण्ड - 6 पद्म. उत्तर-खण्ड 237) का कथन है कि भूमि के तीर्थों के अतिरिक्त कुछ ऐसे सदाचार, सुन्दर शील-आचार हैं जिन्हें (आलंकारिक रूप से) मानस तीर्थ कहा जाता है। उनके अनुसार सत्य, क्षमा इंद्रियसंयम, दया ऋजुता, दान आत्म-निग्रह, संतोष, ब्रह्मचर्य, मृदुभाषी, ज्ञान, धैर्य तथा तप तीर्थ हैं और तीर्थ सर्वोच्च मनःशुद्धि है। उनमें यह भी आया है कि जो लोभी, दुष्ट क्रूर, प्रवंचक, कपटाचारी, विषयासक्त हैं वे सभी तीर्थों में स्नान करने के उपरान्त भी पापी एवं अपवित्र रहते हैं।

---

1. तीर्थान्मनुसरन धीरः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः। कृतपापो विशुद्येत किं पुनः शुभकर्मकत्।। अश्रद्दधानाः पारमानो नास्तिकाः स्थितसंशयाः। हेतुद्रष्टा च पंचैते न तीर्थफलभागिनः।। वायु. (77/125 एवं 127);। पापात्मा बहुपाप ग्रस्तस्तस्य पापशमनं तीर्थ भवति न तु यथोक्तफलम।। स्कन्द. (काशी खण्ड, 56/52-53)।

2. पापानां पापशमनं धर्मवृद्धिस्तया सताम् । विज्ञेयं सेवितं तीर्थ तस्मातीर्थपरो भवेत।। सर्वेषामेव वर्णानां सर्वाश्रमनिवासिनाम् ।। तीर्थ फलप्रदं ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा।। विष्णुधर्मोत्तर पुराण (3/273/7 एवं 9)।

क्योंकि मछलियाँ जल में जन्म लेती हैं वहीं मर जाती है और स्वर्ग को नहीं जाती, क्योंकि उनके मन पवित्र नहीं होते - यदि मन शुद्ध नहीं है तो दान, यज्ञ, तप, स्वच्छता, तीर्थयात्राएवं विद्या को तीर्थ का पद प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मपुराण (25/4-6) का कथन है कि जो दुष्ट हृदय है वह तीर्थों में स्नान करने से शुद्ध नहीं हो सकता; जिस प्रकार वह पात्र जिसमें सुरा रखी गयी थी, सैकड़ों बार धोने से भी अपवित्र रहता है उसी प्रकार तीर्थ, दान, व्रत, आश्रम उस व्यक्ति को पवित्र नहीं करते, जिसका हृदय दुष्ट रहता है। जो कपटी होता है जिनकी इंद्रिया असंयमित रहती है। जितेन्द्रिय जहाँ भी कहीं रहे वहीं कुरुक्षेत्र प्रयाग एवं पुष्कर है।[1]

वामन पुराण (43/25) में एक सुन्दर रूपक आया है - आत्मा संयमरूपी जल से एक पूर्ण नदी है, जो सत्य से प्रवाहमान है, जिसकाशील ही तट है, और जिसकी लहरें दया हैं; उसी में गोता लगाना चाहिए, अन्तःकरण जल से स्वच्छ नहीं होता।[2] पद्म. (2/39/56-61) ने तीर्थों के अर्थ एवं परिधि को और अधिक विस्तृत कर दिया है - जहां अग्निहोत्र एवं श्राद्ध होता है, मन्दिर, वह घर जहाँ वैदिक अध्ययन होता है, गोशाला, वह स्थान जहाँ सोम पीने वाले रहते हैं, वातिकायें, जहाँ अश्वस्थ वृक्ष रहता है जहाँ पुराण पाठ होता है या जहाँ किसी का गुरु रहता है या पतिव्रता स्त्री रहती है या जहाँ पिता एवं योग्य पुत्र का निवास होता है - वे सभी स्थान तीर्थ जैसे पवित्र होते हैं।

---

1. सत्य तीर्थ क्षमा तीर्थं ..... तीर्थानामुत्तमं तीर्थ विशुद्धि र्मनसः पुनः।। .... जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः। न च गच्छिन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः छ दानमिज्या तपः सौचं तीर्थसेवा श्रुतं तथा। सर्वाण्येतान्यतीर्थनि यदि भावो न निर्मलः।। स्कन्द (काशीखण्ड 6/28-45) पद्म. (उत्तरखंड 237/11-28)। मत्स्य (22/80)।
2. आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावहा शीलतता दयोर्भिः तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुध्यति चान्तरात्मा।। वामनपुराण (43/25)।

अति प्राचीन काल से तीर्थों एवं पुनीत स्थलों का उल्लेख होता आया है। मत्स्य. (110/7) नारदीय. (उत्तर; 63/53-54) एवं पद्म. (4/89/16-17) वराह. (159/6-7), ब्रह्म ((25/7-8 एवं 175/83) आदि में तीर्थों की संख्या दी गयी है। मत्स्य का कथन है कि वायु ने घोषित किया है कि तीर्थों की 35 कोटि है जो आकाश, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी में पाये जाते हैं और सभी गंगा में अवस्थित माने जाते हैं।

वामन का कथन है कि 35 करोड़ लिंग है। ब्रहम. (25/7-8) का कथन है कि तीर्थों एवं पुनीत स्थलों की इतनी अधिक संख्या है कि उन्हें सौकड़ों वर्षों में भी नहीं गिना जा सकता है। पद्म पुराण (5वाँ खण्ड, 27/78) ने पुष्कर के विषय में लिखा है कि इससे बढ़कर संसार में कोई तीर्थ नहीं है। मत्स्य. (186/11) ने कतिपय तीर्थों की तुलनात्मक पुनीतता का उल्लेख यों किया है - सरस्वती के जल से तीन दिनों के स्नान से पवित्र करता है, यमुना का सात दिनों में, गंगा का जल तत्क्षण, किन्तु नर्मदा का जल केवल दर्शन से ही पवित्र करता है।[1] वाराणसी की प्रशस्ति में कूर्म. (1/31/64) में आया है कि - वाराणसी से बढ़कर कोई अन्य स्थान नहीं है और न कोई ऐसा होगा ही। वामन पुराण में आया है - चार प्रकार से मुक्ति प्राप्त हो सकती है - ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, छीनकर ले जायी जाती गायों को बचाने में मरण, कुरूक्षेत्र में निवास। जो कुरुक्षेत्र में मार जाते हैं, वे पुनः पृथिवी पर लौटकर नहीं आते हैं।[2] काशी में निवास मात्र की इतनी प्रशंसा के विषय में मत्स्य. (181/23) अग्नि. (112/3) एवं अन्य पुराणों ने इतना कह डाला है कि

---

1. त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेनु तु यामुनम् । सद्यः पुनाति गांगेयं। दर्शनादेव नार्मदम्।। पद्म. (आदि. 13/7), मत्स्य (186/11)।

2. ब्रह्मज्ञानं, गयाश्राद्धं गोग्रहे मरणं ध्रुवण । वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा।। वामनं. (33/8 एवं 16), वायु. (105/16), एवं अग्नि. (115/5-6)।

काशी में जाने के उपरान्त व्यक्ति को अपने पैरों को पत्थर से कुचल डालना चाहिए और सदा के लिए काशी में रह जाना चाहिए।[1]

ब्रह्मपुराण ने तीर्थों को चार कोटियों में बाटा है - दैव, आसुर (जो गय, बलि जैसे असुरों से संबंधित है), आर्ष (ऋषियों द्वारा संस्थापित) एवं मानुष (अम्बरीय, मनु, कुरू आदि राजाओं द्वारा) जिनमें प्रत्येक अनुवर्ती अपने पूर्ववर्ती से उत्तम है। ब्रह्मपुराण ने विन्ध्य के दक्षिण की छः नदियों और हिमालय से निर्गत छः नदियों को देवतीर्थों में सबसे अधिक पुनीत माना है यथा - गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, ताजी, पयोष्णी, भगीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विसोका एवं वितस्ता। इसी प्रकार काशी, पुष्कर, एवं प्रभास देवतीर्थ है।

पुराणों में आया है कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शुद्र जो तीर्थों में स्नान कर लेते हैं, पुनः जन्म नहीं लेते। यह भी कहा गया है कि जो स्त्री या पुरुष एक भी बार पुष्कर में स्नान करता है वह जन्म से किये गये पापों से मुक्त हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियों को भी तीर्थ यात्रा करने का अधिकार था। मत्स्य. (184/66-67) ने आगे कहा है कि नाना प्रकार के वर्णों, विवर्णों, चाण्डावों एवं भाँति-भाँति रोगों एवं बढ़े हुए पापों से युक्त व्यक्तियों के लिए अविमुक्त क्षेत्र (वाराणसी) सबसे बड़ी औषधि है। कूर्म. (13/42-43)। वामन. (36/78-79) में आया है - सभी आश्रमों के लोग तीर्थ में स्नान कर कुल की सात पीढ़ियों की रक्षा करते हैं। चारों वर्णों के लोग एवं स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक स्नान करने से परमोच्य ध्येय का दर्शन प्राप्त करते हैं। ब्रह्मपुराण में कहा गया है कि ब्रह्मचारी गुरू की आज्ञा या सहमति से तीर्थयात्रा कर सकते हैं, गृहस्थ को अपनी पतिव्रता स्त्री के साथ

1. अश्मना चरणौ हत्वा वसेत्काशी न हि त्यजेत् । अग्नि. (112/3), अविमुक्तं यदा गच्छेत् कदाच्चिकाल पर्ययात् । अश्मना चरणौ भित्वा तत्रैव निधनं व्रजेत. ।। मत्स्य. (181/23) ।।

तीर्थ यात्रा अवश्य करनी चाहिए, नहीं तो उसे तीर्थ यात्रा का फल नहीं प्राप्त होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ, वर्णसंकर, स्त्रियाँ और वे लोग जो संकीर्ण रूप में पापयोनियों में पैदा हुए हैं, कीट, चींटी पशु-पक्षी आदि जब अविमुक्त में मरते हैं तो वहाँ वे मानव रूप में जन्म लेते हैं तथा अविमुक्त में जो पापी लोग मरते हैं वे नरक में नहीं जाते।

केवल तीर्थयात्रा एवं तीर्थस्नान से कुछ नहीं होता हृदय परिवर्तन एवं पापकर्म का त्याग परमावश्यक है इस विषय में पुराणों में दो उक्तियाँ हैं : एक उक्ति यह है कि पवित्र मन ही वास्तविक तीर्थ है और दूसरी यह है कि घर पर रहकर गृहस्थ धर्म का पालन करते रहना तथा वैदिक यज्ञादि का सम्पादन करते रहना तीर्थयात्रा से कहीं अच्छा है कूर्म. (2/44/20-23) ने इस विषय में ऐसा कहा है कि - जो व्यक्ति अपने धर्मों (कर्तव्यों को छोड़कर तीर्थयात्रा करता है वह तीर्थयात्रा का फल न इस लोक में पाता है और उस लोक में। प्रायश्चिती, विधुर या यायावर लोग तीर्थयात्रा कर सकते हैं।

वायु. (110/2-3) में आया है कि गणेश, ग्रहों एवं नक्षत्रों की पूजा के उपरान्त व्यक्ति को कार्पटी का वेष धारण करना चाहिए अर्थात उसे ताम्र की अंगूठी तथा कंगन एवं काषाय रंग के परिधान धारण करने चाहिए। पद्मपुराण (4/19/22) ने अन्य तीर्थों के यात्रियों के लिए भी विशिष्ट परिधानों की व्यवस्था दी है।

तीर्थयात्रा करते समय मुण्डन कराने के विषय में निबन्धकारों में एक मत नहीं है। पद्म. एवं स्कन्द ने इसे अनिवार्य माना है।[1] प्रयाग में, तीर्थयात्रा पर, माता-पिता की मृत्यु पर बाल कटाने चाहिए किन्तु अकारण नहीं। तीर्थ चिन्तामणि एवं तीर्थ प्रकाश ने एक

---

1. तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा। शिरोगतानि पापानि यान्ति मुण्डनतो यतः II पद्म. (उत्तर. 237/45) एवं स्कन्द. (काशीखण्ड 6/65)।

श्लोक उद्धृत किया है - कुरुक्षेत्र, विशाला, (उज्जयिनी या बदरिका), विरजा (उड़ीसा की एक नदी) एवं गया को छोड़कर सभी तीर्थों में मुण्डन एवं उपवास के कृत्य अवश्य कराने चाहिए।[1]

क्षौर एवं मुण्डन में भेद बताया गया है। प्रथम का अर्थ है सिर्फ सिर के केशों को बनवाना और दूसरे का अर्थ है दाढ़ी-मूँछ के साथ सिर के केशों को बनवाना। इसी से नारदीय का कथन है कि सभी ऋषियों ने गया में भी और क्षौर वर्जित नहीं माना है। केवल वहाँ मुण्डन वर्जित है गंगा पर, प्रयाग को छोड़कर कहीं भी मुण्डन नहीं होता।[2]

मत्स्य. (106/4-6) का कथन है कि यदि कोई प्रयाग की तीर्थयात्रा बैलगाड़ी में बैठकर करता है तो वह नरक में गिरता है और उसके पितर तीर्थ पर दिय गये जलतर्पण को ग्रहण नहीं करते, और यदि कोई व्यक्ति ऐश्वर्य या मोह या मूर्खतावश वाहन (बैलों वाला नहीं) पर यात्रा करता है तो उसके सारे प्रयत्न वृथा जाते हैं: अतः तीर्थ यात्री को वाहन आदि पर नहीं जाना चाहिए।[3] बैलगाड़ी से जाने से गोवध अपराध लगता है, घोड़े पर जाने से तीर्थयात्रा का फलन हीं मिलता, मनुष्य द्वारा ढोये जाने पर आधा फल मिलता है, किन्तु पैदल जाने पर पूर्ण फल की प्राप्ति होती है।[4]

---

1. मुण्डनं चोपवासृश्च सर्वतीर्येण्वर्ये विधिः। वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां गयाम् II वायु. (105/25),। अग्नि. (115/7) एवं नारदीप. (उत्तर 62/45)।
2. गयादावपि देवेशि श्मश्रूणां वपनं बिना I न क्षौरं मुनिभिः सर्वेनिषिद्धं चेति कीर्तितम् II सश्मश्रुकेशवपनं मुण्डनं तद्विदुर्बुधाः। न क्षौरं मुडनं सुश्रु कीर्तितं वेदवेदिभिः II नारदीप. (उत्तर 62/54-55)।
3. प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः प्रयाति नरः क्वाचित् । बलीवर्दसभारुढः शृणु तस्यापि यत्फलम् II नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारूणः। सलिलं न च गृछन्ति पितरस्तस्य देहिनः II मत्स्य. (106/4-5 एवं 7)।
4. गोयाने गोवधः प्रोक्तो हययाने तु निष्फलम् ।
'उपानद्भ्याः चतुर्थांशं गोयाने गोवधादिकम् ।। पद्मः (4/19-27).

वराह. (165/57-58) ने कहा है कि मथुरा के यात्री को चाहिए कि वह मथुरा में उत्पन्न एवं पालित-पोषित ब्राह्मणों को चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण की अपेक्षा वरीयता दे।[1] वायु. (82/26-28), स्कन्द (6/222/23)। वायु. (82/25-27) में आया है जब पुत्र गया जाय तो ब्रह्मा द्वारा प्रकल्पित ब्राह्मणों को ही आमन्त्रित करना चाहिए, वे ब्राह्मण साधारण लोगों से ऊपर (अमानुष) होते हैं जब वे सन्तुष्ट हो जाते हैं तो देवों के साथ पितर भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। उनके कुल, चरित्र, ज्ञान, तप आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए और वे (गयावाल) सम्मानित होते हैं तो कृत्यकर्त्ता (सम्मान देने वाला) संसार से मुक्ति पाता है।[2] वायु. (106/73-84), अग्नि. (114/33-39) एवं गरुड. में ऐसा वर्णित है कि जब गयासुर गिर पड़ा और जब उसे विष्णु द्वारा वरदान प्राप्त हो चुके तो उसके उपरान्त ब्रह्मा ने गया के ब्राह्मणों को 55 ग्राम दिये तथा पाँच कोशों तक गयातीर्थ दिया, उन्हें सुनियुक्त घर, कामधेनू गौवें, कल्पतरू दिये किन्तु यह भी आज्ञापित किया कि वे न तो भिक्षा माँगे और न किसी से दान ग्रहण करें। किन्तु लोभवश ब्राह्मणों ने धर्म (यम) द्वारा सम्पादित यज्ञ में पौरोहित्य किया, यम से दक्षिणायाचना की और उसे ग्रहण कर लिया। इस पर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि वे सदा ऋण में रहेंगे और उनसे कामधेनु, कल्पवृक्ष एवं उपहार छीन लिए। अग्नि पुराण (114/37) ने इतना जोड़ दिया है कि ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि वे विद्याशून्य होंगे और लालची हो जायेगें। इस पर गया के ब्राह्मणों ने ब्रह्मा से प्रार्थना

---

1. चतुर्वेदं परित्यज्य माथुरं पूजयेत्सदा। मधुरायां ये विष्णुरूपा हि ते नराः।। ज्ञानिनस्तान् हि पश्यन्ति अज्ञाः पश्यन्ति तान्न हि। वराहपुराण (165/57-58)।
2. यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित्कालपर्ययात् । तानेन भोजयेद्विप्रान ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः।। अमानुषतया विप्रा ब्रह्मणा (ब्रह्मणा?) ये प्रकल्पिताः। वायु. (82/25-27)।

की और अपनी जीविका के लिए किसी साधन की माँग की। ब्रह्मा द्रवीभूत हुए और कहा कि उनकी ज़ीविका का साधन गयातीर्थ होगा जो इस लोक के अन्ततक चलेगा और जो लोग गया में श्राद्ध करेंगे और उनकी पूजा करेंगे वे ब्रह्मा की पूजा का फल पायेंगे।

धर्मशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में तीर्थ पर जो साहित्य है वह अपेक्षातया सबसे अधिक है। महाभारत एवं पुराणों में कम से कम 40,000 श्लोक तीर्थों उपतीर्थों एवं उनसे सम्बन्धित किंवदन्तियों के विषय में प्रणीत है। यदि कुछ ही पुराणों को हवाला दिया जाया तो ब्रह्मपुराण में 6700 श्लोक (इसके सम्पूर्ण अर्थात् 13783 श्लोकों का लगभग अर्धान्शा) तीर्थों के विषय में है , पद्य. के प्रथम पाँचों खण्ड के 31000 श्लोकों में 3182 श्लोक तीर्थ के विषय में है (जिनमें 1400 श्लोक केवल मथुरा के विषय मेंहै) मत्स्य. 14002 श्लोकों में 1200 श्लोक तीर्थ-संबंधी है।

गंगा

गङ्गा पुर्नततम नदी है और इसके तटों पर हरिद्वार, कनखल, प्रयाग एवं काशी जैसे प्रसिद्ध तीर्थ अवस्थित है।

पुराणों (नारदीय, उत्तरार्द्ध, अध्याय 38-4-5 एवं 51/1-48, पद्म 05/60/1-127, अग्नि. अध्याय 110; मत्स्य. अध्याय 180-185, पद्य. आदिखण्ड, अध्याय 33-37) में गंगा की महत्ता एवं पवित्रीकरण के विषय में सैकड़ों प्रशस्ति जनक श्लोक हैं। स्कन्द. (काशी खण्ड अध्याय 29/17-168) में गंगा के एक सहस्र नामों का उल्लेख है।

पुराणों ने गंगा को मंदाकिनी के रूप में स्वर्ग में, गंगा के रूप में पृथिवी पर और भोगवती के रूप में पाताल में प्रवाहित होते हुए वर्णित किया है। (पद्य. 6/267/47)।

विष्णु आदि पुराणों में गंगा को विष्णु के बाँये पैर के अंगूठे से प्रवाहित माना है[1] कुछ पुराणों में ऐसा आया है कि शिव ने अपनी जटा से गंगा तो सात धाराओं में परिवर्तित कर दिया, जिनमें तीन (नालिनी, ह्लादिनी एवं पावनी) पूर्व की ओर, तीन (सीता, चक्षुस् एवं सिन्धु) पश्चिम की ओर प्रवाहित हुई और सातवीं धारा भगीरथी हुई (मत्स्य. (121/38-41) ब्राह्मण्ड. (2/18/39-41) एवं पद्म. (1/3/65-66)। कूर्म. (1/46/30-31)[2] एवं बराह. (अध्याय, 82, गद्य में) कथन है कि गंगा सर्वप्रथम सीता, अलकनन्दा सुचक्षु एवं भद्रा नामक चार विभिन्न धाराओं में बहती थी; अलकनन्दा दक्षिण की ओर बहती है, भारत वर्ष की ओर आती है और सप्तमुखों में होकर समुद्र में गिरती हैं।

विष्णुपुराण (2/8/120-121) ने गंगा की प्रशस्तियों की है - जब इसका नाम श्रवण किया जाता है जब कोई इसे दर्शन की अभिलाषा करता है, जब यह देखी जाती है या इसका स्पर्श किया जाता है या जब इसका जल ग्रहण किया जाता है या जब कोई इसमें डुबकी लगाता है या जब इसका नाम लिया जाता है या स्तुति की जाती है तो गंगा दिन-प्रति-दिन प्राणियों को पवित्र करती हैं, जब सहस्रों योजन दूर रहने वाले लोग 'गंगा' नाम का उच्चारण करते हैं तो जन्मों के एकत्र पाप नष्ट हो जाते हैं।[3] भविष्य पुराण में

---

1. वामपादाम्बुजांगुण्ठनखस्रोतोविनिर्गताम। विष्णोविभर्तियां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः II विष्णुपुराण (2/8/109)। नदी सा वैष्णवी पोक्ता विष्णु पादसमुद्रभवा 1 पद्य. (5/25188)।

2. तथैवाबालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम् । प्रयाति सागरंभित्त्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः।। कूर्म. (1/46/31)।

3. श्रुताभिलाषिता दृष्टा स्पृष्टा पीतावगाहिता। या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने ।। गंगा गंगेत यैनमि योजनानां शतेष्वपि। स्थितैरुच्चारितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम्।। विष्णुपुराण (2/8/120-121);।

भी ऐसा आया है।[1] मत्स्य., कूर्म. गरुड़. एवं मत्स्य. पद्य. पुराण का कहना है गंगा में पहुँचना सब स्थलों में सरल है, केवल गंगाद्वार (हरिद्वार), प्रयाग, एवं वहाँ जहाँ गंगा समुद्र में गिरती हैं, पहुँचना कठिन है जो लोग वहाँ स्नान करते है स्वर्ग जाते हैं और जो लोग यहाँ मर जाते हैं वे पुनः जन्म नहीं पाते।[2] नारदीय पुराण का कथन है कि गंगा सभी स्थानों में दुर्लभ है किन्तु तीन स्थानों पर अत्यन्त दुर्लभ है, वह व्यक्ति जो चाहे अनचाहे गंगा के पास पहुँच जाता है और मर जाता है, स्वर्ग जाता है, नरक नहीं देखता (मत्स्य 107/4)।

कूर्म. का कथन है कि गंगा वायु पुराण द्वारा पोषित स्वर्ग, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी में स्थित 35 करोड़ पवित्र स्थलों के बराबर है और वह उनका प्रतिनिधित्व करती है।[3] पद्मपुराण ने प्रश्न किया - बहुत धन के व्यय वाले यज्ञों एवं कठिन पतों से क्या लाभ जब सुलभ रूप से प्राप्त होने वाली एवं स्वर्ग मोक्ष देने वाली गंगा उपस्थित हो। नारदीप पुराण में भी आया है कि आठ अंगों वाले योग, तपो एवं यज्ञों से क्या लाभ? गंगा का निवास इन सभी में उत्तम है।[4] मत्स्य. के दो श्लोक यहां वर्णन करने योग्य है - "पाप करने वाला व्यक्ति

---

1. दर्शनात्स्पर्शनात्पानात् तथा गंगेति कीर्तनात् । स्मरणादेव गंगायाः सद्यः पापैः प्रभुच्यते।। भविष्य पुराण (तीर्थचि. पृ. 198, गंगात्वा पृ. 12)।
   गच्छंतिष्ठम् जपन्हयायन् भुंजं जाग्रत स्वपन् वतन् । यः स्मरेत् सततं गंगा सोऽपि मुच्येत बन्धनात् II स्कन्द. (काशीखण्ड, पूर्वार्ध 27/37) एवं नारदीय. (उत्तर 39/16-17)।
2. सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा। गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमें। तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।। मत्स्य. (106/54), कूर्म (1/37/34), गरुड़ (पूर्वार्ध 81/1-2); पद्य. (560120)।
3. तिस्रः कोट्योर्धकोटी च तीर्थानां नायुरब्रणीत् । दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत्सर्व जाह्नवी स्मृता।। कूर्म. (1/39/8); पद्य. (1/47/7), मत्स्य. (102/5)।
4. किं यज्ञैर्बहुवित्ताढयैः किं तपोभिः सुदष्करैः। स्वर्गमोक्षप्रदा गंगा सुखसौभाग्यपूजितां।। पद्य. (5/60/39)। नारदीप. (उत्तर, 38/38)।

भी सहस्रों योजन दूर रहता हुआ गंगा स्मरण मात्र से परम पद प्राप्त करता है। गंगा के नाम-स्मरण एवं उसके दर्शन से व्यक्ति क्रम से पापमुक्त हो जाता है। एवं सुख पाता है, उसमें स्नान करने एवं जलपान करने से वह सात पीढ़ियों तक अपने कुल को पवित्र कर देता है।

वराह पुराण (अध्याय 82) में गंगा की व्युत्पत्ति 'गांगता' जो (पृथ्वी की ओर गयी हो) है पद्म. (सृष्टि खंड, 60/64-65) ने गंगा के विषय में निम्न मूल मंत्र दिये **'ओं नमो गंगाये विश्व रूपिण्ये नारयण्यै नमो नम.।**

पद्मपुराण (सृष्टि 60/35) में आया है कि विष्णु सभी देवों का प्रतिनिधित्व करते हैं और गंगा विष्णु का। इसमें गंगा की प्रशस्ति इस प्रकार की गयी है - पिता, पति, मित्रों एवं संबंधियों के व्यभिचारी, पतित, दुष्ट, चाण्डाल एवं गुरुघाती हो जाने पर या सभी प्रकार के दोषों एवं पापों से संयुक्त होने पर भी क्रम से पुत्र पत्नियाँ,मित्र एवं सम्बन्धी उनका परित्याग कर देते हैं, किन्तु गंगा उन्हें कभी भी परित्यक्त नहीं करती।[1]

नारदीप. (उत्तर, 43/119-120) में आया है कि गंगा के तीर से एक गव्यूति तक क्षेत्र कहलाता है, इसी क्षेत्र सीमा के भीतर रहना चाहिए किन्तु तीर पर नहीं, गंगा तीर पर वास ठीक नहीं है। क्षेत्र सीमा दोनों तीर सीमा से एक योजन तक की होती है अर्थात् प्रत्येक तीर से दो कोस दूर का क्षेत्र विस्तार होता है।[2]

त्रिस्थली

प्रयाग, काशी एवं गया को त्रिस्थली कहा जाता है

---

1. पद्म पुराण (सृष्टि खण्ड, 60/25-26)।

2. तीराद् गव्यूतिमात्रं तु परितः क्षेत्रमुच्यते। तीरं त्यक्तवा वसेत्क्षेत्रे वीरे वासो न चेष्यते II एकयोजन विस्तीर्णा क्षेत्र सीमा तटद्वयात् । नारदीप. (43/119-120)।

प्रयाग

स्कन्दपुराण ने प्रयाग के श्रुति कहा है। पुराणों में इसकी प्रशस्ति गायी गयी है (मत्स्य. अध्याय 103-113 कूर्म. 1/36-39, पद्म.। अध्याय 40-41; स्कन्द. काशी-खण्ड अध्याय 4/45-65)। प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है। (मत्स्य. 109/15; सकन्द. काशीखण्ड, 7/45 एवं पद्म. 6/23/27-35) जहाँ प्रत्येक श्लोक के अन्त में "स तीर्थराजो जयति प्रयागः" आया है। गाथा यों है कि प्रजापति या पितामह (ब्रह्मा) ने यहाँ यज्ञ किया था प्रयाग ब्रह्मा की वेदियों में बीच की वेदी है अन्य वेदियों में उत्तर में कुरूक्षेत्र (जिसे उत्तर वेदी कहा जाता है) एवं पूर्व में गया। ऐसा विश्वास है कि प्रयाग में तीन नदियाँ मिलती हैं गंगा, यमुना एवं सरस्वती, मत्स्य. कूर्म आदि पुराणों में आया है कि प्रयाग के दर्शन मात्र से या इसकी मिट्टी मात्र लगा लेने से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। कूर्म. ने घोषणा की है कि यह प्रजापति का पवित्र स्थल है जो यहाँ स्नान करते हैं, वे स्वर्ग को जाते हैं और जो यहाँ मर जाते हैं पुनः जन्म नहीं लेते। यही पुनीत स्थल तीर्थराज है केशव को प्रिय है। इसी को त्रिवेणी की संज्ञा मिली है।

जगन्नाथपुरी

ब्रह्म. (70/3-4- नारदीय., उत्तर 52/25-26) ने अन्त में कहा है कि - यह तिगुना सत्य है कि यह (पुरूषोत्तम) क्षेत्र परम महान है और सर्वोच्च तीर्थ है। एक बार सागर के जल से आप्लुत पुरुषोत्तम में आने पर व्यक्ति को पुनः गर्भवास नहीं करना पड़ता और ऐसा ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने पर भी होता है।

ब्रह्मपुराण (65/15,17 एवं 18) ने श्रेष्ठ की पूर्णिमा पर जगन्नाथ के उत्सव के

समय स्नान की चर्चा करते हुए लिखा है कि उस समय दुन्दुभि-वादन होता था, बाँसुरी का स्वर गुंजार होता था, वैदिक मंत्रों का पाठ होता था और बरलाम और कृष्ण की प्रतिमाओं के समक्ष चामरधारिणी एवं कुचभार से नम्र सुन्दर वेश्याओं का नर्तन आदि होता था।[1]

नर्मदा

गंगा के उपरान्त भारत की अत्यन्त पुनीत नदियों में नर्मदा एवं गोदावरी के नाम आते हैं।

पुराणों में नर्मदा की चर्चा बहुधा हुई है। मत्स्य. (अध्याय, 186-194, 554 श्लोक), पद्य. (आदिखण्ड, अध्याय 13-23, 739 श्लोकः, कूर्म. (उत्तरार्ध, अध्याय 40-42, 189 श्लोक) ने नर्मदा की महत्ता एवं उसके तीर्थों का वर्णन किया है। मत्स्य. (194/45) एवं पद्य. (आदि 421/44) में ऐसा आया है कि उस स्थान से जहाँ नर्मदा सागर में मिलती है, अमरकंटक पर्वत तक जहाँ से वह निकलती है 10 करोड़ तीर्थ है। अग्नि. (113/2) एवं कूर्म. (2/40/13) के मत से 60 करोड़ एवं 60 सहस्र तीर्थक्रम से है। नारदीय. (उत्तरार्ध, अध्याय 77) का कथन है नर्मदा के दोनों तटों पर 400 मुख्य तीर्थ हैं। (श्लोक) किन्तु अमरकंटक से लेकर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं।[2] मत्स्य. एवं पद्य. ने उद्घोष किया है कि

---

1. मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथापरैः। नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः समाशब्दोंपवृंहितैः।। श्यामैर्वैश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः। पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदाभावनामिभिः।। ..... चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येंते राम केशवौ।। ब्रहम्. (65/15, 17 एवं 18)।
2. यद्यपि रेखा एवं नर्मदा सामान्यतः समानार्थक कहीजाती है किन्तु भागवत पुराण (5/19/18) ने इन्हें पृथक-पृथक (तापी-रेखा-सुरसा-नदी) कहा हैं और वामनपुराण का कथन है रेखा विन्ध्य से तथा नर्मदा ऋक्षपाद से निकली है। सार्धत्रिकोटितीर्थानि गदितानीह वायुना। दिवि भुव्यन्तरिक्षे चरेवायां तानि सन्ति च।। नारदीप. (उत्तर 077/27-28)।

गंगा कनखल में एवं सरस्वती कुरूक्षेत्र में पवित्र है किन्तु नर्मदा सभी स्थानों पर ग्राम हो या वन नर्मदा केवल दर्शन मात्र से पापी को मुक्त कर देती है, सरस्वती (तीन दिनों में) तीन स्नानों से, यमुना सात दिनों के स्नानों से और गंगा केवल एक स्नान से (मत्स्य. 186/10-11 = पद्म. आदि, 13/6-7 = कूर्म. 2/40/7-8)।

अमरकंटक पर्वत एक ऐसा तीर्थ है जहाँ ब्रह्महत्या के साथ अन्य पापों का मोचन होता है। इसका विस्तार एक योजन है। (मत्स्य. 189/89)

विष्णु धर्मसूत्र (85/8) ने श्राद्ध योग्य तीर्थों की सूची दी है जिनमें नर्मदा के सभी स्थलों को श्राद्ध के योग्य ठहराया है। नर्मदा को रूद्र के शरीर से निकली हुई कहा गया है जो इस बात का कवित्वमय प्रकटीकरण मात्र है कि यह अमरकंटक से निकली है जो महेश्वर एवं उनकी पत्नी का निवास स्थल कहा गया है। (मत्स्य. 188/91)[1]। वायु पुराण (77/32) में ऐसा आया है कि नदियों में श्रेष्ठ पुनीत नर्मदा पितरों की पुत्री है और इस पर किया गया श्राद्ध अक्षय होता है।[2] मत्स्य. एवं कूर्म. का कथन है कि यह 100 योजन लम्बी एवं दो योजन चौड़ी है।[3] मत्स्य. एवं कूर्म. का कथन है कि नर्मदा अमरकंटक से निकली है जो कलिंग देश का पश्चिमी भाग है।[4]

---

1. नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रूद्रदेहाद्विनिःसृत्ता। तारयेंत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च।। मतस्य. (190/17 = कूर्म. 240/5 = पद्म आदि. 17/13)।
2. पितृणां दुहिता पुण्या नर्मदा सरितां वरा। तत्र श्राद्धनि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत।। वायु पुराण - (77/32)।
3. योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा। विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनायमताII. कूर्म. (2/40/12 = मत्स्य 0/86/27-25)।
4. कलिंगदेशपश्चार्धे पर्वतेऽमरकण्टके। पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा।। कूर्म. (240/9) एवं मत्स्य. (186/12)।

विष्णुपुराण में व्यवस्था दी है कि यदि कोई रात एवं दिन में और जब अंधकार पूर्ण स्थान में उसे जाना हो तो प्रातःकाल नर्मदा को नमस्कार, रात्रि में नर्मदा को नमस्कार ! हे नर्मदा, तुम्हें नमस्कार! मुझे विषधर सांपों से बचाओ इस मंत्र का जप करके चलता है तो उसे सांपो का भय नहीं रहता है।[1]

गोदावरी

वैदिक साहित्य में अभी तक गोवादरी की कहीं भी चर्चा नहीं प्राप्त हो सकी है। रामायण, महाभारत एवं पुराणों में इसकी चर्चा हुई है। ब्रह्म पुराण (70/175) में गोदावरी एवं इसके उपतीर्थों का सविस्तार वर्णन किया गया है। तीर्थसार (नृसिंहपुराण) ने ब्रह्मपुराण के कतिपय अध्यायों (यथा - 89, 91, 106, 107, 116-118, 121,122, 131, 144, 154, 159, 172) से लगभग 60 श्लोक उद्घृत किये गये हैं। ब्रह्मपुराण ने गोदावरी को सामान्य रूप में गौतमी कहा है।[2] ब्रह्मपुराण (78/77) में आया है कि विन्ध्य के दक्षिण में गंगा को गौतमी और उत्तर में भागीरथी कहा जाता है। गोदावरी की 200 योजन की लम्बाई कही गयी है और कहा गया है कि इस पर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ पाये जाते हैं। (ब्रह्म. (77/8-9)। दण्डकारण्य को धर्म एवं मुक्ति की बीज एवं उसकी भूमि का पुण्यतम् कहा है।[3] बहुत से पुराणों में एक श्लोक आया है - (मध्य

---

1. नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि। नमोस्तु नर्मदे तुम्यं त्राहि मां विषसर्पतः।। विष्णुपुराण (4/3/12-13)।
2. विन्ध्यस्य दक्षिणे गंगा गौतमी स निगद्यते। उत्तरे सापि विन्ध्य भागीरथ्यभीधियते ।। ब्रह्म. (78/77)।
3. तिस्रः कोट्योऽर्थकोटी च योजनानां शतद्वये। तीर्थनिभुनि-शार्दूल सम्भवष्यिन्ति गौतम (ब्रह्म. (77/7-9)। धर्मबीजं मुक्तिबीजं दण्डकारण्यमुच्यते। विशेषाद् गौतमीश्लिष्टो देशः पुण्यतमोऽभवत् ।। ब्रह्म. (161/73)।

देश के) देश के सह्य पर्वत के अनन्तर में है वहीं पर गोदावरी है और वह भूमि तीनों लोकों सबसे सुन्दर है। वहाँ गोवर्धन है जो मन्दर एवं गन्दमादन के समान है।[1]

ब्रह्म॰ (अध्याय 74-76) में वर्णन आया है कि किस प्रकार गौतम ने शिव की जटा से गंगा को ब्रह्मगिरि पर उतारा, जहाँ उनका आश्रम था और किस प्रकार इस कार्य में गणेश ने उनकी सहायता की। नारद पुराण (उत्तरार्ध, 72) में आया कि जब गौतम तप कर रहे तो बारह वर्षों तक पानी नहीं बरसा और दुर्भिक्ष पड़ गया, इस पर सभी मुनिगण उसके पास गये और गंगा को अपने आश्रम में उतारा बराह॰ (71/34-44) ने भी कहा है कि गौतम ने ही जाह्नवी को दण्डक वन में ले आये और गोदावरी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। कूर्म॰ (2/20/29-35) ने नदियों की एक लम्बी सूची देकर अन्त में कहा श्राद्ध करने के लिए गोदावरी की विशेष महत्ता है। ब्रह्म॰ (124/93) में ऐसा आया है कि सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने के लिए केवल दो उपाय घोषित है। पुनीत नदी एवं जो करुणाकर शिव है। ब्रह्म॰ में लगभग 100 तीर्थों का वर्णन किया है।[2] जब वृहस्पति ग्रह सिंह राशि में प्रवेश करता है उस समय का गोदावरी स्नान आज की महापुण्य-कारक माना जाता है। ब्रह्म॰ (152/38-39) में ऐसा आयाहै कि तीनों लोकों के साढ़े तीन करोड़ देवता इस समय यहाँ स्नानार्थ आते हैं और इस समय का केवल एक गोदावरी का स्नान भागीरथी के प्रति दिन कियेजाने वाले 60 सहस्र वर्षों के तक के स्नान के बराबर है। वराह॰ (71/45-46) में

---

1. सह्यास्यानन्दरे चैते तत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां सः प्रदेशो मनोरमः यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः। मत्स्य (114/37-38 - वायु. 45/112 13 - मार्कण्डेय. 54/34 -35 ब्रह्माण्ड 2/16/43)

2. व्यंम्बक (79/6), कुशावर्त (80/1-3) जनस्थान (88/1) गोवर्धन (अध्याय 91) प्रखरा-संगम (106), निवासपुर (106/55), वंजरा-संगम (149) आदि।

ऐसा आया है कि जब कोई सिंहस्य वर्ष में गोदावरी जाता है, वह स्नान करता है और पितरो का तर्पण एंव श्राद्ध करता है तो उसके वे पितर जो नरक में रहते हैं स्वर्ग को चले जाते हैं और जो स्वर्ग के वासी हैं, उन्हें मुक्ति मिल जाती है।

वागमती - इसे बाङ्मती और गिरा भी कहते हैं। वराह पुराण के 215 से 17 के अध्याय में इसके माहात्म्य का वर्णन हुआ है। वराह पुराण में इसके जल को गंगा से भी सौ गुना पवित्र माना है।[1] यह हिमालय पर्वत से निकलकर नेपाल के अधिकांश भागों को पवित्र करती है। नेपाल का प्रमुख तीर्थ स्थल और राजधानी काठमांडू नगर इसी के तट पर बसा हुआ है और यही विष्णुमती और वागमती का संगम तट भी है।

शिप्रा - यह पारिताज पर्वत के केवड़ेश्वर नामक स्थल से निकली हुई है। यह नदी अवन्ती या उज्जयनी नदी के ठीक बीचो-बीच वही हुई है। उज्जैन नगर भारत के साथ पवित्र महापुरियों में से अत्यन्त पवित्र है। स्कन्द पुराण अवन्तिखण्ड के 26वें अध्याय में शिप्रा में स्नान कर महाकाल का दर्शन एवं नमस्कार करने से मृत्यु की चिन्ता से मुक्त होने की बात कही गयी है। स्कन्द पुराण के अनुसार शिप्रा को भगवान के स्वेद बिन्दु से उत्पन्न माना गया है। वृहस्पति के सिंह राशि में आने पर इसके तट पर मेला लगता है।

पयोष्णी - यह पैनगंगा नाम की वर्तमान नदी विन्ध्य पर्वत से निकलकर दक्षिण की ओर बहती हुई गोदावरी में मिलती है। इसी के तट पर मेघङ्कर तीर्थ है जिसे भगवान विनायक का साक्षात् स्वरूप बताया गया है।[2]

---

1. हिमाद्रेस्तुगंशिखरात् प्रोद्भूता वाङ्मती नदी।। भागीरथ्याः शतगुणं पवित्रं तज्जलं स्मृतम् । वराह पुराण (215/50-51)
2. तीर्थ मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः।।
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थित। मत्स्य पुराण (22/40-41)

गण्डकी - पुराणों में इसे गंगा की सात धाराओं में से एक माना है। भागवत एवं ब्रह्माण्ड पुराण में बलराम जी की तीर्थ यात्रा में यहाँ जाने तथा इसकी विशेष महिमा का उल्लेख हुआ है। जरासंघ-वध के समय कृष्ण अर्जुन, भीम आदि इसमें सादर स्नान करके पार हुये थे पुराणों के अनुसार इसमें यात्रा तथा स्नान करने वाले को अश्वमेघ-यज्ञ का फल मिलता है। अन्त में वह सूर्य लोक को प्राप्त करते हैं। इसके जल में भगवान का निवास रहता है। भगवान विष्णु के गण्डक स्थल के स्वेद से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम गण्डकी हुआ।[1]

कावेरी-कूर्मपुराण अध्याय-2 के अनुसार कावेरी चन्द्र-तीर्थ से प्रकट होती है। पुराणों के अनुसार अग्नि के 16 नदी पत्नियों में से एक यह भी है। ब्रहमाण्ड पुराण वायु पुराण के अनुसार इसे युवनाश्व की पुत्री, जहनुकी पत्नी और सुहोत्र की माता कहा गया है।

कृतमाला - मलयपर्वत से निकली हुई दक्षिण भारत की नदी है। इसका सम्बन्ध मत्स्य पुराण से है। भगवान मत्स्य इसी नदी से निकल कर राजा सत्यव्रत के हाथ में आये थे।[2] दक्षिण भारत का मदुरई नगर इसी के तट पर बसा हुआ है। जिसे दक्षिण भारत का मथुरा कहा जाता है। यहाँ मीनाक्षी-मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। इसमें 27 गोपुर लगे हैं। कहा जाता है कि जब भगवान इन्द्र को ब्रह्महत्या लगी थी तब यहीं स्नान कर मुक्त हुए थे।

---

1. गण्डस्वेदोद्भवा गण्डकी सरितां वरा ।।
 भवष्यिति न संदेहो यस्या गर्धे भवश्यिति । वराहपुराण (144/122-23)
2. भावगवत पुराण 5/19/18, 10/79/16
 वामन पुराण 13/32 और मत्स्य पुराण/

पर्वत

नदियों के समान पर्वत भी तीर्थ स्थल थे। जो अपनी प्राकृतिक बनावट के कारण प्राचीन काल से ही पूज्य रहे हैं। पर्यावरण की दृष्टि से आज भी पर्वत मानव जीवन के लिए अति उपयोगी हैं। क्योंकि आज भी चिकित्सक लोग असाध्य रोगियों को स्वास्थ्य लाभ के लिए पहाडों पर जाने की सलाह देते हैं। अतः प्राचीन काल में हमारे ऋषिगण पर्वतों पर ही तपस्या करते थे। पर्वतों में ही देवताओं, ऋषियों तथा राजाओं ने तपस्या की। अतः इससे स्पष्ट है कि पर्वत प्राचीन काल से ही आराधना के केन्द्र रहे हैं।

महत्वपूर्ण देवी देवता का मन्दिर पर्वतों की चोटियों पर स्थित है। पर्वतों की कन्दराओं प्राचीन काल में ऋषिगण तपस्या करते थे। अतः पर्वत पर्यावरणीय उपादेयता के कारण आज भी प्रासंगिक है। पुराणों में वर्णित कुछ पर्वतों का उल्लेख यहाँ अपेक्षित है जो इस प्रकार है।

हिमालय - यह सभी पर्वतों का राजा है यह अनेक ऋषि-मुनियों, राजाओं की तपःस्थली एवं गंगा, यमुना, सरयू, ब्रह्मपुत्र इत्यादि नदियों का उद्‌गम स्थल है। धर्मात्मा पाण्डवों का जीवन इसी क्षेत्र में व्यतीत हुआ और अंतिम दिनों में वे यहीं गलकर पंचतत्व को प्राप्त हुए। भगवान शंकर का निवास स्थान भी यहीं है। पुराणों ने इसे पार्वती का पिता कहा है। पुराणों के अनुसार गंगा और पार्वती इनकी दो पुत्रियाँ हैं। हिमालय के क्रोड में बद्रीनाथ, केदारनाथ, मानसरोवर आदि अनेक तीर्थ तथा शिमला दार्जिलिंग मंसूरी आदि श्रेष्ठ नगर हैं। यह बहुमूल्य रत्नों एवं औषधियों का प्रदाता है।

विन्ध्याचल - यह अरावली से लेकर राजशाही तक फैला हुआ है। इसमें से तापी, पयोष्णी निर्विन्ध्या क्षिप्रा, वेणा, कुमुद्वती, गौरी दुर्गावती आदि अनेक बड़ी नदियाँ

निकली हुई है और चित्रकूट विन्ध्याचल आदि अनेक पावन तीर्थों की स्थली है। पुराणों के अनुसार इस पर्वत ने सुमेरू ईर्ष्या रखने के कारण सूर्यदेव का मार्ग रोक दिया था और आकाश तक पढ़ गया था जिसे अगस्त्य ऋषि ने निवृत्त किया था।

पारिजात - यह पर्वत सात कुल पर्वतों में विशेष महत्व है और विन्ध्य के दक्षिण पश्चिम में स्थित है। इस पर्वत से वेदवती, काली सिन्धु, वेत्रवती चर्मण्वती, साभ्रमती, अवन्ती एवं शिप्रा आदि नदियाँ निकल कर पश्चिमी भाग को पवित्र करती है, मार्कण्डेय पुराण और विष्णु पुराण के अनुसार यह पर्वत अरुक और बालव क्षत्रियों का निवास स्थान था।

मत्स्य पुराण के अनुसार तारकासुर ने इसी पर्वत की कन्दराओं में कई वर्षों तक निराहार रहकर पंचाग्नि तापकर, अंगों को अग्नि में हवन कर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया था।

महेन्द्रगिरि - महेन्द्रगिरि भारत में दो माने जाते हैं। एक पूर्वी घाट पर और दूसरा पश्चिमी घाट पर। वाल्मीकी रामायण का महेन्द्रगिरि पश्चिमी घाट पर है जहाँ से श्री हनुमान जी कूदकर लंका गये थे। दूसरा महेन्द्रगिरि पूर्वीघाट पर है। जिसका उल्लेख पुराणों में आया है। पुराणों के अनुसार यह परशुराम जी का निवास स्थान बताया गया है। इस पर्वत पर स्थित परशुराम-तीर्थ में स्नान करने से अश्वमेघ-यज्ञ का फल प्राप्त होता है। पुराणों के अनुसार लागूँलिनी, ऋषिकुल्या, ईक्षुधरा आदि नदियाँ निकली हुईं है। वायु पुराण, मत्स्य पुराण भागवत पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण आदि में इसका अनेकधा उल्लेख किया गया है।

चित्रकूट- पुराणों एवं भारतीय धर्मग्रन्थों में चित्रकूट पर्वत की महिमा अनेक

रूपो में वर्णित की गयी है। श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कन्ध के प्रथम अध्याय के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव- इन तीनों त्रिदेवों को क्रमशः यहीं चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में जन्म ग्रहण करना पड़ा था। इसी कारण यहाँ प्रवेश करते ही राजा नल, धर्मराज युधिष्ठिर आदि के क्लेष नष्ट हो गये थे।

पद्म पुराण, स्कन्द पुराण आदि एवं महाभारत आदि ग्रन्थों में चित्रकूट का अमित माहात्म्य तथा परम रम्य का वर्णन होता है।

ऋक्षवान् - इसका वर्णन कई पुराणों में प्राप्त हुआ है। यह अत्रिमुनि का निवास स्थल है एवं उनकी तपःस्थली कहा गया है। इस पर्वत से बिहार में बहने वाली नदी सोन उड़ीसा में बहने वाली महानदी चित्रकूट में मन्दाकिनी, गोंडवाना में नर्मदा तथा तमसा मंजुला आदि नदियाँ निकली है।

सह्यगिरि- इस पर्वत की महिमा पर स्कन्द पुराण का 'सह्याद्रिखण्ड' एक स्वतंत्र ग्रंथ है। यह भी अगस्य का निवास-क्षेत्र था। इस पर्वत का राजर्षि नहुष के जीवन चरित्र से विशेष संबंध रहा है। इसमें एक विशेष तीर्थ सह्यालक तीर्थ है। इसका वर्णन नरसिंहपुराण के कई अध्यायों में मिलता है। नरसिंहपुराण में सप्तकुलाचल पर्वतों के साथ इसका बार-बार उल्लेख प्राप्त होता है। प्रायः सभी पुराणों में स्वल्प शब्दान्तर से इस पर्वत विशेष को और इससे जुड़े हुए अन्य क्षेत्रों को सारी पृथ्वी में मनोरम प्रदेश बतलाया गया है।[1]

---

1. सह्यस्य चोत्तरे या तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायं स प्रदेशो मनोरमः।।
मत्स्यपुराण 114/37, ब्रह्म पुराण 27/43, मार्कण्डेय पुराण 57/34, वायु पुराण पूर्वार्ध 45/112, इत्यादि।

रामगिरि यां रामटेक- पुराणों ने इसे महातीर्थ की संज्ञा देकर इसकी महत्ता प्रतिपादित हुई है, गरुड़पुराण में ऐसा कहा गया कि पर्वत के शिखर पर भगवान् श्री राम का मन्दिर और पुराना किला है।[1]

पुराणों में उपरोक्त तीर्थ स्थलों के अलावा और भी तीर्थ स्थल हैं जो पर्यावरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं उनका यहाँ वर्णन अपेक्षित है -

- **अक्षय्य करण -** यह प्रयाग में स्थित है। वन0 87/11, पद्य0 6/25/7-8 (ऐसा कहा गया है कि कल्प के अन्त में विष्णु इसके पात्र पर सोते हैं।
- **अक्षय्य वट-** (1) वायु0 105/45, 109/16, 111/79-82 (जब सम्पूर्ण विश्व जलमग्न हो जाता है उस समय विष्णु शिशु रूप में इसके अन्त भाग में सोते रहते हैं। अग्नि 115/70, पद्य0 1-38-2, (2) विन्ध्य की ओर गोदावरी के अन्तर्गत) ब्रह्म. 161-6/6-67 (3) नर्वदा पर ब्रह्मवैमर्त 03, अ. 33, 30-321 यहाँ पुलस्त्य ने तप किया था।
- **आगस्थ तीर्थ-** (गया के अंतर्गत) अग्नि. 116-3, वायु. 111-53
- **अगस्त्याश्रम -** पद्य 1-12-4अगस्त्येश्वर - (1) नर्वदा के अंतर्गत) मत्स्य. 171-5; (2) वाराणसी में लिंग) लिंग तीर्थ कल्प तरु, पृ. 116)
- **अग्नि कुण्ड-** (1) यमुना के दक्षिण तट) मत्स्य. 108-27 पद्य. 1-45 27; (2) वाराणसी के अंतर्गत) कूर्म0 1-35-7 पद्य0 1-37-7 (3) गोदावरी के अंतर्गत) ब्रह्म0 98-1, (4) (सरस्वती पर) पद्य0 1-27-27; (5) साभ्रमती के उत्तरी तट पर) पद्य0 6-134-1 (6) (कुब्जाम्रक के अंतर्गत) वराह. 126-631 अग्निधारा (गया के अंतर्गत) अग्नि0 116-31।

---

1. रामगिर्याश्रमं परम् - गरुड़पुराण (81/8)।

- **अग्नि प्रभ-** (गण्डकी की अंतर्गत) वराह. 145-52-55 (इसका जल जाड़े में गर्म और ग्रीष्म में ठण्डा रहता है।
- **अग्नीश्वर-** (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. (तीर्थ कल्प. पृ0 66, 711
- **अधोरेश्वर** (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 194-1
- **अङ्गारकेश्वर-** (1) (गया के अंतर्गत)। अग्नि. 116-29। (2) (नर्मदा के अंतर्गत) कूर्म. 2-41-61
- **अंङ्गरेश्वर-** (1) (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. (ती0क) पृ. 55 एवं 98; (2) (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 190-9, पद्म0 1-17-6।
- **अच्छोदक-** (चन्द्रप्रभा पहाड़ी की उपत्य का में एक झील) वायु0 47/5-6 एवं 77-76; मत्स्य. 14/3 एवं 121/7 अच्छोदा- (अच्छोदक झील से निकली हुई नदी) मत्स्य. 121/7, वायु. 47?6 ब्रह्माण्ड. 2/18/6 एवं 3/13/80।अजेश्वर- (वाराणसी में एक लिंग) लिंग 1/92/136।
- **अम्जव-** (ब्रह्मगिरि के पास एक पर्वत गोदावरी के अंतर्गत) ब्रह्म. 84/2 अट्टहास- (1) (हिमालय में) वायु. 23/192, (2) (पितरों का तीर्थ) मत्स्य. 22/68। (3) (वाराणसी में एक लिंग) लिंग. (तीर्थ कल्प तरू, पृ. 147)
- **अतिबल-** (सतारा जिले में महाबलेश्वर) पद्य. 6/113/29।
- **अदिति तीर्थ** - (गया के अतंर्गत)नारदीय पुराण 2/40/90।
- **अनन्ततीर्थ-** (मथुरा के अंतर्गत) वहार. 155/1।
- **अनन्तनाग** - (पुण्योदा से दूर नहीं) नीलमत्त. 1401-2। आजकल यह इस्लामाबाद के नाम से प्रसिद्ध है और कश्मीर के मार्तण्ड पठार के पश्चिमी भाग में स्थिति है।

- **अनन्तशयन** - (श्रावणकोर में पद्मनाभ) पद्म. 6/10/8, 6/280/19।
- **अनरक** - (1) (कुरूक्षेत्र के अंतर्गत) वाम. 41/22-24। (2) (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 193/1-3, कूर्म. 2/41/91-92; (3) (यमुना के पश्चिम) धर्मतीर्थ राज भी इसका नाम है। पद्म. 1/27/56 कूर्म. 39/5।
- **अनरकेश्वर**- (वाराणसी के अंतर्गत)लिंग. (ती.कल्प., पृ. 113)
- **अनूपा** - (ऋक्षवान पहाड़ से निकली हुई नदी) बह्माण्ड. 2/16/28।
- **अन्तकेश्वर**- (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. (तीर्थ.कल्प.पृ. 75)।
- **अन्तर्वेदि** - (गंगा और यमुना के मध्य की पवित्र भूमि) स्कन्द. 1/1/17/274-275 (जहाँ वृत्र को मारने के कारण ब्रह्म हत्या हिरि)।
- **अन्तशिला** - (विन्ध्य से निकली हुई नदी) वायु. 45/203।
- **अन्ध**- (एक नद) भागवत. 5/19/18।
- **अन्धोन** - (नर्मदा के अंतर्गत) पद्म. 1/19/110-113।
- **अन्नकूट** - (मथुरा के अंतर्गत) वराह. 164/10 एवं 22-32 (गोवर्धन को अन्नकूट कहा जाता है।
- **अप्सरेस** - (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 193/16 पद्म. 1/21/16, कूर्म. 2/42/24।
- **अब्जक** - (गोदा. में) ब्रह्म. 129/137 (यह गोदावरी का हृदय या मध्य है।
- **अमरकण्टक** - (छत्तीसगढ़ के विलासपुर जिले में पर्वत)। वायु. 77/10-16 एवं 15-16 ने इस पर्वत की बड़ी प्रशंसा की है। मत्स्य. 188/79, पद्म. 1/15/68-69 का कथन है कि शिव द्वारा जलाये गये बाण के तीन पुरों में दूसरा इसी

पर्वत पर गिरा था। कूर्म. 2/40/36 (सूर्य एवं चन्द्र ग्रहणों के समय यहाँ की यात्रा पुण्यदायिनी समझी जाती थी।

- **अमरेश्वर** - (1) (निषिध पर्वत पर) वाम. (ती. कल्प.पृ. 236); (2) (श्री पर्वत के अंतर्गत) लिंग. 1/92/15।;
- **अमोहक** - (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 191/105 पद्म. 1/18/96-99।
- **अम्बिकावन** (सरस्वती नदी पर) भागवत. 10/34/12।
- **अम्ल-** (कुरूक्षेत्र की एक पवित्र नदी) वाम. 34/7।
- **अयोध्या-** (उ.प्र. के फैजाबाद जिला में) घाघरा नदी पर सात पवित्र नगरियों में एक। यहाँ कुछ जैन सन्त उत्पन्न हुए थे। अतः जैनों का तीर्थ स्थल भी है। ब्रह्माण्ड 4/40/91, अग्नि. 109/24। रामायण (1/5/5-7) के अनुसार कोसल देश में सरयू बहती थी अयोध्या जो 12 योजन लम्बी एवं 3 योजन चौड़ी नगरी थी। पद्म. 6/208/46-47 (दक्षिण कोशल एवं उत्तर कोशल के लिए)। साकेत को सामान्यतः अयोध्या कहा जाता है।
- **अरविन्द-** (गया के अंतर्गत एक पहाड़ी) वायु. 109/15 नारदीय. 2/47/73।
- **अरिष्टकुण्ड** -(मथुरा के अंतर्गत) वराह. 164/30 (जहाँ पर अरिष्ट मारा गया था)।
- **अरुण-**(कैलास के पश्चिम का पर्वत जहाँ शिव रहा करते थे) वायु. 47/17-18, ब्रह्माण्ड. 2/18/8।
- **अर्जुन-** (पितरों का तीर्थ) मत्स्य. 22/43।
- **अर्बुद-** (अरावली श्रेणी के अबू पर्वत) वन. 82/55-56 था। मत्स्य. 22/38 पद्म. 1/24/4, नारद. 2/60/27, अग्नि 109/10।

- **अलकनन्दा** - आदि. 170/22 (देवों के बीच गंगा का यही नाम है)। वायु. 41/18, कूर्म. 1/46/31, विष्णु. 2/2/36 एवं 2/8/114 के मत से गंगा की चार धाराओं में एक है और समुद्र में सात मुख होकर मिल जाती है। आदि. 170/19 ने सात मुखों का उल्लेख किया है। नारदीप. (266/4) का कथन है कि जब गंगा भगीरथ के रथ का अनुसरण करने लगती है तो यह अलकनन्दा कहलाती है। भागवत. 4/6/24 एवं 5/17/5। भागीरथी देव प्रयाग में अलकनन्दा से मिल जाती है और दोनों के संयोग से गंगा नामक धारा बन जाती है। नारदीप. 2/67/72-73 में आया है कि भागीरथी एवं अलकनन्दा बदरिकाश्रम में मिलती है।
- **अवधूत** - (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग (तीर्थ कल्प. पृष्ठ 93।
- **अवन्ति-** (1) वह देश जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। (2) अवन्ती (पारियात पर्वत से निकली हुई नदी है। वायु. 45/98 मत्स्य. 114/24, ब्रह्माण्ड. 2/16/29; (3) (मालवा की राजधानी उज्जयिनी) ब्रह्म. 43/24, अग्नि 109/24, नारदीप 02/178/35-36।
- **अविमुक्त** - (काशी) विष्णु. 5/34/30 एवं 43।
- **अश्वतीर्थ-** (1) कान्यकुब्ज से बहुत दूर नहीं। विष्णु. 4/7/15। (जहाँ ऋचीक ने गाधि को उसकी कन्या सत्यवती को प्राप्त करने के लिए दहेज के लिए 1000 घोड़े दिये थे। (2) मत्स्य. 194/3 पद्य. 21/3 (3) (गोदावरी पर) ब्रह्म. 89/43 (जहाँ पर अश्वनी कुमार उत्पन्न हुए थे।
- **अश्वमेघ** - (प्रयाग के अंतर्गत) लिंग. 111/14।
- **अश्वीश्वर-** (वाराणसी के अंतर्गत) लिंग. तीर्थ कल्प., पृ. 52।
- **अश्वीतीर्थ-** (नर्मदा के अंतर्गत) पद्य. 1/21/30।

- **इन्द्रप्रस्थ** - यमुना के तट पर दिल्ली में आधुनिक इन्द्रपत नामक ग्राम) आदि. 217/27, विष्णु. 38/34 (कृष्ण के देहावसान के उपरान्त अर्जुन ने यहाँ यादव वज्र को राजमुकुट दिया)।

  पद्म. 6/196/5, 60/75-76 भाग . 10/58/11, 11/30/48, 11/31/25 इन्द्रप्रस्थ पाँच प्रस्थों में एक है - अन्य सोनीपत, पानीपत, पिलपत, और बागपत।

- **इरावती** - (पंजाब की आधुनिक नदी, रावी) मत्स्य. 22/19 (श्राद्धतीर्थ), वायु. 45/95। वाम. 81/1। लाहौर नगर इसके तट पर अवस्थित है।

- **उज्जयन्त**- (सौराष्ट्र में द्वारका के पास वायु. 45/92 एवं 77/52, वाम. 13/18 स्कन्द. 8/2/11/11 एवं 15।

- **उत्तरगंगा** - (कश्मीर में, लार परगने में गंगबल)

- **उमातुंग** - कूर्म. 2/37/32-33, वायु. 77-81-82 (श्राद्ध, जप, होम के लिए सर्वोत्तम स्थल)

- **ऋषितीर्थ** - (1) (नर्मदा पर) मत्स्य. 191/22 एवं 193/13 (यहाँ मुनि तृणबिन्दु शाप से मुक्त हुए थे। कूर्म. 2/41/15 पद्म. 1/18/22 (2) (मथुरा के अन्तर्गत) वराह. 152/60।

- **ऐरावती** - (हिमालय से निकली हुई एवं मद्र देश की सीमा की एक नदी) मत्स्य. 115/18-19, 116/1।

- **ओकारेश्वर** - (वारा. के अंतर्गत) स्कन्द. 4/35/118।

- **काव्यश्रम**- (1) सहारनपुर जिले में मालिनी नामक नदी पर) आग्नि. 109/10।

- **कदम्ब** - (द्वारका के अंतर्गत) वराह. 149/52 (जहाँ पर वृष्णि लोग पवित्र हुए थे।

- **कपालमोचन तीर्थ-** (1) (वारा. में) स्कन्द. 04/33/116, नारदीय. 2/29/38-60 (शिव ने अपने हाथ में आये हुए ब्रह्मा के एक सिर को काट डाला और इस तीर्थ पर पापमुक्त हो गये। मत्स्य. 183/84-103, वाम. 3/48-51, वराह. 97/24-26 पद्म. 5/14/195-189 कूर्म. 1/3515 (इन पाँचों पुराणों में एक ही गाथा है।
- **कपिलतीर्थ -** (1) (उड़ीसा में विरज के अंतर्गत) ब्रह्म. 42/6 कूर्म. 2/41/93-100 (3) ब्रह्म 155/1-2।
- **काकशिला -** (गया के अंतर्गत)वायु. 108/76 अग्नि. 116/4।
- **काञ्चीपुरी -** सात पवित्र नदियों में एक चोलों की राजधानी एवं अन्नपूर्णा देवी का स्थान। पद्म. 6/110/5, ब्राह्मण्ड. 4/5/6-10 एवं 4/19/15 वायु. 104/76, पद्म. 4/17/67।
- **कान्यकुब्ज** (ललिता देवी के 50 पीठों में से एक) ब्राह्मण्ड. 4/44/94 (जहाँ विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोम पान किया था।
- **कापोतकतीर्थ-** (साभ्रमति के अंतर्गत) पद्म. 6/155/1 (यहां नदी पूर्व की ओर हो जाती है।
- **कामगिरी -** (पर्वत) ब्रह्माण्ड 04/39/105।
- **कामतीर्थ-** (नर्मदा के दक्षिणी पर) कूर्म. 2/41/5 गरूड 1/81/9।
- **कावेरी-** (1) सह्य पर्वत से निकलने वाली दक्षिण भारत की एक नदी) वायु. 45/104/77/28 मत्स्य. 22/64, कूर्म. 2/37/16-19 पद्म. 1/39/20 (मरुवृद्धा कही गयी है)
- **किष्किन्धपर्वत-** मत्स्य. 13/46 (इस पर्वत पर देवी तारा कहा गया है)
- **कुन्डवन -** (मथुरा के 12 वनों में तीसरा वन वराह. 153/32।)

- **कुब्जाभ्रक** - (यहाँ गंगाद्वार के पास रैम्प का आश्रम था) मत्स्य. 22/66 पद्म. 1/32/5 कूर्म. 2/20/33 गरुड (1/81/10) का कथन है कि एक महान श्राद्ध तीर्थ है। वराह. 125/101 एवं 132 एवं 126/3-3 (यह माया तीर्थ अर्थात हरिद्वार है) वराह. (140/60-64) में व्याख्या की है कि किस प्रकार पवित्र स्थल श्रषिकेश का यह नाम पड़ा। ऐसा लगता है कि यह हरिद्वार में कोई तीर्थ था।

- **कृष्णादेवी-** मत्स्य 114/29 में 'स्कन्द. से कृष्णवेणी का माहात्म्य उदघृत है।

- **कृष्णा-** (1) महावलेश्वर में सह्य पर्वत से निकलने वाली नदी) ब्रह्म. 77/5 पद्म. 6/113/24 (2) वाम. 78/71 इसे बहुधा कृष्ण-वेष्णा या कृष्ण वेणा कहा जाता है। यह तीन विशाल नदियों में से एक है। दो अन्य नदी कावेरी एवं गोदावरी है।

- **कोलापुर-** (यह आधुनिक कोल्हापुर है जो देवी स्थानों में एक है) पद्म. 6/176/42 (यहाँ लक्ष्मी का एक मंदिर है) ब्रह्माण्ड. 4/44/97 (यह ललितातीर्थ है)

- **कोलाहल** (एक पर्वत) वायु. 45/90;106/45 ब्रह्माण्ड. 2/16/21, विष्णु. 3/18/73।

- **कोशला** - (नदी अयोध्या के पास) पद्म. 1/39/11, 6/206/13; 207/35-36, 208/27।

- **शिप्रा-** (विन्ध्य से निकली हुई नदी) मत्स्य. 114/27 वाम. 083/18-19। वायु. में शिप्रा या सिप्रा आया है।

- **गंगा-सरस्वती संगम-** पद्म. 1/32/3/

- **गंगा-सागर संगम-** मत्स्य. 22/11 (यह सर्वतीर्थमय है) पद्म. 1/39/4।

- **गण्डकी** - (हिमालय से निकल कर बिहार में सोनपुर के पास गंगा नदी में मिल जाती है)। वराह. 144-146) एवं ब्रह्माण्ड (2/16/26) में आया है कि यह नदी विष्णु के

कपोल के पसीने से निकली हुई है। विष्णु ने इसे वरदान दिया था कि मैं शालग्राम पस्तर खण्डों के रूप में तुमसे सदैव विराजमान रहूँगा (वराह. 144/58) गण्डकी देविका एवं पुलस्त्याश्रम से निकली हुई नदियां त्रिवेणी बनाती हैं (वराह. 144/84) यह नेपाल में शालग्रामी एवं उ.प्र. में नारायणी कहलाती हैं।

- **गिरिकर्णिका** - मत्स्य. 22/39। इसे साभ्रमती कहा है।
- **गिरिकूट** - (गया के अंतर्गत) नारदीप. 2/47/75।
- **गुरुकूल तीर्थ** - (नर्मदा पर) स्कन्द. 01/1/18/153।
- **गोमती-** स्कन्द. 7/4/4/97-98 एवं 5/32। पद्म. 4/17/69-70 एवं 6/176/35-36/ अवध में हिमालय से निकलकर वाराणसी के पास गंगानदी में मिलने वाली नदी।
- **गोवर्धन** - (मथुरा के पास एक पहाड़ी) मत्स्य. 022/52 कूर्म. 1/14/18 (जहाँ पर पृथु ने तप किया था)। पद्म. 5/69/39 वराह. 163/18 विष्णु. 5/11/16
- **गौतमेश्वर** - (नर्मदा के अंतर्गत) मत्स्य. 22/68; 193/60; कूर्म. 2/42/6-8 पद्म. 1/20/58।
- **त्रिवेणी** - (प्रयाग में) वाराह. 144/83, 144/86, 144/116-134।
- **दण्डकारण्य (दण्डकवन)** - वाराह. 71/10, ब्रह्म. 88/18/110 वाम. 84/12 पद्म 34/58/59
- **देवगिरि** (मथुरा के अन्तर्गत एक पहाड़ी) वाराह. 164/27 भाग. 5/19/16।
- **देवदारुवन** (बद्रीनाथ के पास हिमालय में) कूर्म. 2/36/53-60, 2/39/18 मत्स्य. 13/47।
- **द्वारका** - वैदिक साहित्य में इस तीर्थ का नाम नहीं आता किन्तु पुराणों में इसके

विषय बहुत कुछ कह गया है। यह सात पुनीत नगरियों में एक है। इसकी जानकारी हमें वाराह. 149/7 ब्रह्म. 14/54-56, विष्णु. 5/23/13 भविष्य 4/129/44 अग्नि 273/12 हरिवंश. (2 विष्णु पूर्व 58 एवं 98 अध्याय)

- **धर्मारण्य** (गया के अन्तर्गत) वायु. 111/23 वाम. 84/12 अग्नि. 115/34 नारदीप 2/45/100 पद्म. 1/12/6-8।

स्पष्ट किया गया है कि नैमिषारण्य के मुनियों का महान क्षेत्र कुरूक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर था। किन्तु वायु 2/9 एवं ब्रह्मा. 1/2/9 के अनुसार यह गोमती पर था विष्णु (3/14/18) में आया है कि गंगा यमुना नैमिष-गोमती तथा अन्य नदियों में स्नान करने एवं पितरों को सम्मान देने से पाप कट जाते हैं।

- **नैमिश** (यह एक वन है) यह गोमती नदी पर लखनऊ जनपद से 45 मील दूर स्थित है। मत्स्य 109/3 (पृथ्वी पर अत्यन्त पवित्र) कूर्म. 2/20/34 कूर्म. 2/43/1-16 वायु. 2/8 ब्रह्माण्ड 1/2/8 ब्रह्म. 1/3-10 में इसका सुन्दर वर्णन है वायु 1/14-12 में स्पष्ट किया गया है कि नैमिषारण्य के मुनियों का महान क्षेत्र कुरूक्षेत्र में दृषद्वती के तट पर था। किन्तु वायु ̆/9 एवं ब्रह्मा. (1/2/9) के अनुसार यह गोमती पर था। विष्णु (3/14/18) में आया है कि गंगा यमुना नैमिष गोमती तथा अन्य नदियों में स्नान करने एवं पितरों को सम्मान देने से पाप कट जाते हैं।

- **पञ्चनद** - (पंजाब की पाँच नदियाँ) वायु. 77/56 कूर्म. 2/44/1-2 लिंग. 1/43/47-48, वाम. 34/26 पदम 1/24/31 आजकल इन्हें सतलज व्यास रावी, चिनाव, झेलम कहा जाता है।

- **पञ्चकुण्ड** - (द्वारका के अन्तर्गत) वाराह. 15/1/43

- **पंचनदी** - (कोल्हापुर के पास) पद्म. 6/176/43।

- **पञ्चतीर्थ** (का काञ्ची) ब्रह्माण्ड 4/40/59-61।
- **पलाशिनी** (नदी काठियावाड के गिरिनार के पास मार्क. 54/30 (शुक्तिमान से निकली हुई वायु. 45/107।
- **पर्णाशा-** राजस्थान में बनास नदी, जो उदयपुर राज्य से निकलकर चम्बल में मिलती है। पर्णसा का अर्थ है पत्तों की आशा-वायु 45/97, वाराह 214/48 मत्स्य 114/23।
- **परुष्णी -** पंजाब की आधुनिक रावी ऋ. 5/52/9, 7/88/8-9 ब्रह्म. 144/1 के अनुसार गोदावरी की सहायक नदी।
- **पमोदा (नदी) -** ब्रह्माण्ड 2/18/70।, वायु. 47/67।
- **पयोष्णी** (विन्ध्य पहाड़ी से निकली नदी) अधिकांश पुराणों में तापी एवं पयोष्णी अलग-अलग उल्लखित है यथा - विष्णु - 2/3/11, मत्स्य. 114/27, ब्रह्म. 27/33, वायु 45/102 वाम. 13/28 नारदीप 2/60/29 भागवत 10/79/20, पदम 4/14/12 (यहाँ मुनि च्यवन का आश्रम था)।
- **पाण्डुर** (एक छोटा पर्वत) वायु 49/9।
- **पारियात्र** (सात मुख्य पर्वत श्रेणियों में से एक) इसे विन्ध्य का पश्चिमी भाग समझना चाहिए क्योंकि चम्बल वेतवा एवं क्षिप्रा नदियाँ इससे निर्गत कही गयी है। इसकी जानकारी हमें निम्न पुराणों से मिलती है - कूर्म. 1/47/24 भागवत. 5/19/16, वायु. 48/88 ब्रह्म. 27/99।
- **पार्वतिका -** यह विन्ध्य से निकलकर चम्बल में मिलती है इस नदी पर श्राद्ध अत्यन्त फलदायक होता है मत्स्य. 22/56।
- **पुष्कर -** अजमेर 6 मील दूर एक नगर, झील जो तीर्थ यात्रा स्थल है यहाँ पर ब्रह्मा का मन्दिर है इसकी जानकारी हमें वायु. 77/40 कूर्म. 2/20/34।

- **पुष्करिणी** - (नर्मदा नदी के अन्तर्गत थी) मत्स्य. 190/16 कूर्म. 2/41/10-11 पदम् 1/17/12, अग्निपुराण (116/13) में इसे गया के अन्तर्गत माना गया है।
- **पूर्णतीर्थ** - (गोदावरी के तट पर स्थित है) ब्रह्मपुराण 122/1।
- **प्रतिष्ठान** - (इलाहाबाद जिले के पास झूँसी) वायु. 91/18 (पुरुरवा की राजधानी) मत्स्य 12/18, 106/30 (गंगा के पूर्वी तट पर) विष्णु. 4/1/16 ब्रह्म, 227/151 भाग. 9/1/42 पुराणों में एक दूसरे प्रतिष्ठान की भी जानकारी मिलती है जो दक्षिणी भारत की नदी गोदावरी के बायें तट पर स्थित आधुनिक पैठन। इस स्थान की जानकारी हमें ब्रहम - 112/23 वाराह. 165/1, पद्म- 6/172/20, 6/178/2-6।
- **प्रभास**- सौराष्ट्र में समुद्र के पास, जहाँ 12 ज्योर्तिलिंगों एक सोमनाथ का प्रसिद्ध मंदिर था। इसे सोमनाथ पट्टन भी कहा गया है इसकी जानकारी हमें -स्कन्द. 7/1/2/44-43, कूर्म. 2/35/15-17, नारदीय. 2/70/1-95, गरूड. 1/4/81, वाम. 84/29 यहाँ सरस्वती समुद्र में गिरती हैं।
- **प्रेतकूट** (गया के अन्तर्गत एक पहाड़ी) वायु. 109/15
- **प्रेतशिला** - (गया के अन्तर्गत) वायु. 110/15, 108/15।
- **प्लक्षतीर्थ** - (एक पवित्र तालाब संभवतः कुरूक्षेत्र में) वायु 91/32
- **फल्गु (नदी)**- गया जनपद में बहती है यहाँ पितरों को श्राद्ध प्रदान किया जाता है इसकी सूचना हमनें वायु. 111/16 से प्राप्त होती है।
- **बदरिकाश्रम** - (उत्तरांचल के गढ़वाल संभाग में बद्रीनाथ) वराह. 141 (तीर्थ कल्प. 215-216) मत्स्य. 201/24, विष्णु. 5/37/34, ब्राह्मण्ड. 3/25-67, नरदीय. 2/67, भागवत. 7/11/6।

- **बदरीवन-** पद्म 1/27/66।
- **वार्हस्पत्यतीर्थ** -(गोदावरी नदी के अन्तर्गत) ब्रहम. 122/101।
- **बहुदा** - (सरस्वती के निकट एक नदी) पद्म. 1/32/31, नारदीय. 2/60/31 ब्रहम 27/36 मत्स्य 144/22 वायु. 45/95 इन पुराणों के अनुसार यह हिमवान् (हिमालय क्षेत्र) से निकलती है।
- **बिन्दुसर** (हिमालय श्रृंखला के मैनाक पर्वत पर स्थित है) इसकी जानकारी हमें ब्रह्माण्ड. 2/18/31, मत्स्य. 121/26-31, मत्स्य. 121/26-31-32 इस स्थान पर भगीरथ इन्द्र एवं नर-नारायण ने तप किया था।
- **ब्रहमगिरी** - एक पर्वत जहाँ से गोदावरी निकलती है और जहाँ पर गौतम ऋषि का आश्रम स्थित था। इसकी जानकारी हमें ब्रहम. 74/25-26, 84/2, पदम 7/17/58 पुराणों से मिलती है।
- **ब्रहम नदी** - (यह सरस्वती नदी का नाम है) भागवत. 9/16/23।
- **ब्रह्मस्थान** - पद्म. 1/27/2
- **ब्रहमयूप** (गया के अन्तर्गत) वायु. 111/31-32, अग्नि. 115/39।
- **ब्रह्मावर्त** - सरस्वती और दृषद्वती के मध्य की पवित्र भूमि) यह एक पवित्र तीर्थ है इसकी जानकारी मत्स्य 22/69, अग्नि 109/16 पुराणों से मिलती है।
- **भद्रावती** - (गंगा की मौलिक चार धाराओं में एक) ब्रह्माण्ड. 3/56/52।
- **भागीरथी** - मत्स्य. 121/41।
- **भावतीर्थ** - (गोदावरी के अन्तर्गत) ब्रहम. 153/1।
- **भीमरथी** (भीमानदी) मत्स्य. 22/45, 114/29 पद्म. 1/24/32, वामन 13/30।
- **भुनेश्वर** - लिंग. (तीर्थ कल्प. पृष्ठ 56

- **भूलेश्वर** - (कश्मीर में भूथीसर) नीलमत. पृष्ठ 1309, 1324, कूर्म. 1/35/10, पदम. - 1/37/13।
- **भृगुतीर्थ** - (नर्मदा के अन्तर्गत) मत्स्य. 193/23-60, कूर्म. 2/42/1-6 पद्म. 1/20/23-57। यह स्थान जबलपुर से पश्चिम 12 झील मील दूरी पर भेड़ा घाट पर स्थित है जिसके मन्दिर में 64 योगिनियों के मंदिर है।
- **भृदुतुङ्ग** - (एक पर्वत पर वह आश्रम जहाँ भृगु ने तप किया) वायु. 23/148, कूर्म. 2/20/23 मत्स्य. 22/31 (श्राद्ध के लिए उत्तम स्थान)।
- **मधुवन** - (मथुरा) कूर्म. 2/36/9 वाराह. 153/30, वामन. 83/31 भागवत. 4/8/42 (यमुना के तटों पर) (शत्रुघ्न ने मधुवन में मथुरा नगरी को बसाया था। वामन. 34/5 के अनुसार कुरूक्षेत्र के सात वनों में एक मधुवन था।
- **मन्दाकिनी** - (चित्रकूट पर्वत के पास एवं ऋक्षवान से निकली हुई नदी) वायु. 45/99, अग्नि. 109/23 ब्रह्माण्ड 2/16/30 मत्स्य. 114/25।
- **मन्दर** - (पर्वत) यह मेरू पवर्त के पूर्व समुद्र तक फैला हुआ विष्णु 2/2/18 मार्कण्डेय 51/19 लिंग. 2/92/187।
- **महानदी** (यह विन्ध्य से निकलकर उड़ीसा में कटक के पास बहती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है) ब्रह्माण्ड 46/4-5, कूर्म. 2/35/25।
- **महेन्द्र** (यह एक पर्वत है जो गंगा या उड़ीसा के मुखों से लेकर मदुरा तक फैला है) मत्स्य. 2/44, पद्म. 1/39/14 भागवत. 5/19/16, वाम. 13/14-15 कूर्म. 1/47/23-24।
- **मानस** - हिमालय में एक झील जो कैलास के उत्तर एवं गुरला। मान्धाता के बीच में स्थित है) इसकी जानकारी हमें ब्रह्माण्ड 2/18/15 मत्स्य. 122/16/17 वाम. 78/3।

- **रामतीर्थ** - (गया के अन्तर्गत) वायु. 108/16-18 मत्स्य. 22/70 अग्नि. 116/63। रामेश्वर (ज्योर्तिलिगों में से एक जिसे राम ने स्थापित किया था।मत्स्य. 22/50, कूर्म. 2/30/23 गरूड़ 1/8/9।
- **लौहित्य** (ब्रह्मपुत्र नदी) वायु. 47/11 77/95, मत्स्य. 121/11-12 पद्म 1/39/2, कालिका. 86/26/34।
- **वराहतीर्थ** - (कुरूक्षेत्र के अन्तर्गत) वाम. 34/32 पदम 1/26/15।
- **वितस्ता-** कश्मीर में एक नदी जो झेलम के नाम से प्रसिद्ध है। कूर्म. 2/44/4 वामन. 90/7 नीलमत. 45/305-306।
- **विदिशा** - (परिपात्र से निकली हुई नदी) ब्रहम. 27/29 ब्रह्माण्ड 2/16/28 मार्कण्डेय 54/20।
- **विपाशा** - पंजाब में व्यास नदी ऋग्वेद के अनुसार विपाशा) ऋग्वेद 3/33/113, वायु. 79/6, नारदीय. 2/60/30।
- **वेणा** - (विन्ध्य से निकली हुई नदी) ब्रह्म. 27/33, मत्स्य. 114/27 यह मध्य प्रदेश की वेन गंगा है। जो गोदावरी में मिलती है।
- **वेदवती** - परित्यात्र से निकली हुई एक नदी। मत्स्य. 114/23 ब्रह्माण्ड 2/16/27 ब्रहम. 27/29।
- **वैतरणी** - (उड़ीसा में बहने वाली विन्ध्य से निर्गत नदी) वायु. 77/95, कूर्म. 2/37/37 पद्म. 1/39/6 अग्नि. 116/7 मत्स्य. 114/27 ब्रह्म. 27/33।
- **बैद्यनाथ** - वाराणसी के अन्तर्गत लिंग. तीर्थ कल्पपृष्ठ-84 एवं 114) मत्स्य. 13/41, 22/24 पद्म 5/17/205 देवीभागव. 7/38/14 यहाँ पर देवी बंगला कही जाती है।
- **शारदातीर्थ** - (कश्मीर में) मत्स्य. 22/74 कश्मीर के प्रमुख तीर्थों में है। यह किस गंगा नदी के दाहिने तट पर स्थित है।

- **शालग्राम-** (गणडकी की नदी के उद्‌ग स्थल पर एक पवित्र स्थान) विष्णु. 2/1/24, 2/13/4 वराह. 144/3।
- **शिप्रा** - (नदी जो पारियात्र से निकलकर उज्जैनी में बहती चली जाती है) मत्स्य. 22/24, वायु. 45/48 इस नदी के प्रत्येक एक मील पर एक तीर्थ स्थल है।
- **शुक्तिमान** (भारत के सात महान पर्वतों में एक यह विन्ध्य का एक भाग है) कूर्म. 1/47/39 वायु. 45/88/107 नारद. 2/60/37 भागवत. 5/19/10
- **श्रृंगवेरपुर** - (इलाहाबाद जिले में गंगा नदी के बायें तट पर) पद्‌म. 1/39/61 अग्नि. 109/23 यही पर अयोध्या से वन जाते समय भगवान राम ने गंगा नदी को पार किया था।
- **श्रीपर्वत** (श्रीशैल) कुर्नूल जिले में कृष्णा स्टेशन से 50 मील दूर कृष्णा नदी की दक्षिण दिशा में एक पहाड़ी) लिंग 1/92/155 वायु. 77/28 मत्स्य. 13/31 अग्नि 133/4 पदम. 1/15/68।
- **सप्तगोदावर** - वायु. 77/19 मत्स्य. 22/78, भागवत. 10/79/12, पद्‌म. 1/39/41 स्कन्द. 4/6/22।
- **सरयू** - (नदी मत्स्य 22/19, 121/16-17 ब्रह्माण्ड. 2/18/70 नारदीय. 2/75/71।
- **सरस्वती** - (आधुनिक सरसुती) वह नदी जो ब्रह्मसर से निकलती है। वामन. 2/42-43 पद्म. 5/18/159-160।
- **सिद्धवन-** मत्स्य. 22/23 यहाँ पर श्राद्ध अत्यन्त फलदायक है।
- **सिन्धु** - वायु. 45/98, मत्स्य. 114/23 ब्रह्म. 27/28।
- **सूकर तीर्थ** - बरेली और मथुरा के बीच में गंगा के पश्चिमी तट पर सोरो) नारदीय. 2/40/31, 60/22, पदम. 6/12/21/6-7।

- **सूर्यतीर्थ** - कूर्म॰ 1/35/7 पद्म 1/37/7 (मथुरा के अन्तर्गत) वाराह॰ 152/50।
- **सोमतीर्थ** - (सरस्वती के किनारे) वामन॰ 41/4 मत्स्य॰ 191/30, पद्म 1/18/30 कूर्म॰ 2/41/47।
- **हरिद्वार** - (इसे गंगाद्वार या मायापुरी भी कहते हैं यह उत्तरांचल के हरिद्वार जिले दाहिने किनारे पर स्थित है यह सात पवित्र नगरियों में परिणति होता है।
- **पदम.** 4/17/66, 6/21/1। 6/22/18।
- **हेमकूट-** (कैलाश का दूसरा नाम ब्रह्माण्ड 2/14/48, 15/15।
- **हृषीकेश** - हरिद्वार के उत्तर 14 मील दूर गंगा तट पर वराह॰ 146/63-64।

सातवाँ अध्याय

पर्यावरण एवं आयुर्वेद

पर्यावरण एवं आयुर्वेद

वर्तमान समय में चिकित्सा शास्त्र के अन्तर्गत आयुर्वेद,एलोपैथिक, होमियोपैथिक तथा यूनानी चिकित्सा पद्धति समाज में व्याप्त है। लेकिन प्राचीन काल में भारत में चिकित्सा के लिए एक मात्र आयुर्वेदिक पद्धति ही विद्यमान थी। जो समस्त जीवों के उपचार में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती थी। प्राचीन काल में समस्त रोगों का निदान आर्युवेद के ही द्वारा होता।

प्राचीन भारतीय समस्त धर्म ग्रन्थों में रोग निदान के विषय में जानकारी मिलती है। प्राचीन धर्म ग्रन्थों में रोग निवारण के लिए जड़ी-बूटियों का प्रयोग होता था। जो अपनी उपयोगिता के लिए अति प्रसिद्ध थी। जैसा कि आज की अंग्रेजी दवाओं का तुरन्त लाभ तो हो जाता है लेकिन रोगी को रोग से पूर्ण आराम नहीं मिलता तथा किन्हीं-किन्हीं दवाओं का प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता हैं। वहीं आयुर्वेद में दवाओं का प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए आज पुनः समाज में हर्बल दवाओं की मांग बढ़ने लगी है। आयुर्वेद में समस्त रोगों के लक्षण तथा निदान के उल्लेख मिलते हैं। आयुर्वेदिक दवाये वन उत्पन्न होने के कारण पर्यावरण की दृष्टि से अति सुरक्षित होती है। आयुर्वेदिक औषधि वन उपज होने के कारण पर्यावरण की मित्र है। इन वनौषधियों से पर्यावरण का नुकसान न होकर पर्यावरण का संरक्षण होता है। वेदों में ब्राह्मण ग्रन्थों में पुराणों में सुश्रुत तथा चरक संहिता में आयुर्वेदिक औषधि का उल्लेख मिलता है। आयुर्वेदिक औषधि वन उपज होने कारण पर्यावरण की

दृष्टि से अति महत्वपूर्ण हो गयी है। वर्तमान समय में अपनी उपयोगिता के कारण लोगों में पुनः इसके प्रचलन में वृद्धि हो रही है। पुराणों में विशेषकर अग्नि और गरुण पुराण में आयुर्वैदिक औषधियों द्वारा रोगों के निदान की बात कही गयी है तथा बताया गया है कि किस कारण रोग उत्पन्न होता है, रोगों के क्या लक्षण होते हैं तथा रोगों का किस प्रकार निदान किया जा सकता है। अतः कुछ रोगों के निदान के जो औषधि प्रयोग में लायी जाती है वह इस प्रकार है।

ज्वर अतिसार आदि रोगों का उपचार[1]

आयुर्वेद में वातज, पित्तज, कफज ज्वर (बुखार) मान गया है। मधु, सेंधा नमक, वच, काली मिर्च और पिप्पली को पीसकर कपड़छान करने के बाद ज्वर से पीड़ित व्यक्ति को देने से वह तुरन्त होश में आ जाता है। त्रिवृद्धिशाला, त्रिफला, कटुकी और अमलता से बने क्वाथ में सेंधा नमक डालकर पीने से ज्वर विनष्ट होता है। सोठ मोथ, रक्तचन्दन, खस तथा धनिया से बने क्वाथ में शर्करा या मधु मिलाना चाहिए इसका पान करने से तिजरिया ज्वर विनष्ट हो जाता है।

गुडूची (गिलोय) का क्वाथ कल्क (कूटकर लुगदी बनाने का कल्क कहा जाता है) त्रिफला तथा वासक (अडूसा) का क्वाथ एवं कल्क द्राक्षा और बला (वरियारा) का क्वाथ और कल्क से सिद्ध घृत सभी प्रकार के ज्वरों का विनाशक है। आँवला, हरीतकी और पिप्पली सभी प्रकार के ज्वरों को विनष्ट करने वाला होता है।

त्रिफला, गिलोय, वासक चिरैता, नीम की छाल और नीम की गिरी का क्वाथ

---

1. गरुण पु. आचार खण्ड 170 अध्याय।

मधु के साथ पान करने से कमला तथा पाण्डु-रोग समाप्त होता है। सल्की (सलई) बेर, जामुन, प्रियाक आम, अर्जुन और घव नामक वृक्ष की छाल का क्वाथ दूध और मधु के साथ पान करने से रक्त सम्बन्धी रोगदूर हो जाता है। कृष्णा (कालीपत्तियों वाली तुलसी) धात्री (आँवला) श्वेत सोंठ का चूर्ण मधु के साथ मिलाकर खाने से हिचकी रोग का विनाश होता है। गाय के दूध दही घृत, मूत्र और गोमय से बना पञ्चगव्य मिरगी रोग के लिए हितकारी है। बला पुनर्नवा एरण्ड वृहतीद्वय कण्टकारी गोखरुका क्वाथ हींग और सेंधा नमक मिलाकर पान करने से वातशूल विनष्ट हो जाता है। दुग्ध में सोठ चूर्ण मिलाकर पीने से हृदयगत पीड़ा का नाश होता है। धतूर एरण्ड, निर्गुण्डी, सहिजन तथा सरसों का मिश्रित लेप पुराने तथा अत्यन्त दुखदायी श्लीपद (पीलपाव) रोग को दूर करता है।

नाड़ीव्रण, कुष्ट आदि रोगों की चिकित्सा[1]

नाड़ी को शस्त्र से भली भाँति काटकर व्रण चिकित्सा के समान चिकित्सा करना चाहिए। गुग्गुल, त्रिफला तथा त्रिकुट को समान भाग में लेकर सिद्ध किये घृत से नाड़ी में विकृत व्रण, शूल और भगन्दर नामक रोग पर विजय प्राप्त की जा सकती है। गुग्गुल, खदिर, वखल, नीम का फल और गिलोय का क्वाथ पीने उपदंश-दोष समाप्त हो जाता है। रसोन (लहसुन) मधु नासा अडूसा तथा घृत का कल्क बनाकर टूटी हुई हड्डियों के जोड़ पर लगाने से बहुत जल्दी आराम मिलता है। कालीमिर्च के साथ मैनसिल का सिद्ध तेल कुष्ट रोग का विनाश है। तेल में कनेर के मूलका पाक सिद्ध उबटन भी कुष्ट नाशक है। हल्दी, चन्दन रास्ना गुडूची एडगज (तगर) अमलतास और करञ्ज का लेप कुष्ठ विनाशक है।

---

1. ग.पु. आचार खण्ड 171 अध्याय।

मधु के साथ विडंग, त्रिफला और काली तुलसी के चूर्ण का अवलेह कुष्ठ, कृमि, मेह, नाड़ीव्रण एवं भगन्दर नामक रोगों का विनाश होता है। जो मनुष्य कुष्ठ रोगी हो तो हरीत की नीम, कुटकी, आँवला तथा दारुहल्दी का सेवन करना चाहिए। उष्ण मक्खनस, कुम्भ (गुग्गुल) अदरक, खदिर अक्ष (बदेड़ा) आवला तथा चम्पा नामक योग भी कुण्ठ का विनाश होता है यह औषधियों का एक रसायन है जो खदिर मिश्रित जल का यथा विधि सेवन करता है उसे कुष्ट रोग पर विजय प्राप्त हो जाती है। पिप्पली, गुडूची चिरायता अडूचा कटुकी पित्तपापड़ा खैर और लहसुन से बना क्वाथ फोड़ा-फुंसी तथा ज्वर रोग का विनाशक है लहसुन के चूर्ण को घिसने से कुष्ट विसर्म, फोड़ा तथा खुजली आदि चर्म रोगों का विनाश होता है। चौराई तथा रसौत को पीसकर मधु अथवा चावल के धोवन में पीने से सभी प्रकार के रक्त प्रदर रोग विनष्ट हो जाता है। चावल के जल के साथ पान किया हुआ कुश का मूल भी रक्त प्रदर रोग की विनाशक है।

स्त्रियों के रोगों की चिकित्सा

वच, उपकुंचिका (काला जीरा) जातीफल (जायफल) कृष्णा (काली तुलसी) वासक (अंडूसा) सैन्धव (सेंधा नमक अजमोदा (अजवाइन) यक्षवार, चित्रक तथा शर्करा को पीस कर सभी को मिश्रित करके घी में भूनकर जल या दूध के साथ सेवन किया जाय तो स्त्रियों के योनि भाग में होने वाला शूल, हृदय रोग, गुल्य, अर्श विकार दूर हो जाता है।

काँजी में जमापुष्प (अड़हुल के फूल) ज्योतिष्मती दल, मालगांगनी की पत्ती और चित्रक को पीसकर शर्करा के साथ पान करावें योनि रोग दूर हो जाता है। आँवला, रसौत तथा हरीतकी का चूर्ण जल के साथ पान कराने से वह स्त्रियों के रजोगुण को दूर करता है। ऋतुकाल में में लक्ष्मण (श्वेतकष्टकारी) की जड़ को दुग्ध के साथ पान कराने से या

नस्य लेने से स्त्री को पुत्र प्राप्त होता है घृत के साथ व्योष (सोंठ, पिप्पली और काली मिर्च) तथा केसर के चूर्ण का सेवन करने में वन्ध्या स्त्री भी पुत्रवती बन जाती है। पाठा (पाढ़ा), लाङ्गलि (कलियारी) सिंहास्य (कचनार) मयूर (चिड़ा) और कुटज (गिरिमल्लिका या गुरैया) को अलग-अलग पीसकर नाभि पेडू तथा योनिभाग में लेप करने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव होता है। मदार या बकुल की जड़ का लेप प्रसूता स्त्री के हृदय, मस्तक और पेडू के भाग में होने वाली पीड़ा का हरण करता है। दुग्ध के साथ साठी चावल का चूर्ण सेवन करने से प्रसूता स्त्री को दूध होने लगता है स्तन शोधन के लिए प्रसूता स्त्रियों को मूँग का जूस पीना चाहिए। कूट, वच, हारीतकी, ब्राह्मी, द्राक्षाफल, मधु और घृत का योग रंग आयु और सौन्दर्य का वर्धक है।

जो औषधि वृद्धावस्था को दूर करने का सामर्थ्य रखती हो उसको रसायन[1] कहा जाताहै। रसायन की अभिलाषा करने वाले लोगों का वर्षा आदि ऋतुओं में सेंधा नमक, शर्करा, सोंठ पिप्पली, मधु तथा गुड़ के साथ हरीत नामक औषधि का प्रयोग करना चाहिए।[2]

ज्वर चिकित्सा

गुडूची और मोथे का क्वाथ वातज्वर विनाशक है। दुरालभा अर्थात धमासा नामक औषधि के घृत पान करने से पित्त-ज्वर दूर होता है दुरालभा तथा सोंठ से सिद्ध घृत-मिश्रित क्वाथ कफ ज्वर का नाशक है। बालक सोंठ और पित्त पापड़ा से सभी ज्वर नष्ट हो जाते हैं।

---

1. लाभो पाथो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम्। (सु.सं.सू. अ. 1)
2. गरुड़पुराण अध्याय 172।

हल्दी, नीम, त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, अदरक चन्दन, परवल की पत्ती का क्वाथ पीने से त्रिदोष जन्य अर्थात सन्निपात ज्वर दूर हो जाता है।

कष्टकारी, सोंठ, गुडूची कमल तथा नागबला नामक औषधियों के योग से बने चूर्ण का सेवन करने से श्वास और खाँसी आदि से मुक्ति मिल जाती है।

चिरायता, पाढ़ा। पित्त पापड़ा, विसाला (इन्द्रायण) त्रिफला तथा निसोतका क्वाथ दूध के साथ ग्राह्य है। यह मलावरोधक का भेदन करने वाला एवं समस्त स्वरों का विनाशक है।

गर्भ-दन्त तथा कर्णशूल सम्बन्धी उपचार

मुलेठी तथा कष्टकारी नामक औषधियों को समभाग में लेकर गो दुग्ध में पाक तैयार करके चौथा भाग शेष रहने पर उस पाक का गरम जल के साथ पान करने पर स्त्री को गर्भ रुक जाता है। बिजौरा नीबं के बीजोंको दुध के साथ भावित करके उसका पान करने से स्त्री का गर्भ रूक जाता है। पुत्र प्राप्त की इच्छुक स्त्री को बिजौरा नीबू के बीज को तथा एरण्ड वृक्ष की जड़ को घी के साथ संयोजित करके उसका सेवन करना चाहिए। अश्वगन्धा के क्वाथ का दूध एवं घी के साथ सेवन पुत्र कारक है। पलाश के बीजों को मधु के साथ पीसकर पान करने से रजस्वला स्त्री मासिक धर्म तथा गर्भधारण सेरहित हो जाती है।

हरिताल, यवक्षार, पत्राङ्ग (तेजपत्ता) लाल चन्दन जायफल, हींग तथा लाक्षारस का पाक तैयार करके उसे दाँतों में भली-भाँति लगाना चाहिए किन्तु उससे पहले हरीत की क्वाथ से दांत साफ कर लें। ऐसा करने से मनुष्य के लाल पड़ गये दांत भी सफेद पड़

---

1. गरुड़पुराण अध्याय 175।

जाते हैं।

हल्दी नीम की पत्ती, पिप्पली, काली मिर्च, विडंग-भद्र,मोथा और सोंठ - इन सात औषधियों को गोमूत्र के सात पीसकर वटी बना लेना चाहिए। इसकी एक वटी अजीर्ण एवं दो बटी विषूचिका (हैजा) नामक रोग को दूर करता है। मधु के साथ इसको घिसकर लगाने से नेत्रों की सूजन दूर हो जाती है। गोमूत्र के साथ प्रयुक्त होने पर अर्बुद (कैंसर) नामक रोग दूर हो जाता है।

वट जटामांसी, बिल्ल, तगर, पंचकेसर, नागकेसर और प्रियंगु को समान भाग में लेकर चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण को धूप में लेने से मनुष्य रूप-सौन्दर्य से समान्वित हो जाता है।

पिप्पली और त्रिफला के चूर्ण को मधु के साथ चाटने से भयंकर पीनस, खाँसी और श्वास के विकार नष्ट हो जाते हैं। सोंठ, शर्करा और मधु मिलाकर बनायी गयी गुटिका खाने मात्र से मनुष्य का स्वर कोयल के समान हो जाता है।

प्रायः शरद, ग्रीष्म और बसन्त ऋतु में दही का उपयोग निन्दनीय है तथा हेमन्त, शिशिर एवं वर्षा ऋतु में दही प्रशस्त होता है।[1]

भोजन करने के पश्चात् नवनीत (मक्खन) के साथ शर्करा पान करना बुद्धिकारक होता है। यदि पुरुष एक पल पुराना गुड़ प्रतिदिन (भोजन के पश्चात) खाता है तो वह बलवान होकर अनेक स्त्रियों से सम्पर्क करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। यव, तिल, अश्वगन्धा, मूसली, सरला (काली तुलसी) और गुड़ को परस्पर मिलाकर बनायी गयी वटी

---

1. शरद् गीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् ।
   हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते।। गरूड़ पुराण (182/1)

खाने से मनुष्य तरूण एवं बलवान हो जाता है।

त्रिफला अदरक कूट और चन्दन को घृत में मिलाकर पान करने से बिच्छू का विष विनष्ट हो जाता है।

ग्रहणी, अतिसार, अर्श, अग्निमान्धर आदि रोगों का उपचार

काली मिर्च, शृंगवेर और कुटज की छाल का पान करने से ग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। पिप्पली, पिप्पली मूल, काली मिर्च, तगर, वच, देवदारू का रस और पाठा को दूध के साथ पीसकर सेवन करने से निश्चित ही अतिसार रोग विनष्ट हो जाते हैं।

पुष्य नक्षत्र में डंठल एवं पत्तियों-सहित शंखपुष्पी को उखाड़कर बकरी के दूध के साथ पीने से अपस्मार (मिर्गी) का रोग दूर हो जाता है। जामुन का फल, हल्दी तथा साँप की केंचुल का धूप सभी प्रकार के ज्वरों का विनाशक है। गोमूत्र के साथ पिप्पली हल्दी और उसका चूर्ण मिलाकर उसे गुदाद्वार में डालने से अर्श रोग दूर हो जाता है। बकरी का दूध और अदरक का चूर्ण मिलाकर पान करने से प्लीहा रोग दूर हो जाता है। सेंधा नमक, विहंग सोम लता, सरसों हल्दी, दारु-हल्दी, विष और नीम की पत्ती को गोमूत्र के साथ पीस लेना चाहि। इसका लेप करने से कुष्ट रोग का विनाश होता है।

सिह्म, अर्श, मूत्रकृच्छ, अजीर्ण तथा गण्डमाला आदि रोगों की औषधियाँ

हरीतकी, शर्करा और पिप्पली का चूर्ण नवनीत के साथ सेवन करने से वह

---

1. गरुड़पुराण (अध्याय 183)।

अर्श रोग का विनाश करता है। जंगली अडूसे के पत्तों का घी में मंद-मंद आंच पर पकाकर उसका लेप करना अर्श रोग दूर करने की श्रेष्ठतम औषधि है।

गुग्गुल और त्रिफला का चूर्ण बनाकर पान करने से भगंदर रोग को विनष्ट किया जा सकता है। जीरा, अदरक, दही तथा चावल की मांड को अग्नि में पकाकर नमक के साथ सेवन करने से मूत्रकृच्छ नामक रोग दूर हो जाता है।

घृत के साथ सिद्ध त्रिफला का चूर्ण कुष्ट-विनाशक है। पुनर्नवा, बिल्ल और पिप्पली के चूर्ण से सिद्ध घृत के द्वारा हिचकी श्वास तथा खाँसी दूर किया जा सकता है। इस घृत का पान स्त्रियों के लिए गर्भकारक होता है।

दूध और घी के साथ वानरबीज (केवाँच) को पकाकर घी तथा शर्करा में मिलाकर सेवन करने से वीर्य कभी भी नष्ट नहीं होता। मधु, घी, गुड़ करेले का रस और ताँबे को एक साथ पकाने से चाँदी बन जाता है। पीले धतूरका पुष्प और सीसा एक पल तथा लाङ्गलिका (करियारी) की शाखा को एक सात मिलाकर अग्नि में पकाने से सोना बन जाता है। लौह-चूर्ण और मट्ठा से सेवन से पाण्डुरोग का शमन हो जाता है। चमेली और बेर की जड़ को मट्ठे के साथ पीने से अजीर्ण दूर होता है।

बला, अतिबला, मधुयष्टि, शर्करा तथा मधु का पान करने से बन्ध्या स्त्री गर्भधारण कर लेती है। श्वेत अपराजिता की जड़ पिप्पली और सोंठ का पिसा हुआ लेप सिर में लगाने से शूल नष्ट हो जाता है। निर्गुण्डी की फुनगी को पीसकर पान करने से गण्डमाला नामक रोग दूर हो जाता है।[1]

---

1. गरुड़पुराण (अध्याय 184)।

प्रमेह, मूत्र-निरोध, शर्करा, गण्डमाला अर्श तथा भगंदर आदि रोगों का निदान

मधु के साथ गुडूची का रस पीने से प्रमेह रोग विनष्ट हो जाता है। गोहालिका की जड़ को तिल, दही तथा घी के साथ पान करने से यह वस्तिभाग में अवरुद्ध मूत्र को बाहर निकाल देता है। ब्राह्मी की जड़ को चावल के पानी में घिसकर तैयार किया गया लेप असाध्य गण्डमाला तथा गलगण्डक रोग को दूर करता है।

दत्तीमूल हल्दी और चित्रक के लेप से भगंदर रोग विनष्ट होता है, स्नूही (सेहुँड़) के दूध से अनेक बार भावित हल्दी की वटी का लेप अर्श रोग दूर करता है। घोषाफल और सेंधानमक को पीसकर बनाया गया लेप अर्श रोग में लाभदायक है। बेल के फल को भूनकर खाने से खूनी अर्श विनष्ट होता है। मक्खन के साथ काला तिल खाने से भी अर्श रोग का नष्ट होता है।[1]

आयुवृद्धिकरी औषधि

यदि मनुष्य हस्तिकर्ण पलाश के पत्तों का चूर्ण करके सौ पलकी मात्रा में इस चूर्ण को दूध के साथ मिलाकर लगातार सात दिनों तक सेवन करे तो वह वेद विद्याविशारद, सिंह के समान पराक्रमी, पद्मराग के समान कान्तियुक्त और सौ वर्ष की आयु में भी सोलह वर्ष का नवयुवक बन जाता है। किन्तु सतत् दुग्धपान करना अत्यावश्यक है। त्रिफला चूर्ण के साथ मधु का सेवन नेत्र ज्योति को बढ़ाता है। घी के साथ इस चूर्ण को खाने से अंधा व्यक्ति भी देख सकता है। खल्वाट के बाल भी इस लेप के प्रयोग से निकल आते हैं। इस

---

1. गरुड़पुराण अध्याय 186।

चूर्ण को तेल में मिलाकर शरीर में लगानेसे बाल पकने का प्रभाव तथा त्वचा की झुर्रियों का प्रकोप समाप्त हो जाता है।[1]

व्रण आदि रोगों की चिकित्सा

प्रहार से हुआ घाव व मवादयुक्त फोड़ा घी के प्रयोग से ठीक हो जाता है। दोनों हाथों से अपामार्ग की जड़ मलकर उसके रस से चोट के घाव को भरने से रक्तस्राव रूक जाता है। नाड़ी के घाव में बालमूल (मोथा) की जड़ को अथवा मेषश्रृङ्गी की जड़ को जल में घिसकर लगाने से उसका घाव सूख जाता है। भैंस के दही में कोदो का भात मिलाकर खाने से और हींग की जड़ का चूर्ण घाव भरने से भी नाड़ी का व्रण सूख जाता है।[2]

नेत्र रोग, गुल्म, दन्तकृमि, विविध ज्वर

श्वेत अपराजिता-पुष्प के रस नेत्रों में डालने से पलट नामक नेत्र रोग नष्ट हो जाता है। गोखुरू की जड़ चबाकर दाँतों में लगे हुए कीटों की व्यथा को दूर किया जा सकता है।

यदि ऋतुकाल में उपवास पूर्वक स्त्री गोदुग्घ के साथ मन्दार की जड़ को पीसकर पान करती है तो उसके शरीर में होने वाला गुल्म औरशूलविकार विनष्ट हो जाता है। पलाश की जड़ को हाथ में बाँधने से सभी प्रकार के ज्वरों का विनाश होता है। सुदर्शन वृक्ष की जड़ को माला में मध्य पिरोकर कण्ठ में धारण करने से त्याहिक (तिजरिया) आदि ज्वर समाप्त हो जाता है।[3]

---

1. गरुड़पुराण अध्याय 187।
2. गरुड़पुराण (अध्याय 188)।
3. गरुड़पुराण (अध्याय 189)।

गण्डमाला, प्लीहा, विद्रधि, कुष्ठ दद्रु आदि विविध रोगों का उपचार

गोमूत्र के साथ अपराजिता की जड़ पीने से गण्डमाला रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जिङ्गणी (मंजीठा) एरण्ड तथा शूक शिब्बी (केवाँच) को मिलाकर शीतल जलयुक्त लेप लगाने से भुजाओं में होने वाली व्यथा को दूर किया जा सकता है।

भैंस का मक्खन, अश्वगंधा, पिप्पली, वचा और दोनों प्रकार का कूट में मिलाकर बनाया गया लेप लिङ्गस्रोत तथा स्तनगत दुःखों का विनाशक है। कूट और नागबला के चूर्ण को मक्खन में मिलाकर सिद्ध किया गया लेप युवतियों के वक्षः स्थल को सुडौल ओज से सम्पन्न तथा सुन्दर बनाता है।

चावल के धोवन में श्वेत पुनर्नवा की जड़ पीसकर पीने से निश्चित ही विद्रधि रोग नष्ट हो जाता है। केले की जड़ गुड़ और घी मिलाकर अग्नि में पकाकर खाया जाय तो वह उदर जनित क्रिमियों को विनष्ट कर देता है।

प्रतिदिन प्रातःकाल आँवले और नीम की पत्तियों का चूर्ण भक्षण करने से कुष्ट रोग दूर हो जाता है। गोमूत्र से युक्त कूष्माण्ड (कुम्हड़ा) के नाल का क्षार और जल में पीसी गयी हल्दी को भैंस के गोबर में मिलाकर मंद-मंद आँच पर सिद्ध करना चाहिए, उसका उबटन लगाने से शरीर का सौन्दर्य बढ़ जाता है।

चूर्णों, काक जंघा, अर्जुन के पुष्प जामुन की पत्तियों तथा लोध्र-पुष्प - इन सभी को एक में मिलाकर पीस लेना चाहिए। इसका प्रतिदिन प्रयोग करने से शरीर की दुर्गन्ध दूर हो जाती है और वह मनोहर हो जाता है। प्रातःकाल गरम दूध की भाव से शरीर सेंक करने पर धर्मदोष (स्वेदाधिक्य) नष्ट हो जाता है।

मुलेठी शर्करा, अडूस का रस और मधु का सेवन करने से रक्त-पित्त, कमला और पाण्डु रोग का विनाश होता है। प्रातःकाल मात्र जल पीकर भयंकर पीनस रोग को दूर किया जा सकता है।

आयुर्वेदोक्त वृक्ष विज्ञान

गृह के उत्तर दिशा में प्लक्ष (पाकड़) पूर्व में वट (बरगद), दक्षिण में आम और पश्चिम में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष मंगल माना गया है। घर के समीप दक्षिण दिशा में काँटेदार वृक्ष भी शुभ है। आवास के आस-पास उद्यान अथवा पुष्पित तिलों से सुशोभित करें।[1]

वृक्षारोपड़ के लिए उत्तरा, स्वाती, हस्त तथा रोहिणी नक्षत्र अत्यन्त प्रशस्त है। उद्यान में पुष्करिणी (बावली) का निर्माण करावे,[2] वरुण, विष्णु और इन्द्र का पूजन करके इस कर्म को आरम्भ करे। नीम, अशोक, पुन्नांग (नागकेसर) शिरीष, प्रियंगु अशोक[3] कदली (केला) जम्बू (जामुन)वकुल और अनार वृक्षों का आरोपण करके ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल और सायंकल, शीत ऋतु दिन के समय एवं वर्षा ऋतु में रात्रि के समय भूमि के सूख जाने पर वृक्षों को सींचे।

फिर विडंग घृत और पङ्क-मिश्रित शीतल जल से उनको सींचे। वृक्षों के फलों का नाश होने पर कुलघी, उड़ग, मूँग, जौ, तिल और घृत से मिश्रित शीतल जल के द्वारा यदि

---

1. अग्निपुराण (अध्याय 282/1-2)
2. अग्निपुराण (अध्याय 282/3-4)
3. 282वें अध्याय में 6-7 दोनों श्लोक में अशोक वृक्ष का नाम है, पुनरुक्ति दोष नहीं है। अशोक श्वेत और रक्त दो प्रकार का होता है दोनों भवन के पास प्रशस्त है।

सेवन किया जाये तो वृक्षों में सदा फलों एवं पुष्पों की वृद्धि होती है।

मछली के जल (जिसमें मछली रहती हो) से सींचने पर वृक्षों की वृद्धि होती है। विडंग चावल के साथ यह जल वृक्षों का दोहद (अभिलषित-पदार्थ) है।

वनौषधि

गहन, कानन और वन- ये जंगल के बोधक है। कृत्रिम (लगाये हुए) वन को आराम या उपवन कहते हैं। यहीं कृत्रिम वन जो केवल राजा सहित अंतःपुर की रानियों के उपभोग में आता है वह **प्रभदवन** कहलाता है। जिसमें फूल लगकर फल लगते हों उस वृक्ष का नाम वानस्पत्य है तथा जिसमें बिना फूल के ही फल लगते हैं उस गुलर आदि वृक्ष को वनस्पति कहते हैं।

फलों के पकने पर जिनके पेड़ सूख जाते हैं उन धान, जौ आदि को **औषधि** कहा जाता है। पलाशी, द्रु, द्रुम और अगम - ये सभी वर्ग वृक्ष के अंतर्गत आते हैं। बोधिद्रुम और चलदल - ये पीपल के नाम है। दधित्य, ग्राही, मन्मथ, दंधिफल, पुष्पफल और दन्तशठ ये कपित्य (कैथ) के नाम है। हेमदुग्ध शब्द उदुम्बर (गूलर) तथा द्विपत्रक शब्द कोविदनार (कचनार) के अर्थ में आता है दन्तसठ-शब्द, जम्बीर (जमीरी नीबू) के अर्थ में आता है। पुनागस, पुरुष तुङ्ग केसर तथा देववल्लभ - ये नागकेसर के नाम है। गुडपुष्प और मधुद्रुम - ये मधूर (महुआ) के वाचक है। शिग्र, तीक्षण गन्धक का क्षीर मोचक - ये शोभांजन अर्थात सहिजन के नाम हैं। लाल फूल वाले सहिजन को मधुशिग्रु कहते हैं। शेलु, श्लेष्मातक शीत, उद्दाल और बहुवारक - ये सब लसोड़े के नाम है। तिन्दुक, स्फूर्जक और काल ये तेंदू वृक्ष के वाचक है। नदियी, भूमि जम्बुक ये नारंग अर्थात नारंगी के नाम है।

नदियाँ और भूमि-जम्बुक ये नागरंग अर्थात नारंगी के नाम है। पीलुक शब्द काकतिन्दुक अर्थात कुचिला के अर्थ में आता में भी आता है। सर्जक, असन, जीव और तीपसाल ये विजयसार के नाम है, सर्व और अश्वकर्ण - ये साल वृक्ष के वाचक है। इन्दुणी तपस्वियों का वृक्ष है इसलिए इसे तावस तरु भी कहते हैं। मोचा और सामलि ये सेमल के नाम है। गायत्री बाल तनय खदिट दन्त धावन मे खैरा नाम वृक्ष के वाचक है। तीपदारु, दारु देवदारु ओर पूतिकाष्ठ ये देवदारु के नाम हैं। अरिष्ठ पिचुमर्दक और सर्वत्तो भ्रद - ये निम्ब वृक्ष के वाचक हैं, शिरिष और कपीतन - ये शिरष वृक्ष के अर्थ में आते हैं। पिछिल्ला अगरु शिशिम्पा ये शीशम के अर्थ में आते हैं। जया जयन्ती और तर्रकारी ये जैतून वृक्ष के नाम हैं। वत्सक और गिरिमल्लिका में कुटज वृक्ष के अर्थ में आते हैं। लन्तुडली और अल्पमारिष ये चौराई के बोधक हैं। गणिका यूथिका और अम्बष्ठा - ये जूही के अर्थ में आते हैं अतिमुक्त और युण्ड्र- ये माधवीय लता के नाम हैं कुमारी तरणि और सहा - ये धृतकुमारी के वाचक हैं धुस्तूर कितव और धूर्त- ये धतूर के नाम हैं रूचक और मातुलुंग विजौरा नीबू के वाचक हैं। कुठेरक और पर्णास - ये तुलसी वृक्ष के पर्याय हैं। आस्फीत वसुक और अर्क (मदार) ये मदार के नाम हैं। शिवमल्ली और पाशुपति ये अगस्त्य वृक्ष के नाम हैं। गुडुची, तन्त्रिका अमृता सोमवल्ली और मधुपर्णी ये गुरुचि के वाचक हैं। मोरवा, मोरटी मधुलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपणीर - ये मोरवा नाम वाली लता के नाम हैं। पाठा, अम्वष्ठा बिद्धकर्णी प्राचीन वन वित्तिका - ये पाठा नाम के प्रसिद्ध लता के वाचक हैं। अपामार्ग शैखरिक प्रसक्पर्णी तथा मयूरक - ये अपामार (चिचिड़ा) का बोध कराने वाला है। मण्डूक पर्णी भण्डेरी समंगा और काल मेषिका में मजीठ के नाम हैं।

निर्दिग्धिका स्प्रीशी व्याघ्री छुद्रा और दुष्पर्शी ये भटकटैया के अर्थ में आते हैं।

कणाउष्णा और उपकुल्या - ये पिपली के बोधक हैं। चन्य और चविका-ये वचा के नाम है काकचिन्ची, गुन्जा कृष्ठाला-ये घुघुची के अर्थ में आते हैं। वन शृंगार और गोछुर-ये गोखुरु के वाचक हैं। सिंहास्य वासक वृष- ये अण्ड्स के अर्थ में आते हैं। मिसीमधुरिका और क्षत्रा मे वनसौंफ के वाचक हैं। वज्रदु स्नुक स्निही और सुधा ये सेहुण के अर्थ में आते हैं। मृद्विका गोस्तनी और द्राक्षा ये मुनक्का के नाम है। विदारी क्षीर शुक्ला इक्षुगंधा और या शिता - ये कुष्माण्ड के बोधक हैं। मोचारम्भा और कदली - ये केले के नाम हैं। भण्टाकी और दुष्प्रधर्पिणी - ये भाटे के अर्थ में आते हैं। ज्योत्सिनी पटोलिका और जाली ये तरोई के अर्थ में आते हैं। ताम्बुली तथा नागवल्ली ये ताम्बुल या वान के नाम हैं। कालानुसार्य, वृद्ध अश्मपुष्प शीतशिव और शैलेय में शिलाजीत के नाम के वाचक हैं। बला त्रिपुटा और त्रुटि-ये छोटी इलायची के वाचक हैं कुटन्नट दात्रपुर वानेय और परिपेलव ये मोथा के नाम हैं। तपस्विनी तथा जटामासी-जटामासी के अर्थ में आते हैं सतपुष्पा सितच्छत्रा, अचिच्छत्रा मधुरामिसी अवाक पुष्पी और कार्वी - ये सौंफ के नाम हैं। करबूर और सटी ये कचूर के अर्थ में आते हैं। पटोल कुलक तित्तक और पटु - ये परवल के नाम हैं। कारवेन्य और कटिल्क ये करैला के अर्थ में आते हैं। कटिल्क में करैला के अर्थ में आते हैं। कुष्माण्डक और कार्शरु में कोहड़ा के वाचक हैं इक्ष्वाकु तथा कुटतुम्बी में कड़वी लौकी के वाचक हैं। विशाला और इन्द्रावारुणी में तुम्वी नामक लता के नाम हैं। अशोन्ध्र सुरण और कन्द में सूरन या ओल के वाचक ताड़ के वृक्ष का नाम ताल और तृणराज है। घोटा क्रमुक तथा पूग- ये सुपारी के अर्थ में आते हैं।

सिद्धौषधानि

मृतकों को जीवत करने वाले सिद्ध योगों और सिद्ध मन्त्रों तथा मनुष्य अश्व एवं

हस्ती के रोगों को नष्ट करने को आयुर्वेद कहा है।[1]

ज्वराक्रान्त व्यक्ति के बल पर ध्यान रखते हुए उसे लङ्घन (उपवास) करवाये। तदन्तर उसे सोठ से युक्त लाल मण्ड (धान के लावे की माँड) तथा नागर मोथा, पित्त पापड़ा खस, लाल चन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ के साथ श्रृत (अधपक्क) जल को प्यास और ज्वार के लिए दें छः दिन बीत जाने के बाद चिरायता जैसे द्रव्यों का काढ़ा दें।[2]

ज्वर निकालने के लिए (आवश्यकता हो तो) स्नेहन (पसीना) करवाये। रोगी के वातादि जब शान्त हो जायँ तब विरेचन-द्रव्य देकर विरेचन कराना चाहिए साठी, तिली, लाल, अगहनी और प्रमोदक के तथा ऐसे ही अन्य धान्यों के पुराने चावल ज्वर में हितकर होते हैं। वय के बने (बिना भूसी के) पदार्थ भी लाभदायक होते हैं। मूंगा, मसूर, चना, कुल्थी, मोठ, अरहर, खेखशा, जायफर, उत्तम फल के सहित परवल, नीम की छाल पित्त पापड़ा एवं अनार भी ज्वर में लाभ दायक होते हैं।[3]

---

1. आयुर्वेदं प्रवक्ष्यामि सुश्राताय यमब्रवीत् ।
   देवो धन्वन्तरिः सारं मृतसंजीवनीकरम् ।। अग्निपुराण (अध्याय 279/1)

2. रक्षन्बलं हि ज्वरितं लङ्धितं योजयेद्भिषक्।
   सविश्रं लाजमण्डं तु वृड्ज्वरान्तं शृत जम् ।।
   मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
   षडहे च व्यातिक्रान्ते तिक्तकं पापयेद्ध्रुवम् ।।
   अग्निपुराण (अध्याय 279/3-4)

3. स्नेहयेत्त्यक्तदोषं तु ततस्तं च विरेचयेत् ।
   जीर्णाः षष्टिकनीवाररक्ताशालि प्रमोदकाः।।
   तद्विधास्ते ज्वरेण्विता यवानां विकृतिस्तथा।
   मृदूगा मसूराश्चाणकाः कुलत्थाश्च सकुष्ठकाः।।
   अग्निपुराण (अध्याय 279/5-7)

रक्तपित्त नामक रोग यदि अधोग (गुदा, लिंग, योनि) हो तो वमन हितकर होता है तथा उर्ध्वग (मुख, नासिका, अक्षिकर्ण) हो तो विरेचन लाभदायक है। इसमें बिना सोंठ के षडङ्ग (मुस्त पपर्टकोशीर चन्दनोदीच्य) - नागर मोथा, पित्त पापड़ा खस, चन्दन एवं सुगन्धबाला) ये बना क्वाथ देना चाहिए।[1] इस रोग में (जौकाः सत्तू, गेहूँ का आटा धान का लावा, जौ के बने विभिन्न पदार्थ, अगहनी धान का चावल मसूर, चना सोंठ खाने योग्य है। अतिसार पुराना अगहनी का चावल लाभदायक होता है।

गेहुँ धान का लावा, यव, शालि मसूर, मोथी चना, मूँग एवं गेहूँ का भोजन हितकर है। घृत एवं दुग्ध में अडूसे का स्वरस पाकर उसमें मधु मिलाकर पीने को दें।[2]

अतीसार में पुराना चावल खाने को दें एवं जो भी अन्न कब्जियत करने वाले न हों वह खाने को दें। गुल्म रोग में वायु से रक्षा करें।[3] कुष्ठ रोग में गेहूँ, चावल, मूँग, आँवला खैर और हरड़ पंचकोल, जंगली पशुओं का मांस, निम्ब, तीनों आँवले (पहाड़ी जमीन का और कलमी) परवलका पत्र, विजौरे नीम्बू का रस, काला जीरा, सूखी मूली, सैन्धव नामक खदि रोधक का काढ़ा अथवा खादिरारिष्ट देना चाहिए। भोजन में मसूर और मूँग का जूस, बासमती चावल का भात, निम्ब पत्र, पटोल पत्र का शाख जंगली पशु-

---

1. अधोगे वमनं शस्तमूर्ध्वगे च विरेचनम् ।
   रक्त पित्ते तथा पानं षडङ्गशुण्ठिवर्जितम् ।।
2. सक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमंसूरकाः।
   सकुण्ठचणका मुद्का भक्ष्या गोधमका हिताः।।
   साधिता घृतदुग्धाम्यां क्षौद्रं वृषरसो मधु ।।

   अग्निपुराण (अध्याय 279/9)
3. अतिसारे पुराणानां शालीना भक्षणं हितम् ।।
   अनभिण्यन्दि यच्चान्नं लोध्रवल्कलसंयुतम् ।
   मारूतं वर्जयेद्यत्नंः कार्यों गुल्मेषु सर्वथा।।

   अग्निपुराण (अध्याय 279/10-11)

पक्षियों का रस देना चाहिए। लेपन के लिए - वायविडंग, मरिच, नागरमोथा, कूट, लोध्र, हुरहुर, मैनसिल और वच को गोमूत्र का प्रयोग करें।[1]

प्रमेही को यव का अपूप पुआ बनाकर खिलावैं एवं यव के अन्य पदार्थ बनाकर खाने को दें। कूठ, कुथली का भी अनेक प्रकार से अपूप आदि बनाकर दें। बोजन में मूंग एवं कुथली की दाल, पुरानी शाली चावल का भात दें। हरे वित्त एवं कक्ष शाक खाने को दें। तिल, सहिजन, बहेड़ा एवं इंगुदी के तेल का प्रयोग करें। राजयक्ष्मा के रोगी को भोजन के लिए एक वर्ष का पुराना यव एवं गेहूँ की रोटी तथा मूँग की दाल दें। जंगली पशु एवं पक्षियों के माँस का रस भी दें।[2]

श्वास कास रोग में रोगी को भोजन के लिए कुथली, मूँग, सूखाबेर, सूखी मूली एवं जंगली पशु-पक्षियों के मांस से पुआ बना लें। उसे दधि में भिगो दे और उसमें अनार का रस, बिजौरे नींबू का रस, मधु, मुनक्का, सोंठ, मिर्च, पीपरि मात्रा के अनुसार मिला

---

1. गोधूमशालयो मुद्गगा ब्रह्मर्क्षखरिोडभया।
पंचकोलं जांगलाश्च निम्बधांयः पटोलकाः।।
'मातुलुङ्गरसाजाजिशुष्कमूलकसैन्धवा।
कुण्ठिनां च तथा शस्तं पानार्थे खरिदोदकम् ।।
मसूर मुद्गौ सूपार्थे भोज्या जीर्णाश्च शालयः।
निम्बपर्पटको शाकौ जाङ्गलानां तथा रसः।।
विडगं मरिचं मुस्तं कुण्ठं लोध्रं सुवर्चिका।
मनः शिला वचा लेपः कुण्ठहा मूत्रपेषितः।। अग्निपुराण (अध्याय 279/13-16)

2. अपूपकुण्ठकूल्माषयवाद्य मेहिनां हिताः।
यवान्नविकृतिर्मुद्गाः कुलत्था जीर्णशालयः।।
तिक्तरूक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि
तैलानि तिलशिग्रुकाविभीतकेङ्ग दानि च।।
मुद्गाः सयवगोधूमा धान्यं वर्षस्थितं च यत् ।
जांगलस्य रसः शस्तो भोजने राजयक्षिणाम् ।। अग्निपुराण (अध्याय 279/17-19)

दें। जवा, गेहूँ तथा वासमती चावल भी खाने को दें। श्वास एवं हिक्का रोग में रोगी को जो पेया मण्डभेद बनाकर या घृत पकाकर या काढ़ा बनाकर दें।[1]

शोध रोग वाले को भोजन के लिए, पुराना जवा, गेहूँ और बासमती चावल के सूखी मूली, कुथली, पुनर्नवा की जड़ तथा जंगली पशु पक्षियों के मांस रस से पका कर दें।[2]

बातरोगि के लिए पुराना जवा, गेहूँ तथा बासमती चावल का भात और जंगली पशु-पक्षियों का मांस रस भोजन के लिए दें। मूँग की दाल पकाकर उसमें आँवला, खजूर, मुनक्का और बेर डालकर दें। मधु, धृत, मट्ठा वक्रष्टि दुग्ध एवं नीम, पित्त, पापड़ा और अडूसा का निरन्तर सेवन करावें। हृदय रोग वाले को रोचक औषधि (जुलाब) दें।[3]

---

1. कुलत्थमुदूगकोलाधैः शुष्कमूलकजाङ्गलैः।
   पूपैर्वाविष्किरैः सिद्धैर्दधिदाडिमसाधितैः।।
   मातुलुङ्गरसोक्षैद्रद्राक्षात्योषादिसंस्कृतैः।
   यवगोधूमशाल्यत्रैर्भोजयेत्छवासकासिनम् ।।
   दशमूल बलारास्नाकुलत्तैरूपसाधिताः।
   पेया घृतरसक्वाथाः श्वासहिक्कानिवारणाः।।

   अग्निपुराण (अध्याय 279/20-22)

2. शुष्कमूलक कौलत्थमूलजाङ्गलजै रसैः।
   यवगोधूमशाल्यंत्र जीर्ण सोशीरमाचरेत् ।।
   शोथवान्स पथ्यां घादेद्धा गुडनागरम् ।
   तक्रंच चित्रकशचोभौ ग्रहणीरोगनाशनौ।।

   अग्निपुराण (अध्याय 279/23-24)

3. पुराणयवगोधूमशालयो जङ्गलो रसः।
   मुदगामलकखर्जूरमद्धीका वदराणि च।।
   मधु सर्पिः पयस्तकं निम्बपर्यटकौ वृषम।
   तक्रारिष्टाश्च शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम् ।।
   हृद्रोगिणो बिरेच्यास्तु पिप्पल्या (ल्यो) हिक्किनां हिताः।

   अग्निपुराण (अध्याय 279 /25-27)

मदात्यय रोग में, नगर मोथा, सोंचर और कालाजीरा मिलाकर मद्य हीं दें।[1]

अर्श (बवासीर) के रोगी को जवा के बने विभिन्न प्रकार के आहार मांस रस के साथ दें। हुरहुर के पत्ते का शाक खिलावें। कचूर एवं हरड़ का चूर्ण मंड से तथा मट्ठे से जल के साथ दें।[2]

धान का लावा, सतुआ, मधु, हल्का मांस, फालसा, मोटा लावा, पक्षी का मांस, मयूर का मांस और पना ये सब वमन रोग के नाशक हैं।[3]

विसर्थ रोग वाले को चाहिए कि पुराने गेहूँ का जवा की रोटी बासमती चावल का भात, मूंग अरहर मंसूर की दाल में सेन्धा नमक घृत, सोठ मुनक्का, आमला और बेर को डालकर भोजन करें सेंधा नमक से लेकर ये सब चीजें तथा तिल जंगली पशु पक्षियों के मांस रस में डालकर आहार भोजन करें।

वात रोग को नाश करने के लिए मिश्री, मधु, मुनक्का, अनार को जल में घोलकर पीये। लाल, चावल, साठी का चावल गेहूँ जौ की रोटी भोजन करें, मूँग की दाल दें जो भी घूल

---

1. मुस्ता सौवर्चलाडजाजी मद्यं शस्तं मदात्यये।
सक्षौद्रपयसा लाक्षां पिवेच्च क्षतवावरः।। अग्निपुराण (अध्याय 279/28)

2. यवात्र विकृतिर्मांसं शाकं सौवर्चलं शटी।
पथ्या तथैवार्शसां यन्मण्डस्तकं च वारिणा।।
मूत्रकृच्छे च शस्ताः स्युः पाने मण्डसुरादयंः।।
अग्निपुराण (अध्याय 279/30-32)

3. लाजाः सक्तुस्तथा क्षौद्रं शून्यं मांसं परुषकम् ।
वार्ताकुलाव शिखिनश्छर्दिघ्राः पानकानि च।।
शाल्यत्र तोपपयसी केवलोष्णे शृतेऽपि व।
तृष्णाघ्ने मुस्तगुड़योर्गुटिका वा मखे धृता।।
अग्निपुराण (अध्याय 279/33-34)

आहार हो उसे दें। मकोप वेत के अग्रभाग के पते, बथुआ और हुरहुर के पत्ते का साग दे। जल में मधु मिश्री मिलाकर दे। नासा रोग में दुर्वादि घृत का नस्य लें।

मंगरैया के रस में अथवा आँवले के रस में पकाया तेल सम्पूर्ण मस्तिष्क के रोगों में तथा कृति जन्य रोगों में लाभकारी होता है। ठण्डे जल पीने से ठण्डे ही अन्य पान करने से एवं तिलों के विशेष भक्षण से दाँत दृढ़ हो जाते हैं एवं सन्तुष्टि अधिक मिलती है। तिल के तैल से गंडूष (कुल्ला) लेने से दाँत अत्यन्त दृढ़ हो जाते हैं। जहाँ कृमिनाश करना हो वहाँ विडड्ग चूर्ण तथा गोमूत्र का प्रयोग खाने-पीने के लिए तथा लेप के लिए भी प्रयोग करना चाहिए।

शिरोरोग के विनाश के लिए स्निग्ध एवं उष्ण भोजन करें सिर पर आँवला का लेप अथवा का लेप उत्तम होता है। कर्णशूल में तैल या बकरे का मूत्र कान में डाले अथवा शुक्ति (सिरका) कान में डालें।[1]

श्वित्र (सफेद कोढ) को दूर करने के लिए गेरू, लाल चन्दन, लाही और मालती के पुष्प की कली इन सब को पीसकर बत्ती बना लें उसे समय पर घिसकर लगाने पर सम्पूर्ण रिक्त नष्ट हो जाते हैं।[2]

प्योस (सोठ, मिर्च और पिपरी) त्रिफला (आँवला हरड़ और बहेड़ा) तुतिया और रंसाजन को जल से वारीकि पीसकर आँख में अंजन लगाने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट

---

1. अग्निपुराण (अध्याय 279/17-19)
2. धात्रीफलान्यथाऽडज्य च शिरोलेपनमुत्तमम् ।
शिरोगविनाशाय स्निग्धमुष्ण च भोजनम् ।।
तैलं वा बस्तमूत्रं च कर्णपूरणमुत्तमम् ।
कर्णशूलविनाशाय सर्वशुक्तिानि वाँ द्विज।।
गिरिमृच्चन्दंन लाक्षा मालतीकलिका तथा।
संयोज्य या कृता वर्तिः क्षतश्रिबहरी तुसा।। अग्निपुराण (अध्याय 279/43-45)

हो जाते हैं। लोध की घी में भूनकर कांजी और सेंधा नमक से पीसकर आंख में लगाने पर नेत्र के सभी रोग दूर हो जाते हैं। गेरु चन्दन को घिसकर नेत्र के ऊपर लेप करने से नेत्र में अधिक लाभ होता है तथा निरन्तर त्रिफला के सेवन से नेत्ररोग दूर हो जाता है।[1]

जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति रात्रि में मधु और घृत को (असमान मात्रा में) खावें तो आयु लम्बी हो जाती है।

इसी तरह सतावरी के रस में घृत या दुग्ध पका कर पीने से वह घृत वृष्य हो जाता है। (मैथुन की शक्ति बढ़ जाती है) केवाँच का बीज, उदड़ दूध और घृत वृख्य कहे जाते हैं। मुलहठी मिलाकर त्रिफला के का निरतर सेवन पूर्व के कहे की भाँति आयुवर्धक है। मुलहठी के रस के साथ त्रिफला का सेवन करने से चमड़े पर ही झुर्रियाँ और बाल का सफेद हो जाना दूर हो जाता है। वच औषधि से घृत पकाकर सेवन करने से विशेष रोगों का नाश हो जाता है। घृत बुद्धिप्रद है और अनेक अर्थों का साधन है। बला के कल्क और काढ़े से सिद्ध घृत आँख में अभ्यंजन के लिए हितकारी है।[2]

---

1. व्योषं त्रिफलया युक्तं तुत्थकं च तथा जलम् ।
   सर्वाक्षिरोगसमन तथा चैव रसाउजनम् ।।
   आश्व्योतन विनाशाय सर्वनेत्रामये हितम् ।।
   गिरिमृच्चन्दनैर्लेयो वहिर्नेत्रस् शस्यते।
   गिरीमृच्चः नेत्रामयविधातर्तथि त्रिफला शीलयेत्सदा।। अग्निपुराण (अध्याय 279/46-48)
2. रात्रौ तु मधुसपिर्भ्या दीर्घमायुर्जिजीविषुः।
   शतावरीरसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीरघृतौ स्मृतौ।।
   खलविकृानि माषाश्च वृण्यौ क्षीरघृतौ तथा।
   आयुष्या त्रिफला ज्ञेया पूर्ववनमधुकाविता।।
   मधुकादिरसोपेता बलीपलितनाशिनी।
   वचा सिद्धघृतंम विप्र भूतदोषविनाशनम् ।।
   कव्यं बुद्धिप्तदं चैव तथा सर्वार्थसाधनम् ।
   वलाकल्ककषायेण सिद्धमभ्यञजने हितम् ।। अग्निपुराण 279/49-52

रास्ना और कटसरैया द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल सम्पूर्ण वात-व्याधियों को दूर करने वाला है। जो अन्य काब्जियत लाने वाला न हो उसे फोड़े वाले रोगी को देना चाहिए। व्रण फोड़ा को पकाने के लिए सत्तू का पिण्ड जो कांजी से सान कर बना हो वह हितकर है। पके फोड़े के सेवन के लिए और घाव को भरने के लिए नीम का चूर्ण (नीम के वल्कल का चूर्ण) हितकारी है।[1]

उसी तरह सूई के द्वारा उपचार करे (सूची बेध करे) विशेषरूप में (बलिकर्म का अर्थ है कि भोजन का) कुछ भाग देवो तथा पितरो आदि के नाम पर निकाल कर बाहर रख दें जिसे कौए, कुत्ते आदि खा जाते हैं इसी प्रकार सूतिका स्त्री (बच्चा पैदा होने 1 मास तक के प्रायः बच्चों की माँ को सूतिका कहते हैं। का भी जीवाणुओं से सदा रक्षा करनी चाहिए। यह रक्षा हितकारी होता है।[2]

नीम के पत्रों का चबाना साँप के काटे की दवा है। बाल को काले करने के लिए झड़ने के बचाने के लिए नीम के पत्ते को एक में महीन पीस कर लेप करें। इसी तरह पुराना तेल और घृत तथा जवा भी केश के हितकारी है। बिच्छू के काटने पर मयूरपत्ती और घृत का धूप देना चाहिए तथा मदार के दूध के पलाश का बीआ पीस कर लेप करें।[3]

---

1. रास्नासहचरैर्वादपि तैलं वात विकारिणाम् ।
अनभिष्यन्दि यच्चात्रं तदव्रणेषु प्रशस्यते।।
सक्तुपिण्डी तथैवाड़म्ला पाचनाय प्रशस्यते।
पक्वस्य च तथा भेदे निम्बचूर्णा च रोपणे।। अग्निपुराण 279/53-54।

2 तथा सूच्युपचारश्च बलिकर्म विशेषतः।
सूतिका च तथा रक्षा प्राणिनां तु सदा हिता।। अग्निपुराण (अध्याय 279/55)

3. भक्षणं निम्बपत्राणां सर्पदष्टस्य भेषजम् ।
तालिम्बिदल केश्य जीर्ण वैलं यवा घृतम् ।।
धूपो वृश्चिकदष्टस्य शिखिपत्रघृतेन वा।
अर्कक्षीरेण संपिष्ट लेपोबीजं पलाशणम् ।। अग्निपुराण (अध्याय 279/56-57)

लिए वमनहितकारी। इसीतरह वायु शान्त करने के लिए तेल, पित्त शान्त के लिए घृत और श्लेष्मा शान्त करने के लिए मधु सर्वोत्तम औषधि है।[1]

सर्वरोगहराण्योषधानि

शारीरिक, मानसिक, आगन्तुक तथा सहज व्याधियाँ होती हैं। ज्वर कुष्ठ आदि शारीरिक और क्रोध आदि मानस व्याधि कही जाती है। चोर प्रहार या अन्य किसी प्रकार के बाह्य अभिघात के कारण जो व्याधि होती है। उसे आगन्तुक व्याधि कहते हैं। भूख, जरा (बुढ़ापा) आदि व्याधियाँ स्वाभाविक व्याधि कही जाती है।[2]

शारीरा एवं आगन्तुक व्याधियों के नाश के लिए रविवार के दिन घृत गुड़ और सोना का ब्राह्मण की पूजा करके उसे दान दें।[3]

उष्ण जल से स्नान करने पर शरीर की थकावट दर कम हो जाती है। हृदय से श्वास के वेग को न धारण करें। व्यायाम से कफ तथा मर्दन से वायु का नाश होता है। स्नान से पित्त शान्त होता है। स्नान के बाद धूप प्रिय लगती है। घूपसेवन कठिन श्रमं आदि के पूर्व में ही व्यायाम करना श्रेष्ठ होता है।[4]

---

1. त्रिवृद्धि रेचने श्रेष्ठा वमने मदनं तथा।
वस्तिविरेको वमनं तैलं सर्पिस्तथा मधु।
वातपित्तबलाशानां क्रमणे परमौषधम् ।। अग्निपुराण (अध्याय 279/63)
2. शारीरमानसागन्तुसहजा व्याधयोमताः।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्याः क्रोधाद्या मानसा मताः।।
आगन्तवो विधातोत्था सहजा क्षुज्जरादय।। अग्निपुराण (अध्याय 280/1)
3. शारीरागन्तुनाशय सूर्यवारे घृतं गुड़्म ।। अग्निपुराण (अध्याय 280/2)
4. स्नान पित्ताधिकं हनयातस्यान्ते चाऽऽतपाः प्रियाः।
आतपक्लेशकर्माऽऽदौ क्षेमत्यायाम उत्तरः।। अग्निपुराण (अध्याय 280/3)

वृक्षायुर्वेद

वृक्षायुर्वेद को कहूँगा। पाखरि (पाकरि) उत्तर दिशा में पूर्व में बरगत, दक्षिण में आम्र और पश्चिम में पीपर शुभ है।[1]

दक्षिण में काटे वाले वृक्ष (बबूर बेर आदि) समीप शुभ है। ग्रह के पास उद्यान होना चाहिए। उद्यान में तिल होना चाहिए या फूल वाले वृक्षों का रोपण करना चाहिए। रोपड़ के पूर्व ब्राह्मण और चन्द्रमा की पूजा कर ले। वृक्षों के आरोपणों ध्रव (तीनों उत्तरा रोहणी, रेवती) अभिजित् (यह मुहूर्त का नाम है दोपहर को नित्य आता है) हस्त पूर्वाषाढ शतभिष मूल नक्षत्रों में करना चाहिए। उद्यान में नदी-नदी के प्रवाह का प्रवेश करावे अथवा एक बावली बनवा दे।[2]

पुष्करणी (जलाशय) बनवाने के लिए हस्त, मघा, अनुराधा, अश्विनी, पुष्य, घनिष्ठा, शतमिषा और तीनों उत्तरा उत्तम माने जाते हैं। जलाशल बनवाने से पूर्व वरूण विष्णु और पर्जन्य की पूजा करे तब कार्य प्रारम्भ करें। नीम, अशोक कोपारी, शिरीप, प्रियंगु, कदली (केरा) जामुन वकुल और अनार के वृक्ष लगाये। वर्षा के प्रारम्भ में सांयकाल

---

1. वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोतरतः शुभः।
   प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम् आप्येऽश्वत्थः क्रमेण तुष।।

अग्निपुराण (अध्याय 282/1)

1. दक्षिणां दिशमुत्पत्रा समीपे कण्टकद्रुमाः।
   उद्यान गृहवासे स्यात्तिलान्वाऽथ पुष्पिान् ।।
   ग्रह्णीयाद्रोपयेदवृक्षाद्विजं चन्द्रं प्रपूज्य च।
   ध्रुवाणि पञ्च वायत्यं हस्तं प्राजेशवैष्णवम् ।।
   नक्षत्राणि तथा मूलं शस्यन्ते द्रुमरोपड़े।
   प्रवेशयेत्रदीवाहन्पुष्करिण्यां तु कारेत् ।।

अग्निपुराण (अध्याय 282/2-4)

और प्रातःकाल वृक्षों का आरोपण करें और शीतकाल में दिन के अन्त में वृक्षारोपण उत्तम होता है। वर्षाकाल में रात्रि में वृक्ष लगाना उत्तम है। पृथ्वी के सूखे जाने पर वृक्ष को सींचना चाहिए।[1]

वृक्षों का एक से दूसरे से अन्तर बीस हाथ पर उत्तम माना जाता है सोलह हाथ का अन्तर है, एवं बारह हाथ का अन्तर अधम माना जाता है। क्योंकि घनों वृक्षों में फल नहीं लगता है वृक्षों के आरोपण के लिए पहले शस्त्र से जमीन पर गड्ढा बनाकर उसकी शुद्धी कर लें।[2]

जिस गढ्डे में वृक्ष लगाया जाय उसे जल से भर दे और उसमें वायाडिंग का चूर्ण घृत से लपेट कर छोड़ दे इससे भूमि शुद्धि हो जाती है। जिस वृक्ष का फल लगकर झड़ जाता है उसकी जड़ में कुलथी उदड़, मूंग, तिल और यव के चूर्ण में मिश्रित शीतलजल से सिंचन करे तो सदा पुष्प और फल लदा रहेगा। इसी तरह भेड़ बकरी लेड़ी का चूर्ण जवा का चूर्ण और तिलका चूर्ण घृत से सान कर शीतल जल में मिला दें और

---

1. हस्तौ मघा तथा मैत्रमाघ पुष्यं सवासवम् ।
   जलाशयसमारम्भे वारुणं चोत्तरात्रयम् ।।
   सम्पूर्ण वरुणां विष्णुं पर्जन्य तत्समाचरेत।
   अरिष्टाशोकपुं नागशिरीषाः सप्रिंगवः।।
   अशोकः कदली जम्बुतथा बकुलदाडिमाः।
   सां प्रातस्तु धर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे।।
   वर्षारात्री भुवः सेक्तत्या रोपिता द्रुमाः।।

   अग्निपुराण (अध्याय 282/5-7)

2. उत्तमा विशतिर्हस्वा मध्यमाः षोढशान्तराः।।
   स्थानात्स्थानान्तरं कार्य वृक्षाणां द्वादशावरम् ।
   विफलाः स्युर्घना वृक्षाः शस्त्रेणाऽऽदी हिशोधनम् ।।

   अग्निपुराण (अध्याय 282/8-9)

उसमें वृक्ष को सींचने से फल लगते हैं।[1]

सात रात्रि तक जल में गोमांस रख दे और उसमें वृक्ष को सींचने से वृक्ष पुष्प फल से लदे रहते हैं। मछली के धोवन (जल) से सींचने पर वृक्षों का दोहद है (गर्भित होते हैं) और सामान्य रूप से सभी वृक्षों के रोगों को नष्ट करने वाला है।[2]

नानारोग हराण्योषधानि

व्याघ्री, कचूर, हरदी, दारू हरदी तथा इन्द्रजव का काढ़ा माता के दूध के दोष से उत्पन्य बच्चों के सब प्रकार के अतिसार को दूर करता है।

काकड़ासिगी पीपरि और अतिस को बराबर की मात्रा में लेकर चूर्ण बना लें उसमें से मात्रा के अनुसार चूर्ण को मधू से बालक को चटाने पर सभी अतिसार दूर हो जाते हैं। (इसकी मात्रा 1-6 माशे तक बल के अनुसार है) केवल अतीस ही अकेला बच्चों के कास वमन और ज्वर का नाशक है।[3]

---

1. विडङ्गघृतपङ्काक्तान्सेचययेच्छीतवारिणा।
फलनाशे कुलत्यैश्च माषैमुर्गदैर्यवौर्स्तलैः।।
घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा।
अविकाजराकृच्चूर्ण घवचूर्णातिलानि च।। अग्निपुराण (अध्याय 282/10-11)

2. गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ।
उत्सेक सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः।।
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिभर्वति शार्जिनः।
विडङ्गतणडुलोपेतं मात्यं मांसा हि दोहदम् ।।
सर्वेषाम विशेषेण वृक्षाणां रोगमदर्नम ।। अग्निपुराण (अध्याय 282/12-14)

3. सिही शटी निशायुग्मं वत्सकं क्वाथसेवनम् ।
शिशोः सर्वातिसारेषु स्तन्यदोषेषु शस्यते।। अग्निपुराण (अध्याय 283/1)
शङ्गी सकृष्णातिथिविषां चूर्णितां मधुनालिहेन।
एकाचातिविषा काशश्छादिज्वरहरी शिशोः।। अग्निपुराण (अध्याय 283/2)

बच्चों को चाहिए कि बच के सेवन घृत और दुग्ध के साथ करें या कड़वे तेल के साथ सेवन करें अथवा मुलहठी या शंखपुष्पी दुग्ध के साथ हो तो बच्चे की वाणी स्वरूप आयुवृद्धि और श्री की वृद्धि हो जाती है। वच अग्नि शिखा अडूस, सोठ, पीपरि, हरदी ओषधि को मुलहठी और सैन्धवचूर्ण के साथ बालक प्रातःकाल जल से ले तो वृद्धि की वृद्धि होती है।[1]

---

1. वालेः सेत्या वचा साज्या सदुग्धा वाऽथ तैलयुक।
   याष्टिका शंखुपुष्पी वा बालः क्षीराविन्तां पिवेत् ।।
   वाग्रपसंयधुक्तायुमैधा श्रीर्वर्धते शिशोः।
   वचा ह्यग्निशिखा वासाशुण्ठी कृष्णाशिागदम् ।।
   सयष्टिसैन्धवं बालः प्रातमेघाकरं पिवेत।
   देवदारूसघशिग्रुफलत्रयपयोमुचाम् ।।
   क्वाः सकृष्णामृदवीकाकल्कः सर्वान्कृमीन्हरेत् ।।

अग्निपुराण (अध्याय 283/3-5)

आठवाँ अध्याय

पर्यावरण एवं अन्त्येष्टि

पर्यावरण एवं अन्त्येष्टि

मृत्यु के उपरान्त मानव को क्या होता है? यह एक ऐसा प्रश्न है जो आदिकाल से ज्यो-का-त्यों चला आया हैः यह एक ऐसा रहस्य है जिसका भेदन आज-तक संभव नहीं हो सका। आदिकालीन भारतीयों, मिस्रियों, चाल्डियनों, यूनानियों एवं पारसीयों के समक्ष यह प्रश्न एक महत्वपूर्ण जिज्ञासा एवं ससमस्या के रूप में विद्यमान रहा है। मानव के भविष्य इस पृथिवी के उपरान्त उसके स्वरूप एवं इस विश्व के अन्त के विषय में भाँति-भाँति के मत प्रकाशित किये जाते हैं। जो महत्वपूर्ण एवं मनोरम है। प्रत्येक धर्म में इसके विषय में पृथक दृष्टिकोण रहा है। मृत्यु के उपरान्त व्यक्ति की यिनति, आत्मा की अमरता, पाप एवं दण्ड तथा स्वर्ग एवं नरक के विषय की चर्चा से और दूसरे का संबंध है अखिल ब्रह्माण्ड, उसकी सृष्टि परिणति एवं उद्धार तथा सभी वस्तुओं के परम अन्त के विषय की चर्चा से। प्राचीन ग्रन्थों में प्रथम स्वरूप पर ही अधिक बल दिया गया है। किन्तु आजकल वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले लोग बहुघधा दूसरे स्वरूप पर ही अधिक सोचते हैं।

सामान्यतः मृत्यु विलक्षण एवं भयावह समझी जाती है; यद्यपि कुछ दार्शनिक मनोवृत्ति वाले व्यक्ति इसे मंगलप्रद एवं शरीररूपी बन्दी गृह में आत्मा की मुक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं। मृत्यु का भय बहुतों को होता है। किन्तु यह भय ऐसा नहीं है कि उस समय अर्थात मरण काल के समय की सम्भआवित पीड़ा से वे आक्रान्त होते हैं, प्रत्युत उनका भय उस रहस्य से है जो मृत्यु के उपरान्त की घटनाओं से संबंधित है तथा उनका भय उन भावनाओं से है जिनका गम्भीर निर्देश जीवनोपरान्त सम्भावित एवं अचिन्त्य परिणामों के उपभोग की ओर है।

मृत्यु के विषय में आदिमकाल से लेकर सभ्य अवस्था तक के लोगों में भाँति की

धारणाएँ रही हैं। कठोरनिषद् (1/1/20) में आया है - 'जब मनुष्य मरता है तो एक सन्देह उत्पन्न होता है, कुछ लोगों के मत से मृत्युपरान्त जीवात्मा की सत्ता रहती है।[1] किन्तु कुछ लोग ऐसा नहीं मानते।' नचिकेता ने इस भ्रम को दूर करने के लिए यम से प्रार्थना की है। मृत्युपरान्त जीवात्मा का अस्तित्व मानने वालों में कई प्रकार की धारणायें पायी जाती हैं।[2] कुछ लोगों का विश्वास है कि मृतों का एक लोग जहाँ मृत्यूपरान्त जो कुछ बचा रहता है वह जाता है। कुछ लोगों की धारणा है कि सुकृत्यों एवं दुष्कृत्यों के फलस्वरूप शरीर के अतिरिक्त प्राणी विद्यमानांश क्रम से स्वर्ग एवं नरक में जाता है। कुछ लोग आवागमन एवं पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं।

ब्रह्मापुराण (214/34-39) ने ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिन्हें मृत्यु सुखद एवं सरल प्रतीत होती है; न कि पीड़ाजनक एवं चिन्तायुक्त है।[3] वह कुछ यों है - जो झूठ नहीं बोलता, जो मित्र या स्नेही के प्रति कृघ्नन नहीं है जो आस्तिक है, जो देवपूजा-परायण है और ब्राह्माणों का सम्मान करता है तथा जो किसी से ईर्ष्या नहीं करता वह सुखद मृत्यु पाता है।

वायु पुराण (19/1-32), मार्कण्डेयपुराण (43/1-33) या (40/1-33), लिंगपुराण (पूर्वाध, अध्याय 91) आदि पुराणों में मृत्यु के आगमन के संकेतों एवं चिन्हों की लम्बी-लम्बी सूचियाँ मिलती हैं। जब अंगुलियों से बन्द करने पर कानों में स्वर की धमक नहीं ज्ञात होती या आँख में प्रकाश नहीं दीखता तो समझना चाहिए कि मृत्यु आने ही वाली है। अन्तिम दो लक्षणों को वायुपुराण (18/28) एवं लिंगपुराण (युवार्ध 91/24) ने सबसे बुरा माना है।[4]

जब यजमान के मरने का भय हो जाय तो यज्ञशाला में पृथिवी पर बालू बिझा देनी चाहिए और इस पर दर्भ फैला देना चाहिए जिनकी नोक दक्षिण की ओर होती है, मरणासन्न दायें

---

1. कठोनिषद् (1/1/20)।
2. सी.ई. वुल्लियामी का इम्मार्टल मैन, पृष्ठ -11।
3. ब्रह्मापुराण (214/34-39)।
4. द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूपं परं भवेत् । घोषं न श्रृषुयात्कर्णे ज्योतिनेत्रे न पश्यति ।। वायुपुराण (19/7) नग्नं व श्रमणं दृष्टवा विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्। लिंगपुराण (पूर्व भाग 91/19)।

कान में आयुषः प्राणं सन्तनु' से आरम्भ होने वाले अनुवाक का पाठ (पुत्र या किसी अन्य संबंधी द्वारा) होना चाहिए।

जब कोई व्यक्ति मृतप्राय हो जाय, उसकी आँखे बन्द हो जाय वह खाट के नीचे उतार दिया गया हो, उसके पुत्र या किसी संबंधी को चाहिए कि निम्न प्रकार कोई एक या सभी प्रकार के दस दान करायें - गौ, भूमि, तिल, सोना, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, रजत (चाँदी) एवं नमक।[1] ये दान गया श्राद्ध या सैकड़ों अश्वमेघों से बढ़कर है। संकल्प इस प्रकार का होता है - 'अभ्युदय (स्वर्ग) की या पापमोचन के लिए मैं दस दान करूँगा' दस दानों के उपरान्त उत्कान्ति-धेनु (मृत्यु को ध्यान में रखकर बछड़े के साथ गौ) दी जाती हैं और इसके उपरान्त वैतरणी का दान दिया जाता है।[2] मरणासन्न व्यक्ति को स्नान द्वारा या पवित्र जल से मार्जन करके या गंगाजल पिला कर पवित्र करता है स्वयं स्नान संध्या से पवित्र हो लेता है, द्वीत जलाता है, गणेश एवं विष्णु की पूजा करता है। मरणासन्न व्यक्ति को या पुत्र को या सम्बन्धी को सर्वप्रायश्चित करना पड़ता है। वह क्षौर कर्म करके स्नान करता है, पंचगव्य पीता है, चन्दन लेप एवं अन्य पदार्थों से एक ब्राह्मण को सम्मानित करता है, गो पूजा करके या उसके स्थान पर दिये जाने वाले धन की पूजा करके संचित पापों की ओर संकेत करता है और बछड़ा सहित एक गौ का दान या उसके स्थान पर धन का दान करता है।

गरुड़ पुराण (2/4/7-9) ने महादान संज्ञक अन्य दोनों की व्यवस्था दी है, यथा - तिल, सोना, लोहा रूई सात प्रकार के अन्न,भूमि, गौ; कुछ अन्य दान भी है यथा - छाता, चन्दन, अँगूठी, जलपात्र, आसन, भोजन जिन्हें पददान कहा जाता है।[3] गरूड़ पुराण (2/4/36) के मत से यदि मरणासन्न आतुर संयास के नियमों के अनुसार संयास ग्रहण कर लेता है तो वह

---

1. गरुड़ पुराण (प्रेत खण्ड 4/4)।
2. गरुड़ पुराण (प्रेत खण्ड 4/6) में आया है - नदी वैतरणी ततुं दद्याद्वैतरणी च गाम् । कृष्ण स्तनी सकृष्णाङ्गी सा वै वैतरणी स्मृता ।। और स्कन्द पुराण (6/22/32-33) जहाँ वैतरणी की चर्चा है, मृत्युकाले प्रयच्छन्ति में धेनुं ब्राह्मणाय वै। तस्याः पुच्छं समाश्रित्य ते तरन्ति च तां नृप।।
3. गरुड़ पुराण (2/4/7-9)।

आवागमन (जन्मरण) से छुटकारा पा जाता है।[1]

आदिकाल से ही ऐसा विश्वास रहा है कि मरते समय व्यक्ति जो विचार रखता है, उसी के अनुसार दैहिक जीवन के उपरान्त उसका जीवात्मा आक्रान्त होता है (अन्ते या मतिः सागतिः) अतः मृत्यु के समय व्यक्ति को सांसारिक मोहमाया छोड़कर हरि या शिव का स्मरण करना चाहिए।[2]

पुराणों के आधार पर कुछ निबन्धों का ऐसा कथन है कि अन्तकाल उपस्थित होने पर व्यक्ति को यदि सम्भव हो तो किसी तीर्थ स्थान (यथा गंगा) में ले जाना चाहिए। शुद्धि तत्व (पृ॰ 299) ने कुर्म पुराण को उदघृत किया है - गंगा के जल में, वाराणसी के स्थल या जल में, गंगासागर में या उसकी भूमि, जल या अंतरिक्ष में मरने से व्यक्ति मोक्ष (संसार से अंतिम छुटकारा पाता है।)[3]

स्कन्दपुराण में आया है - गंगा के तटों से एक गत्यति (दो कोस) तक क्षेत्र (पवित्र स्थल) होता है, इतनी दूर तक दान, जप एवं होम करने से गंगा का ही फल प्राप्त होता है जो इस क्षेत्र में मरता है वह स्वर्ग जाता है वह पुनः जन्म नहीं पाता।[4]

यदि कोई अनार्य देश (कीकट) में भी शालग्राम से एक कोश की दूरी पर भी मरता है वह बैकुण्ठ (विष्णु लोक) पाता है।[5] इसी प्रकार जो व्यक्ति तुलसी के वन में मरता है या मरते समय जिसके मुख में तुलसीदल रहता है वह करोड़ों पाप करने पर भी मोक्ष प्राप्त करता है।[6]

---

1. गरुड़ पुराण (2/4/37)।
2. पद्म पुराण (547/262) - 'मरणे या मतिः पुंसां गतिर्भवति तादृशी।'
3. कूर्म पुराणम् - गंगायां च जले मोक्षो वारानस्यां जले स्थले। जले स्थले चान्तरिक्षे गंगासागरसंगमे ।।
4. स्कन्द पुराण
5. लिंग पुराण- शालग्रामसमीपे तु क्रोशमात्रं समन्ततः। कीकटेपिमृतो याति बैकुन्ठ भवनं नरः।।
6. वैष्णवामृते व्यासः-तुलसी कानने जन्तोर्यति मृत्युर्भवेत् क्वचित् । स निर्भत्स्यं नरं पापी लीलयैव हरि विशेत् ।। प्रयाणकाले यस्यास्ये दीयते तुलसीदलम् । निर्वाणं याति पक्षीन्द्र पापकोटियुतोपि सः ।।

अग्नि ज्योति, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण सूर्य के छः मास; जब ब्रह्मज्ञानी इन कालों में मरते हैं तो ब्रह्मलोक जाते हैं। धूम,रात्रि, कृष्ण पक्ष, दक्षिणायन सूर्य के छः मासों में मरने वाले भक्तगण चन्द्रलोक में जाते हैं और पुनः लौट आते हैं।

अन्त्येष्टि एक संस्कार है। यह द्विजों द्वारा किये जाने वाले सोलह या इससे अधिक संस्कारो में से एक है।

ऋग्वेद (90/16) -

(1) "हे अग्नि। इस (मृत व्यक्ति) को न जलाओँ चतुर्दिक इसे न झुलाओ, इसके चर्म (के भागों को) इतस्ततः न फेंको; हे जातदेवा (अग्नि) ! जब तुम इसे भली प्रकार जला तो तो इसे (मृत को) पितरों के यहाँ भेद दो।

(2) हे जातवेदा! जब तुम इसे पूर्णरूपेण जला लो तो इसे पितरों के अधीन कर दो। जब यह (मृत व्यक्ति) उस मार्ग का अनुसरण करता है जो इसे (नव)जीवन की ओर ले जाता है, तो यह वह हो जाय जो देवों की अभिलाषाओं को ढोता है।

(3) तुम्हारी आँखों सूर्य की ओर जायें तुम्हारी सांस हवा की ओर जाय और तुम अपने गुणों के कारण स्वर्ग या पृथिवी को जाओ या तुम जल में जाओ यदि तुम्हें वहाँ आनन्द मिले (या यदि तुम्हारा यही भाग्य हो तो) अपने सारे अंगों के साथ तुम औषधियों (जड़ी-बूटिओं) में विराजमान होओ!

(4) हे अग्नि, (इस मृत को) पितरों की ओर छोड़ दो, यह जो तुम्हें अर्पित है, चारो ओर घूम रहा है। हे जातदेवा यह (नव) जीवन ग्रहण करें और अपने हत्यों को बढ़ायें तथा एक नवीन (बायव्य)शरीर से युक्त हो जाय।

(5) हे अग्नि तुम उस जल को जिसे तुमने शवदाह में जलाया, (जल से) बुझा दो। कियाम्बु (पौधा) यहाँ उगे और दूर्वाघास अपने अंकुरों को फैला हुई यहाँ उगे।[1]

---

1. ऋग्वेद - (10/16)।

सोमयज्ञ या सत्र के लिए दीक्षित व्यक्ति के (यज्ञ समाप्ति के पूर्व ही) मर जाने पर जो कृत्य होते थे उसका वर्णन आश्वलायन-श्रौतसूत्र (6/10) में हुआ है। इसमें आया है कि - ''जब दीक्षित व्यक्ति मर जाता है तो उसके शरीर को वे तीर्थ से ले जाते हैं उसे उस स्थान पर रखते हैं जहाँ अनभृव (सोमयज्ञ या सत्र यज्ञ की परिसमाप्ति पर स्नान) होने वाला था और उन्हें उन अलंकरणों से सजाते हैं जो बहुधा शव पर रखे जाते हैं। वे शव के सिर, चेहरे एवं शरीर के बाल और नख काटते हैं। वे नलद (जटामासी) का लेप लगाते हैं और शव पर नलदों का हार चढ़ाते हैं। कुछ लोग अंतड़ियों का काटकर उनसे मल निकाल देते हैं और उसमें पृषदाज्य (मिश्रित घृत एवं दही) भर देते हैं।[1] वे शव के पाव के बराबर वस्त्र का एक नवीन टुकड़ा काट लेते हैं और उसके शव को इस प्रकार ढक देते हैं कि अंचल पश्चिम दिशा में पड़ जाता है (शव पूर्व में रखा रहता है) और के पाँव खुले रहते हैं। मृत की श्रौत अग्नियाँ अरणियों पर रखी रहती है। शव को वेदी से बाहर लाया जाता हैं और दक्षिण की ओर ले जाते हैं, घर्षण से अग्नि उत्पन्न की जाती है और उसी में शव जला दिया जाता है। श्मशान से लौटने पर उन्हें दिन का कार्य समाप्त करना चाहिए। दूसरे दिन शस्त्रों का पाठ, स्तोत्रों का गायन एवं संस्तवों (समवेत रूप में मन्त्रपाठ) का गायन बिना दुहराये एवं बिना 'हिम्' स्वर उच्चारित किये होता है। होता श्मशान के पश्चिम में, अध्वर्यु उत्तर में, उदगाता अध्वर्यु के पश्चिम और बहन् के दक्षिण में। इसके उपरान्त धीमें स्वर में 'आयं गौः पृश्निरक्रमीत से आरम्भ होने वाला मंत्र गाते हैं। गायन समाप्त होने के उपरान्त होता अपने बाँये हाथ का श्मशान की ओर करके की तीन परिक्रमा करता है और बिना 'ओम् का उच्चारण किये उद्गाता के गायन के तुरन्त पश्चात धीमे स्वरमें स्तोत्रिय का पाठ करता है और निम्न मंत्रों को, जो यम एवं याम्यायनो (ऋषियों एवं प्रणेताओं के मंत्र है, कहता है - इसके उपरान्त किसी घड़े में अस्थियाँ एकत्र करनी चाहिए, घड़े को तीर्थ की तरफ ले जाना चाहिए और उस आसन पर रखना चाहिए जहाँ मृत यजमान बैठता है।

आश्वलायन गृहसूत्र का कहना है - ''जब आहिताग्नि मर जाता है तो किसी को चाहिए कि वह दक्षिण-पूर्व में या दक्षिण-पश्चिम में ऐसे स्थान पर भूमि-खण्ड खुदवाये जो दक्षिण या

---

1. शतपथ ब्राह्मण (12/5/2/5)।

दक्षिण-पूर्व की ओर ढालू हो या कुछ लोगों के मत से वह भूमि खण्ड दक्षिण-पश्चिम की ओर भी ढालू हो सकता है। गड्डा एक उठे हुए हाथों वाले पुरुष की लम्बाई का एक व्याम (पूरी बाँह तक) के बराबर चौड़ा एवं एक वितस्ति (बारह अंगुल) गहरा होना चाहिए।[1] इस स्थान से पानी चारों ओर जाता हो, अर्थात श्मशान कुछ ऊँची पर होना चाहिए। यह सब उस श्मशान के लिए है जहाँ शव जलाये जाते हैं उन्हें शव के सिर के केश एवं नख काट देने चाहिए।[2] इसके उपरान्त विषम संख्या में बूढ़े (पुरूष और स्त्रियां साथ नहीं चलती) लोग शव को ठोते हैं। श्मशान पहुँच जाने पर अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला व्यक्ति अपने शरीर के वामांग को उसकी ओर करके चिता स्थल की तीन बार परिक्रमा करते हुए उस पर शमी की टहनी से जल छिड़कता है और ढअपेत बीता विच सर्पतातः' (ऋ. 10/14/9) का पाठ करता है।

जो व्यक्ति यह सब जानता है, उसके द्वारा जलाये जाने पर घूम के साथ मृत व्यक्ति स्वर्ग लोग जाता है ऐसा ही (श्रुति से) ज्ञात है। इमें जीवा? (ऋ. 10/18/3) पाठ के उपरान्त सभी (सम्बन्धी) लोग दाहिने से बाँयें घूमकर बिना पीछे देखे चल देते हैं। वे किसी स्थिर जल के स्थल पर जाते हैं और उसमें एक बार डुबकी लेकर और दोनों हाथ ऊपर की ओर करके मृत का नाम, गोत्र उच्चापिरत करते हैं, बाहर आते हैं, दूसरा वस्त्र पहनते हैं एक बार पहने हुए वस्त्र को निचोड़ते हैं और अपने कुर्तों के साथ उन्हें उत्तर की ओर दूर रखकर वे तारों के उदय होने तक बैठते हैं, जब सूर्यास्त का एक अंश दिखाई देता है तौ वे घर लौट आते हैं। घर लौटने पर वे पत्थर अग्नि, गोबर, जौ, तिल एवं जल स्पर्श करतेहैं, जहाँ अन्य कृत्य भी दिये गये हैं। यथा जल सन, तर्पण करना, बैलर को छूना,आँख में अंजन लगाना, तथा शरीर में अंगराग लगाना।

बराहपुराण के अनुसार पौराणिक मंत्रों का उच्चारण करना चाहिए, अन्त्येष्टि कर्ता को चिता की परिक्रमा करनी चाहिए और उसके उस भाग में अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए जहाँ पर सिर रखा हो।

---

1. आश्वलायन गृह्मसूत्र (2/7/5)
2. ऋ. (10/49)

आधुनिक काल में अन्त्येष्टि क्रिया की विधि सामान्यतः उपर्युक्त आश्वलायनगृह्मसूत्र के नियमों के अनुसार या गरूड़पुराण (2/4/41) वर्णित व्यवस्था पर आधारित है।

ब्रह्मचारी को किसी व्यक्ति या अपने जाति के शव को ढोने की आज्ञा नहीं थी, किन्तु अपने माता-पिता, गुरू, आचार्य एवं उपाध्यय का शव ढो सकता था और ऐसा करने से उसे कोई कल्मष नहीं लगता था।[1] यदि कोई ब्रह्मचारी व्यक्ति उक्त पाँच व्यक्तियों के अतिरिक्त किसी अन्य का शव ढोता है तो उसका ब्रह्मचर्य व्रत खण्डित माना जाता है और उसे व्रलोप का प्रायश्चित करना पड़ता है जो लोग स्वजातीय व्यक्ति का शव ढोते हैं उन्हें वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए, नीम की पत्तियाँ दाँत से चबानी चाहिए, आचमन करना चाहिए, अग्नि, जल गोबर, स्वेत सरसों का स्पर्श करना चाहिए; धीरे से किसी पत्थर पर पैर रखना चाहिए और तब घर में प्रवेश करना करना चाहिए। सपिण्डों का यह कर्तव्य है कि वे अपनी सम्बन्धी का शव ढोये,ऐसा करने के उपरान्त उन्हें केवल स्नान करना होताहै,अग्नि को छूना पड़ता है और पवित्र होने के लिए घी पीना पड़ता है।

सपिण्ड-रहित ब्राह्मण के मृत शरीर को ढोने वाले की पराशर ने बड़ी प्रशंसा की है और कहा है जो व्यक्ति मृत ब्राह्मण के शरीर को ढोता है वह प्रत्येक पग पर एक-एक यज्ञ के सम्पादन का फल पाता है और पानी में डुबकी लगा लेने और प्राणायाम करने से ही पवित्र हो जाता है। आदि पुराण में लिखा है यदि क्षत्रिय या वैश्य किसी दरिद्र ब्राह्मण या क्षत्रिय (जिसने सब कुछ खो दिया है) के या दरिद्र बैश्य के शव को ढोता है वह बड़ा यश एवं पुण्य पाता है और स्नान के उपरान्त ही पवित्र हो जाता है। सामान्यतः आज भी (विशेषतः ग्रामों में) एक ही जाती के लोग शव ढोते हैं या साथ जाते हैं, और वस्त्र सहित स्नान करते हैं के उपरान्त ही पवित्र मान लिये जाते हैं। मध्य काल की टीकाओं, यथा मितक्षरा ने जाति संकीर्णता से प्रेरित होकर व्यवस्था दी है "यदि कोई व्यक्ति प्रेम वश शव को ढोता है, मृत परिवार में भोजन करता है और वहीं रह जाता है तो वह दस दिनों तक अशौच रहता है।यदि मृत व्यक्ति के यहाँ केवल रहता है भोजन नहीं

---

1. ब्रह्मपुराण (पराशरमाधवीय 1/2 पृ. 278)

करता, तो तीन दिन तक, लेकिन यह नियम तभी लागू होगा जब शव ढोने वाला व्यक्ति मृत जाति का हो।

कूर्म पुराण ने व्यवस्था दी है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी मृत को शुल्क देकर शव को ढोता है या किसी अन्य स्वार्थ के लिए ऐसा करता है तो वह दस दिनों तक अपवित्र (अशौच में) रहता है और यदि इसी प्रकार कोई क्षत्रिय, वैश्य शूद्र करता है तो वह 10, 15 एवं 30 दिनों तक अपवित्र रहता है।

विष्णु पुराण का कथन है यदि व्यक्ति लेकर शव ढोता है तो वह मृत व्यक्ति की जाति के लिए व्यवस्थित अवधि तक अपवित्र रहता है। हारीत (मिता. याज्ञ. 312) के मत से शव को मार्ग के गाँवों में से होकर नहीं जाना चाहिए।[1] यम एवं गरूण पुराण (2/4/56-57) का कथन है कि चिता के लिए अग्नि, काष्ठ, तृण, छवि आदि उच्च वर्णों के लिए शूद्र द्वारा नहीं ले जाना चाहिए, नहीं तो मृत व्यक्ति सदा प्रेतावस्था में रह जाता है।[2] स्मृतियों एवं पुराणों ने व्यवस्था दी है कि शव को नहलाकर जलाना चाहिए, शव को नग्न रूप से कभी भी नहीं जलाना चाहिए, उसे वस्त्र से ढका रहना चाहिए,

उस पर पुष्प रखना चाहिए, चन्दन का लेप लगाना चाहिए, अग्नि को शव के मुख की ओर लगाना चाहिए। किसी व्यक्ति को कच्ची मिट्टी के पात्र में पकाया हुआ भोजन ले जाना चाहिए और किसी अन्य व्यक्ति को उस भोजन का कुछ अंश मार्ग में रख देना चाहिए और चाण्डाल आदि (जो श्मशान में रहते हैं) के लिए वस्त्र आदि दान करना चाहिए।

ब्रह्मपुराण (शुद्धि प्रकाश,पृ. 159) का कथन है कि शव को श्मशान ले जाते समय वाद्य यंत्रों का पर्याप्त निनाद किया जाना चाहिए।[3]

---

1. हारीत (मितारा, याज्ञ. 312)
2. गरूण पुराण (2/4/56-57)
3. ततं वीणादिकं वाद्यमानद्धं मुरजादिकम् वंशादिकं। तु सुवरिं कास्यतालदिकं घनम्।। ब्रह्म. (शुद्धि प्रकाश पृ. 159)।

शव को जलाने के उपरान्त, अन्त्येष्टि-क्रिया के अंग के रूप में कर्ता को वपन (मुडंन) करवाना पड़ता है और उसके उपरान्त स्नान करना पड़ता है, किन्तु वपन के विषय में कई नियम है। स्मृतियों - 'दाढ़ी-मूंछ बनवाना सात बातों में घोषित है, यथा - गंगा तट पर, भास्कर क्षेत्र में, माता-पिता या गुरू की मृत्यु पर श्रौताग्नियों की स्थापना पर एवं सोमयज्ञ में।[1]

अन्त्यकर्मदीपक (पृ. 19) में अन्त्येष्टि क्रिया करने वाले पुत्र या किसी अन्य सम्बन्धी को सबसे पहने वपन कराकर स्नान कराना चाहिए और तब शव को किसी पवित्र स्थान पर ले जाना चाहिए तथा वहाँ स्नान कराना चाहिए यदि ऐसा स्थान वहाँ न हो तो शव को स्नान कराने वाले जल में गंगा, गया या अन्य तीर्थों का आवाहन करना चाहिए इसके उपरान्त शव पर घी या तिल के तेल का लेप करके पुनः उसे नहलाना चाहिए, नया वस्त्र पहनाना चाहिए और सम्पूर्ण शरीर में चंदन, कुकुम, कपूर, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए। यदि अन्त्येष्टि क्रिया रात्रि में हो तो वपन क्रिया रात्रि में नहीं होनी चाहिए।[2]

गरूड़ पुराण (2/4/67-69) के मत से घोर रूदन शव दाह के समय किया जाना चाहिए, किन्तु दाह-कर्म एवं जल-तर्पण के उपरान्त रूदन कार्य नहीं होना चाहिए।[3]

सपिण्डों एवं समानोदकों द्वारा मृत के लिए जो उदक क्रिया या जलदान होता है उसके विषय में मतैक्य नहीं है। आश्व. गृहम. ने केवल एक बार जल-तर्पण की बात कही है किन्तु सत्याषढश्रो. (28/2/62) आदि ने व्यवस्था दी है कि तिलमिश्रित जल अंजलि मृत्यु के दिन मृत का नाम गोत्र बोलकर तीन बार दिया जाता है और ऐसा ही प्रतिदिन 11वें दिन तक दिया जाता है। गरूड़ पुराण (प्रेखण्ड, 5/22-23) ने भी 10, 55 या 100 अंजलिया की चर्चा की है।

कूर्म पुराण, उत्तरार्ध 23/70 के मत से अंजलि से जल देने के उपरान्त पके हुए चावल या जौ का पण्डि तिलों के साथ दर्भ पर दिया जाता है। विष्णु पुराण (19/13) के मत से अशौच

---

1. गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतो। आघान काले सोमें च वपनं सप्तसु स्मृतम्।। - मिता. (याज्ञ. 3/96), परा.मा. (1/2 पृ. 296), शुद्धि प्रकाश (पृ. 161) प्रायश्चितत्व (पृ. 493)। भास्कर क्षेत्र प्रयाग का नाम है।
2. रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डान्तं कृत्वा वपनवर्जितम् । वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनां वपन क्रिया ।। शुद्धि प्रकाश (पृ. 161)
3. गरूड़ पुराण (2/4/67-69)

के दिनों में प्रतिदिन एक पिण्ड दिया जाता है। किन्तु मंत्र नहीं पढ़ा जाता, या पिण्ड पत्थर पर दिया जाता है। जल तो प्रत्येक पिण्ड या अन्य कोई भी दे सकता है किन्तु पिण्ड पुत्र (यदि कई पुत्र हों तो ज्येष्ठ पुत्र) देता है। पुत्रहीनता पर भाई या भतीजा देता है और उनके अभाव में माता के सपिण्ड यथा मामा या ममेरा भाई आदि देते हैं।

गरूड़ पुराण में उन सभी को जिन्होंने मृत्यु के दिन के कर्म करना आरम्भ किया हो, चाहे वह सगोत्र होया अन्य किसी गोत्र के हों दस दिनों तक सभी कर्म करने पड़ते हैं।[1]

मत्स्य पुराण का कथन है कि मृत के लिए पिण्डदान 12 दिनों तक होना चाहिए, ये पिण्ड मृत के लिए दूसरे लोक में जाने के लिए पाथेय होते हैं और वे उसे संतुष्ट करते हैं, मृत 12 दिनों के उपरान्त मृतात्माओं के लोक में चला जाता है। अतः दिनों के भीतर वह अपने घरों, पुत्रों एवं पत्नी को देखता है।

मृत को जल देने के लिए कुछ लोग अयोग्य माने गये हैं और कुछ मृत व्यक्ति भी जल पाने के लिए अयोग्य माने गये हैं। नपुंसक, सोने के चोर, विधर्मी, भ्रुणहत्या या पति की हत्या करने वाली स्त्री, निषिद्ध मद्य पीने वालों को जल देना मना है। गौतमधर्म सूत्र (14/11) ने व्यवस्था दी है कि उन लोगों की न अन्त्येष्टि क्रिया होती है, न अशौच होता है, न जल तर्पण होता है और न पिण्डदान होता है, जो क्रोध में आकर महाप्राण करते हैं, जो उपवास से या शस्त्र से या अग्नि से या विष से या जल में या फांसी लगाकर लटक कर या पर्वत से कूदकर या पेड़ से कूद कर आत्महत्या कर लेते हैं।[2] हरदत्त (गौ. 14/11) ने ब्रह्मपुराण से तीन पद्य उद्धत कर कहा है जो ब्राह्मण शाप से या अभिचार से मरते हैं या जो पतित है वे इसी प्रकार गति पाते हैं।

---

1. असगोत्रः सगो6ो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान् । प्रथमेऽहनि यो दद्यात्स दशाहं समापयेत् ।। गरूड़ पुराण (प्रेत खण्ड 5/19-20)।

2. प्रायानाशकशस्त्रग्निविषोदकोद्बन्धन प्रपतनैश्चेत्छताम् । (गौ. (14/11)

   क्रोधात् प्रायं विषं वह्निः शस्त्रमुद्बंधनं जलम् । गिरिवृक्षप्रपातं च कुवर्न्ति नराधमाः।। ब्रह्मदण्डहता ये च ये चैव ब्राह्मणैर्हताः। महापातकिनो ये च पतितास्ते प्रकीर्तिताः।। पतितानां न दाहः स्यान्न च स्यादस्थिसंचयः न चाश्रुपातः पिण्डो वा कार्यो श्राद्धक्रिया न चा।। ब्रह्मपुराण (हरदत्त गौ. 14/11 अपरार्क पृ. 902-903), कूर्म पुराण (उत्तरार्ध 23/60-63)।

यदि आहिताग्नि (जो श्रौत अग्नि होत्र करता हो) विदेश में मर जाय तो उसकी अस्थियाँ मँगाकर काले मृगचर्म पर फैला दी जानी चाहिए और उन्हें मानव-आकार में सजा देना चाहिए और रूई एवं घृत तथा श्रौत अग्नियों एवं यज्ञपात्रों के साथ जला डालना चाहिए।

यदि अस्थियां न प्रप्राप्त हो सके तो पुराणों एवं अन्य प्राचीन ग्रंथों में व्यवस्था दी है कि पलाश 360 पत्तियों से काले मृगचर्म पर मानव पुतला बनाना चाहिए और उसे ऊन के सूत्रों से बाँध देना चाहिए, उस पर जल से मिश्रित जौ का आटा डाल देना चाहिए। ब्रह्मपुराण (शुद्धि प्रकाश, पृ. 187) ने ऐसे नियम दिये हैं और तीन दिनों तक अशौच घोषित किया है। गरूड़पुराण के मत से पत्तियाँ इस प्रकार सजायी जानी चाहिए - सिर के लिए 40, गरदन के लिए 10, छातीके लिए 20, उदर के लिए 30, पैरों के लिए 6, पैरों के अंगूठों के लिए 10, दोनों बाँहों के लिए 50, हाथों के अंगुलियों के लिए 10, लिंग के लिए 8 एवं अण्डकोशों के लिए 12।

ब्रह्मपुराण को उद्धत कर कहा है कि आकृतदहन केवल आहिताग्नियों तक ही सीमित नहीं मानना चाहिए यह कर्म उनके लिए भी है जिन्होंने श्रौत अग्नि होत्र नहीं किया है। इस विषय में आहिताग्नियों के लिए अशौच 10 दिनों तक तथा अन्य लोगों के लिए केवल तीन दिनों तक होता है।

गरूड़ पुराण (2/4/169-70) में ऐसी व्यवस्था दी गयी है कि यदि विदेश गया हुआ व्यक्ति आकृतिदहन के उपरान्त लौट आयें अर्थात मृत समझा गया व्यक्ति जीवित अवस्था में लौटआये तो वह घृत से भरे हुए कुण्ड में डुबोकर बाहर निकाला जाता है, पुनः उसको स्नान कराया जाता है और जातकर्म से लेकर सभी संस्कार किये जाते हैं। इसके उपरान्त उसको अपने पत्नी के साथ पुनः विवाह करना होता है किन्तु यदि उसकी पत्नी मर गयी हो तो वह दूसरी कन्या से विवाह कर सकता है और तब वह पुनः अग्निहोत्र प्रारम्भ कर सकता है। विष्णु. (22/27-28)

ब्रह्मपुराण (परा. मा. 1/2, पृ. 238) के मत से गर्भ से पतित बच्चे, भ्रूण, मृतोत्पन्न शिशु तथा दन्तहीन शिशु को वस्त्र से ढंककर गाड़ देना चाहिए। छोटी अवस्था के बच्चों को नहीं जलाना चाहिए। ऐसे बच्चों के शवों पर घृत एवंचन्दन का लेप लगाना चाहिए, उस पर पुष्प आदि रखने चाहिए उन्हें न तो जलाना चाहिए और न जल तर्पण करना चाहिए और न ही उनकी अस्थि-चयन करनी चाहिए।

यति (सन्यासी) को प्राचीन काल में भी गाड़ा जाता था। ब्रह्मचारी एवंयति का शव उतपन अग्नि से जलाया जाता है। इस विषय में शुद्धि प्रकाश (पृ॰ 136) ने व्याख्या की है कि यहाँ पर यति कूटीचक श्रेणी का सन्यासी है और उसने यह भी बताया कि चार प्रकार के सन्यासी लोगों (कुटी चक, बहुदक, हंस एवं परमहंस) की अन्त्येष्टि किस प्रकार की जाती है। जिसे स्मृत्ययसार (पृ॰ 98) ने कुछ इस प्रकार ग्रहण किया है और परिव्राजक की अन्त्येष्टि क्रिया का वर्णन उपस्थित किया है। किसी को ग्राम के पूर्व या दक्षिण में जाकर पलाश वृक्ष के नीचे या नदी-टल स्थल पर या किसी स्वच्छ स्थल पर व्याछतियों के साथ यदि दण्ड के बराबर गहरा गड्ढा खोदना चाहिए; इसके उपरान्त प्रत्येक बार सात व्याछतियों के साथ उन पर तीन बार जल छिड़कना चाहिए, गड्ढे में दर्भ बिछा देना चाहिए; माला, चन्दन लेप से शव को सजा देना चाहिए। परिव्राजक के दाहिने हाथ में दण्ड तीन खण्डों में करके थमा देना चाहिए और ऐसा करते समय मन्त्रपाठ करना चाहिए। शिक्य को बांये हाथ में मन्त्रों के साथ रखा जाता है और फिर क्रम से पानी छानने वाला वस्त्र मुख पर, गायत्री मंत्र के साथ पात्र को पेट पर और जल पात्र को गुप्तांग के पास रखा जाताहै,। इसके उपरान्त 'चतुर्होतार' मंत्रों का पाठ किया जाता है। अन्य कृत्य नहीं किये जाते; न तो शवदाह होता है, न अशौच मनाया जाता है और जल-तर्पण किया जाात है क्योंकि यति संसार की विषयवासना से मुक्त होता है। समृत्यर्थसार ने इतना जोड़ दिया है कि न तो एकोदिष्ट श्राद्ध और न सपिण्डीकरण ही किया जाता है केवल 11वें दिन पार्वण श्राद्ध होता है। किन्तु कुटीचक जलाया जाता है, बहूदक गाड़ाजाता है, हंस को जल में प्रवाहित कर दिया जाता है और परम हंस को भलीभाँति गाड़ा जाता है। गाड़ने के उपरान्त गड्ढे को भलि-भाँति ढंक दिया जाता है जिससे कुत्ते, श्रृंगाल आदि शव निकाल न डाले। कूटी चक को छोड़कर कोई भी यति नहीं जलाया है। आजकल सभी यति गाड़े जाते हैं क्योंकि बहुदक और कुटीचक आजकल पाये नहीं जाते केवल परम हंस ही देखने को मिलते हैं। यति को क्यों गाड़ा जाता है? संभवतः उत्तर यही हो सकता है कि वे गृहस्थों की भांति श्रौताग्नियाँ या स्मार्ताग्नियाँ नहीं रखते और वे लोग भोजन के लिए साधारण अग्नि भी नहीं जलाते। गृहस्थ लोग अपनी श्रौत या स्मार्त अग्नियों

के साथ जलाये जाते हैं किन्तु यति लोग बिना अग्नि के होते हैं अतः गाड़े जाते हैं।

जो स्त्रियाँ बच्चा जनते समय या जनने के उपरान्त ही या मासिक धर्म की अवधि में उनके दाह के विशिष्ट नियम है। गरूड़ पुराण (2/4/171) में उद्धृत में है कि एक पात्र में जल एवं पंचगव्य लेकर मंत्रोचारण करना चाहिए और सूतिका को स्नान कराकर जलाना चाहिए। मासिक धर्म वाली मृत स्त्री को भी इसी प्रकार जलाना चाहिए किन्तु उसे दूसरा वस्त्र बदल देना चाहिए।[1]

विभिन्न कालों एवं विभिन्न देशों में शव-क्रिया (अन्त्येष्टि क्रिया) विभिन्न ढँगों से की जाती है। अन्त्येष्टि-क्रिया के विभिन्न प्रकार ये हैं - जलाना(शव-दाह), भूमि में गाड़ना, जल में बहा देना, शव को खुला छोड़ देना जिसेस गिद्ध, चील कौवे आदि उसे खा डालें (पारसियों में)। पारसियों में शव को गाडऩा महान पाप है। गुफाओं में सुरक्षित रख छोड़ना या ममी रूप में (यथा मिश्र में) सुरक्षित रख छोड़ना। जहाँ तक हमें साहित्यिक प्रमाण मिलता है, भारत में सामान्य नियम शव को जला देना ही था; किन्तु अपवाद भी थे यथा शिशुओं, संयासियों आदि के विषय में प्राचीन भारत में शव गाड़ देने की बात अज्ञात नहीं थी (अथर्ववेद 5/30/14 'मानु भूमिगृहो भुवत् एवं 18/2/34)। अन्तिम मंत्र का रूप यों है "हे अग्नि, उन पितरों को यहाँ से ले जाओ, जिससे कि वे छवि ग्रहण करें, उन्हें भी बुलाओं जिनके शरीर गाड़े गये थे या खुले रूप में छोड़ दिये गये थे या ऊपर रख दिये थे।

आदि कालीन रोम के लोग शवदाह को सम्भाव्य समझते थे और शव गाड़ने की रीति केवल न लोगों के लिए बरती जाती थी जो आत्महन्ता या हत्या होते थे।

कुछ समय तक शव को विकृत होने से बचाने के लिए रख छोड़ना ज्ञात नहीं था। शतपथ ब्राह्मण ने व्यवस्था दी है कि यदि आहिताग्नि अपने लोगों से सुदूर मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो उसके शव को तिल-तेल से पूर्ण द्रोण (नाद) में रखकर गाड़ी द्वारा घर लाना चाहिए। रामायण में यह कई बार कहा गया है कि भरत के आने के बहुत दिन से पूर्ण से ही राजा दशरथ का शव

---

1. गरूड़ पुराण (2/4/171)।

तेलपूर्ण लम्बे द्रोण या नाद में रख दिया ज़ाता है। विष्णुपुराण में आया है कि निमि का शव तेल या सुगन्धित पदार्थों से इस प्रकार सुरक्षित रखा हुआ था कि वह सड़ा नहीं और लगता था कि मृत्यु मानों अभी हुई हो।

हारलता (पृ॰ 126) ने आदिपुराण का एक वचन उद्धत करते हुए लिखा है कि मग लोग गाड़े जाते थे और दरद लोग एवं लुप्त्रक लोग अपने सम्बन्धियों के शवों को पेड़ पर लटकाकर चल देते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भिक बौद्धों में अन्त्येष्टि क्रिया की कोई अलग विधि प्रचलित नहीं थी चाहे मरने वाला भिक्षु हो या उपासक। बौद्ध अन्त्येष्टि क्रिया यद्यपि सरल है तथापि वह आश्वलायनग्हयसूत्र के नियम से कुछ मिलती है।

जब मृत के सम्बन्धीगण (पुत्र आदि) जलतर्पण एवं स्नान करके जल से बाहर निकलकर हरी घास के किसी स्थल पर बैठ गये हो, तो गुरूजनों को उनके दुःख को कम करने के लिए प्राचीन कथायें कहनी चाहिए।

विष्णुधर्म सूत्र (20/22-53) में इसका विस्तृत वर्णन किया गाय है कि किस प्रकार काल (समय, मृत्यु) सभी को,यहाँ तक इन्द्र, देवों, दैत्यों, महान राजाओं एवं यहाँ तक की महान ऋषि मुनियों को धर दबोचता है कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर एक दिन मरण को प्राप्त होता ही है (मृत्यु अवश्यम्भावी है) कि (पत्नी को छोड़कर) कोई भी मृत व्यक्ति के साथ यमलोक नहीं जाता कि किसप्रकार सत्कर्म मृतात्मा के साथ जाते हैं कि किस प्रकार श्राद्ध मृतात्मा के लिए कल्याणकर है।

गरुड़ पुराण (2/4/81-84) में भी आया है कि जो व्यक्ति मानव जीवन में, जो केले के पौधे के समान सराहनीय है और जो पानी के बुलबुले के समान अस्थिर है, अमरता खोजता है, वह भ्रम में पड़ा हुआ है। रूदन से क्या लाभ है जब कि शरीर पूर्व जन्म के कर्मों के कारण पंचतत्वों से निर्मित हो पुन: उन्हीं तत्वों में समा जाता है। गोभिलस्मृति (339) ने बलपूर्वक कहा है कि जो नाशवान हैं जो सभी प्राणियों की विशेषता है उसके लिए रोना-धोना क्या? केवल शुभ

कर्मों के सम्पादन में, जो तुम्हारे साथ जाने वाले हैं, लगे रहो। गोभिल ने याज्ञ. (3/8-10) एवं महाभारत को उद्धत किया है - "सभी संग्रह क्षय को प्राप्त होते हैं, सभी उदय पतन को, सभी संयोग वियोग को और जीवन मरण को"[1]

गरुड़ पुराण (2/4/91-100) ने पति की मृत्यु पर पत्नी के (पति के चिता पर) बलिदान अर्थात मर जाने एवं पतिव्रता की चमात्कारिक शक्ति के विषय में बहुत कुछ लिखा है और कहा है कि ब्राह्मण स्त्री को अपने पति से पृथक नहीं चलना चाहिए। किन्तु क्षत्रिय एवं अन्य नारियाँ ऐसा नही भी कर सकती हैं। उसने यह भी लिखा है कि सती प्रथा सभी नारियों के लिए, यहाँ तक कि चाण्डाल नारियों के लिए भी समान ही है केवल गर्भवती नारियों को या उनके जिनके बच्चे अभी छोटे हो ऐसा नहीं करना चाहिए।उसने यह भी लिखा है कि जब तक पत्नी सती नहीं हो जाती तब तक वह पुनर्जन्म से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकती ।

गुरूजनों का दाशर्निक उपदेश सुनने के उपरान्त सम्बन्धी गण अपने घर लौटते हैं। बच्चों को आगे करके घर के द्वार पर खड़े हो कर और मन को नियन्त्रित कर नीम की पत्तियाँ दाँतों से चबाते हैं आचमन करते हैं। जल, अग्नि, गोबर एवं श्वेत सरसों को छूते हैं, इसके उपरान्त किसी पत्थर पर धीरे से किन्तु दृढ़ता से पाँव रखकर घर में प्रवेश करते हैं। शंख के अनुसार सम्बन्धियों द्वारा दूर्वाप्रवाल (दूब की शाखा), अग्नि बैल को छूना चाहिए मृत को घर के द्वार पिण्ड देना चाहिए तब घर में प्रवेश करना चाहिए[2]। बैजवाय ने शमी आश्मा (पत्थर) अग्नि को स्पर्श करते हुए मंत्रों के उच्चारण की व्यवस्था दी है और कहा है कि अपने एवं पशुओं के बीच अग्नि रखकर उन्हें छूना चाहिए, उसे केवल एक ही प्रकार का भोजन खरीदना या दूसरे के घर से लाना चाहिए उसमें नमक नहीं होना चाहिए, उसे केवल एक दिन और वह भी केवल एक बार भी खाना चाहिए तथा सारे कर्म तीन दिनों तक स्थगित रखना चाहिए। याज्ञ. (3/14) ने व्यवस्था दी है कि उनके बतलाये हुए यथा - नीम की पत्तियों को कुतरने से लेकर गृह-प्रवेश तक के कार्य

1. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः। संयोगा वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।।
2. दूर्वाप्रवालमग्निं वृषभं चालभ्य गृहद्वारे प्रेताय पिण्डं दत्त्वा पश्चात्प्रविशषेयुः। (मिता. याज्ञ. 3/13, परा. मा. 1/2, पृ. 293)

उन लोगों द्वारा भी सम्पादित होना चाहिए जो सम्बन्धी नहीं है किन्तु शव ढोने, जलाने एवं संवारने आदि में सम्मिलित थे।

विष्णु. (19/14-17) गरूड़ पुराण (प्रेत खंड 51-5) एवं अन्य ग्रन्थों में उन लोगों (पुरूषों एवं स्त्रियों) के लिए कतिपय नियम दिये हैं जिनके सपिण्ड मर जाते हैं और लिखा है कि श्मशान से लौटने के तीन दिन तक क्या करना चाहिए। शाखा. श्रौ. ने व्यवस्था दी है कि उन्हें खाली (विस्तरहीन) भूमि पर सोना चाहिए, केवल याज्ञिक भोजन करना चाहिए, वैदिक अग्नियों से संबंधित कर्म करना चाहिए अन्य धार्मिक कृत्य नहीं करना चाहिए, ऐसा एक रात्रि के लिए या नौ रात्रि के लिए या अस्थि संचय तक करना चाहिए।

आजकल भी अग्निहोत्री लोग स्वयं श्रौत नित्य होम अशौच के दिन करते हैं या अन्य लोगों से कराते हैं। विष्णु. (22/6) ने व्यवस्था दी है कि जन्म एवं मरण के अशौच में होम (वैश्व देव) दान देना एवं ग्रहण करना तथा वेदाध्ययन रूक जाता है।

अस्थि संचयन या संचयन वह क्रिया है जो शव दाह के उपरान्त जली हुई अस्थियाँ एकत्र की जीत हैं। यथा विष्णु. (19/10-12) गरूड़ पुराण (प्रतेखण्च 5/15) के मत से पहले, तीसरे सातवें या नवें दिन और विशेषतया द्विजों के लिए चौथे दिन अस्थि संचयन होना चाहिए। वामन पुराण (14/97-98) ने पहले चौथे या सातवें दिन की अनुमति दी है। यम (87) ने सम्बन्धियों के शव दाह के उपरान्त प्रथम दिन से लेकर चौथे दिन तक अस्थियाँ एकत्र कर लेनी चाहिए। विष्णु. (19/10) कूर्म पुराण (उत्तर 23) विष्णुपुराण (3/13/14) आदि ने कहा है कि संचयन दाह चौथे दिन अवश्य होना चाहिए।

आजकल विशेषतः गावों एवं कसबों में शवदाह के तुरन्त बाद ही अस्थियाँ एकत्र कर ली जाती हैं। अन्त्येष्टि पद्धति उपर्युक्त आश्व. गृघ. की विधि का अनुसरण करती है। इसका कथन है कि कर्त्ता चिता स्थल को जाता है आचमन करता है, काल एवं स्थान आदि का नाम लेता है और मृत का नाम और गोत्र बोलकर वह संकल्प करता है कि अस्थि संचयन करेगा। अपने वामांग को चिता स्थल की ओर करके उसकी तीन बार परिक्रमा करता है, उसे शमी की टहनी से बुहरता है उस पर 'शीतिके' (ऋ. 10/16/14) के साथ दूध मिश्रित जल छिड़कता है। इसके

उपरान्त विषम संख्या में बूढ़े व्यक्ति अस्थि संचयन करते हैं। छोटी-छोटी अस्थियाँ किसी नये पात्र में चुनकर रख दी जाती है तथा भस्म गंगा में बहा दी जाती है।

पुराणों में ऐसा आया है कि कोई सदाचारी पुत्र, भाई या दौहित्र (लड़की का पुत्र) या पिता या माता के कुल का कोई संबंधी गंगा में अस्थियों को डाल सकता है। जो इस प्रकार संबंधित नहीं है उसे अस्थियों को गंगा प्रवाह नहीं करना चाहिए यदि वह ऐसा करता है तो उसे चान्द्रापण प्रायश्चित करना चाहिए। आजकल भी बहुत से हिन्दू अपने माता-पिता या अन्य सम्बन्धियों की अस्थियों को प्रयोग में जाकर गंगा या किसी पवित्र नदी में डालते हैं या समुद्र में प्रवाहित कर देते हैं। उन्हें पंचगय से स्नान कराना चाहिए। इसके उपरान्त उसके (पवित्र अग्निओं) वस्त्र, मिट्टी, मधु, कुशपूर्ण, जल, गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध गोघृत एवं जल से दस बार स्नान करना चाहिए।

नौवाँ अध्याय

वास्तुशास्त्र पर्यावरण एवं ईष्टापूर्त

वास्तुशास्त्र पर्यावरण एवं ईष्टापूर्त

वास स्थान या निवास स्थान को वास्तु कहा जाता है और इससे सम्बद्ध बातों का जिस शास्त्र में वर्णन रहताहै, वह वास्तु शास्त्र है। मुख्य रूप से वास्तु शास्त्र के अन्तर्गत भूमि सम्बन्धी-नगर आदि की रचना सम्बन्धी तथा गृह के उपकरण भूत-वाणी कूप, तडाग, उद्यान रचना, वृक्षारोपड़, भैषज दोहन आदि विषयों का वर्णन रहता है। पुराणों के अनुसार भूमि शोधनादि की क्रिया सम्पन्न करने पर निर्माण कार्य करना चाहिए यदि वास्तु अशुभ हो तो गृहस्थ को पद-पद पर कष्ट होता है तथा शुभ होने पर सुख शान्ति रहती है। इस दृष्टि से वास्तुशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। वातावरण एवंपर्यावरण को ध्यान में रखकर ही निवास स्थान का निर्माण करना चाहिए।

मुख्यतः वास्तुशास्त्र का सम्बन्ध स्थापत्य कला से है। ऋग्वेद तथा अर्थवेद में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। किन्तु पुराणों[1] में विशेष रूप से वास्तुशास्त्र के महत्वपूर्ण विषय का वर्णन हुआ है।

जिस भूमि पर मनुष्यादि प्राणी निवास करते हैं उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह देवप्रासाद ग्राम नगर पुर, दुर्ग आदि अनेक भेद हैं। प्राचीन काल में पर्यावरण की कोई समस्या नहीं थी। फिर प्रासाद निर्माण में पर्यावरण को विशेष ध्यान दिया जाता था। विधिवत वास्तु

---

1. मत्स्यपुराण आचारखण्ड (252-256)
   विष्णु धर्मेत्तर पुराण (द्वितीय खण्ड अ. 29,तृतीय खण्ड अ. 94-95)
   अग्नि पुराण (अ. 93, 104-106)
   गरुण पुराण

नियमों को ध्यान में रखकर निर्माण कार्य किया जाता है। पुराणों में मत्स्य अग्नि तथा विष्णु धर्मेत्तर पुराण में वास्तुशास्त्र की विधिवत चर्चा है। वास्तु के अविर्भाव के विषय में आया है कि अन्धकासुर के बध के समय भगवान शंकर के ललाट से जो स्वेद बिन्दु गिरे उससे एक भयंकर आकृति वाला पुरूष प्रकट हुआ जब वह त्रिलोक भक्षण के लिए उद्यत हुआ तब शंकर आदि देवताओं ने उसे पृथ्वी पर सुलाकर वास्तुदेवता (वास्तु पुरूष) के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसके शरीर में सभी देवताओं ने वास किया इसीलिए यह वास्तुशास्त्र कहलाया। वास्तु कलश में वास्तु देवता की पूजा करके उनसे सर्वाविधि शान्ति एवं कल्याण की कामना की जाती है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि वास्तु निर्माण में प्राचीन ऋषि बहुत ही सजग थे। क्योंकि निर्माण कार्य में पर्यावरण को बहुत ही ध्यान देते हैं। अतः इसकी सुचिता बनाये रखने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता था। जिससे तत्कालीन समाज के लोग उसे आसानी से समझ सके। पुराणों में वास्तु निर्माण में पर्यावरण की कोई समस्या न होते हुए भी वास्तु निर्माण में प्रकृति संरक्षण का विशेष ध्यान दिया जाता था।

भविष्य पुराण के अध्याय 10-13 में वास्तु निर्माण की विधिवत सूचना प्राप्त होती है। विष्णु पुराण में ऐसी मान्यता है कि वास्तु मण्डल में निर्माण से पहले विद्वान ब्राह्मण को चाहिए कि वह एक वह एक वस्तुवेदी के मघा एक कलश की स्थापना करे। कलश निर्माण में स्वच्छंदता को विशेष ध्यान देते थे। कलश निर्माण में पर्वत के शिखर, गजशाला, नदी-संगम राजद्वारा बाल्मीकि चौराहे तथा कुश के मूल की मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए। वायु को शुद्ध रखने के लिए हवन का विधान पुराणों में है।

वास्तुशास्त्र

पर्यावरण का गृह निर्माण से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। क्योंकि घर ही व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकता के अर्न्तगत आता है। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि गृह निर्माण के लिए विशेष उत्साहित दिखते हैं। क्योंकि हमारे पुराणकारों की ऐसी मान्यता रही है कि शुद्ध पर्यावरण

में ही शुद्ध सृष्टि का विकाश संभव है। इसलिए गृहनिर्माण में हवा प्रकाश आदि के लिए विशेष व्यवस्था रखते थे। इसके लिए पुराणकार वास्तु विन्यास के लिए नियम बनाये थे। उनकी मान्यता है कि गृह व्यक्तित्व निर्माण के लिए एक आवश्यक स्थल है। इसलिए गृह निर्माण के लिए पर्यावरण को ध्यान में रखकर वास्तुशास्त्र के नियम से आवासीय क्षेत्र का निर्माण करना चाहिए।

गरुड़ पुराण के 46वें अध्याय में गृह निर्माण के लिए वास्तु पूजन विधि का उल्लेख किया गया है कि आवास अर्थात भवन, गृह आदि, नगर ग्राम, व्यापारिक पथ, प्रासाद, उद्यान दुर्ग, देवालय मठ आदि के निर्माण में वास्तु देवता की स्थापना पूर्वक पूजा करनी चाहिए।

गरूड़ पुराण के अनुसार देवालय,अग्निकोष में पाकशाला पूर्व दिशा में यज्ञ-मण्डप, ईशानकोण में काण्ठ या प्रस्तर से बनी पट्टिकाओं के द्वारा सुगन्धित पदार्थों तथा पुष्पों को रखने वाला स्थान, उत्तर दिशा में भण्डारागार वायुकोण में गोशाला पश्चिम दिशा में खिड़की तथा जलाशय नैऋत्यकोण में समिधा कुश ईंधन तथा अस्त्रशस्त्र का कक्ष, दक्षिण दिशा में सुन्दर शय्या आसन पादुका जल अग्नि दीप सज्जन भृत्यों से युक्त अतिथि गृह निर्माण करना चाहिए तथा घर के समस्त खाली पड़े भाग में कूप, जलसिचिंत कदली गृह और पुष्पों को सुनियोजित करना चाहिए।

प्रसाद लक्षण[1]

प्रासाद बनाते समय सर्वप्रथम नीव के पश्चात प्रासादिक जंशा (कुर्सी) बनाना चाहिए। भवन की यह जंघा मानव जंघा की ढाई गुना अधिक होनी चाहिए। मुख्यद्वार के स्थान में गर्भ गृह का निर्माण करना चाहिए। गर्भ को समानान्तर वातायन (रोशनदान) अथवा वातायन से रहित बनाना चाहिए। देव प्रासाद भूमि फल, पुष्प और जल से परिपूर्ण होनी चाहिए।

देव प्रतिष्ठा की सामान्य विधि

प्रासाद निर्माण के अन्तर्गत देव प्रतिष्ठा विधान है। प्रासाद के अग्रभाग में दस अथवा बारह हाथ का एक वर्गाकार सोलह खम्भों वाला मण्डल तैयार करके मण्डप में चार हाथ परिमाप

1. गरुण पुराण आचारखण्ड (47 अध्याय)

की एक वेदी का निर्माण करना चाहिए तथा उस वेदी के ऊपरी भाग में नदियों के संगम स्थल के किनारे से लायी गयी बालुका बिछाने का विधान है मण्डप की भूमि को गाय के गोबर अथवास्वच्छ मिट्टी से लीपना चाहिए।

मण्डप में लगे तोरण द्वार का न्यग्रोध (वट) उदम्बुर (गुलर) अश्वत्थ (पीपल) बिल्व (वेल) पलाश खदिर (खैर) की लकड़ी से बनवाना चाहिए) ऐसी मान्यता है कि ये सभी वृक्ष पर्यावरण के अति महत्वपूर्ण अंग हैं। मानव ही नहीं पशु पक्षी भी इन वृक्षों में आश्रय पाते हैं। इसीलिए इसकी उपयोगिता को देखते हुए पुराणकारों ने इसकी महत्ता को स्वीकार किया है तथा इन वृक्षों की श्रेष्ठता ज्ञापित करने के लिए इन वृक्षों को धार्मिक क्रियाओं से जोड़ते हुए इन वृक्षों को यज्ञ मण्डप के द्वार को सजाने के लिए इन वृक्षों का उपयोग किया जाता था।

इष्टपूर्त

तालाब, बगीचा, कुआँ बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिर प्रतिष्ठा आदि का विधान - ईष्टापूर्त है।

सूर्य पुत्र मनु ने जलाशय के भीतर अवस्थित मत्स्यरूप धारी भगवान विष्णु[1] से पूछा देवेश! अब मैं आप से तालाब, बगीचा, कुआं, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिर की प्रतिष्ठा किस प्रकार होनी चाहिए। तालाब आदि की प्रतिष्ठा का जो विधान है उसका पुराणों में वर्णन है। पुराणों का कथन है मनुष्य को कृपणता त्यागकर कुआँ, तालाब, पुष्कारिणी का निर्माण करना चाहिए। मत्स्यपुराण पुष्कर निर्माण के लिए इस प्रकार बताया गया है -

---

1. जलाशयगतं विष्णुमुवाच रविनन्दनः।
   ताडागारामकूपानां वापीषुनलनीषु च।।1
   विधिं पृच्छानि देवेश देवतायतनेषु च।
   मत्स्य पुराण 58 अध्याय
   भविष्यपुराण मध्यपर्व भाग - 3 अध्याय 20
   अग्निपुराण - 64 अध्याय
   पद्म पुराण सृष्टिखण्ड 27 अध्याय
   भविष्य पुराण

प्रावृट्काले स्थितेतोये अग्निष्टोफलं स्मृतम् ।
शरत्काले स्थितं यत् स्यात्तदुत्तफलदायकम् ।
वाजपेयतिरात्राभ्यां हमन्ते शिशिरे स्थितम् ।।53
अश्वमेघधसमं प्राह बसन्तसमये स्थितम् ।
ग्रीष्मेऽपि तत्स्थिनं तोमं राजस्याद् विशिष्यते।। 54

मत्स्य महापुराणे तडागविधिनिर्माष्टपंचऽध्यायः

जिस पोखरे में केवल वर्षा का जल रहता है वह उसे जो व्यक्ति निर्मित कराता है उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है जिस तडाग में शरत्कालल तक जल उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिर काल तक जल रहने वाले तडाग को निर्मित कराने वाले व्यक्ति को वाजपेय और अतिरात्र नामक यत्र का फल मिलता है और बसन्तकाल तक टिकने वाले जलाशय का निर्माण कराने वाले व्यक्ति को अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है। तथा जिस जलाशय का जल ग्रीष्मकाल तक टिका रहता है उस तडाग के निर्माण कराने वाले व्यक्ति को राजसूय यज्ञत्र से भी ज्यादा फल प्राप्त होता है।

अतः इससे ज्ञात होता है कि तालाब बगीचा कुआं बावली आदि के निर्माण कराना अति महत्पूर्ण कार्य माना जाता था। क्योंकि इन तालाबों के निर्माण से मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु पक्षी भी उतने ही लाभान्वित होते थे। क्योंकि पशु पक्षी भी पर्यावरण के अभिन्न अंग होते हैं। अतः इनका भी उतना ही संरक्षण जरूरी होता है जितना मानव के लिए क्योंकि वृक्ष तालाब आदि के निर्माण से प्राकृतिक सन्तुलन बना रहता है। जिससे मानव तथा अन्य जीवों की दैवीय आपदाओं से सुरक्षा होती है इससे यह ज्ञात कि हमारे पुराणों में इस कार्य के सम्बर्द्धन के लिए धर्म का आश्रय लिया गया। क्योंकि तत्कालिक समाज में व्यक्ति भौतिक जगत की अपेक्षा लौकिक जगत को ज्यादा महत्व देता था। इसलिए इस प्रकार के निर्माण कार्य के लिए धर्म का सहारा लिया जाता था। जैसा कि मत्स्यपुराणमें कहा गया है।

एतान् महाराज विशेषधर्मान् करोति योऽप्यागमसुद्धबुद्धिः।
स याति रूद्रालयमाशु पूतः कल्पानेकान् दिवि मोदते च।।55

अनेकलोकान् स महत्तमादीन् भुक्त्वा परार्धद्वयमङ्गनाभिः।
सहैव विष्णोः परमं पदं यत् प्रापनेति तद्योगबलेन भूयः ।।56

मत्स्यपुराण 58 अध्याय

जो मनुष्य पृथ्वी पर इन विशेष धर्मों का पालन करता है वह शुद्ध चित्त होकर शिवलोक में जाता है और वहाँ पर अनेक कल्पों तक दिव्य आनंद का अनुभव करता है। वह पुनः परार्ध (ब्रहमा जी की पिछली आयु) तक देवाङ्गनाओं के साथ अनेक महत्तम् लोकों का सुख भोगने के पश्चात् लोकों का सुख भोगने के पश्चात् ब्रह्मा जी के साथ ही योगबल से विष्णु के परम् पद को प्राप्त करता है।

इससे यह स्पष्ट है कि तालाब आदि के निर्माण कराने व्यक्ति को सामाजिक तथा परमार्थक दोनों लाभ होते थे।

नूतन तडाग[1] का निर्माण करने वाला अथवा जीर्ण तडाग का नवीन रूप में निर्माण करने वाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है। वापी कूप तालाब बगीचा तथा जल के निर्गम स्थान को जो व्यक्ति बार-बार स्वच्छ करता है वह मुक्ति रूप उत्तम फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वापी आदि का निर्माण नहीं करता उसे अनिष्ट का भय होता है और पाप का भागी होता है। पुष्करिणी बनाने वाला अन्तफल प्राप्त कर ब्रह्मलोक से पुनः नीचे नहीं आता।

तालाब के जल को स्वच्छ रखने के लिए तालाब में कुछ जलचरों को छोडा जाता था जैसा कि भविष्य पुराण के मध्यम पर्व के द्वितीय भाग के 20-21 अध्याय में तालाबों में नागयुक्त वरुण, मकर, कच्छप आदि की मूर्तियाँ छोड़े जाने का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट है कि जल को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए तालाबों में पर्यावरण के मित्र उपरोक्त जल चरों का ताडाग में छोड़ा जाता था और तड़ाग के संरक्षण के लिए जलाशयों को दैवी रूप में स्वीकार किया गया है तथा

---

1. भविष्य पुराण मध्यम पर्व प्रथम भाग नवम् अध्याय।

तडाग में पूजन का विधान बताया गया है और उस तडाग के जल के मध्य में **जलमातृभ्यो नमः*** ऐसा कहकर जलमातृकाओं का पूजन करना चाहिए और मातृकाओं से प्रार्थना करना चाहिए कि मातृका देवियों! तीनों लोकों के चराचर प्राणियों को संतप्ति के लिए जल मेरें द्वारा छोड़ा गया है यह जल संसार के लिए आनंद दायक हो। इस जलाशय की आप लोग रक्षा करें। ऐसी ही मंगल प्रार्थना भगवान वरुण देव करे।

वृक्ष

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद् वृक्षोत्सवं बुधः।
सर्वान कामानवापनेति फलं चानत्यमश्नुते।।16
यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः
सोऽपि स्वर्गे वसेद् राजन यावदिन्द्रायुत्रयम्।17
भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् द्रुमसम्मितान् ।
परमां सिद्धिमापनेति पुनरावृत्तिभाम् ।।
य इदं श्रृणुयान्नित्यं श्रावयेद वापि मानवः।
सोऽपि सम्पूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते।।

मत्स्यपुराण वृक्षोत्सव 59वें अध्याय

जो विद्वान विधिपूर्वक वृक्षारोपण का उत्सव करता है उसकी सारी कामनायें पूर्ण होती है वह अक्षय फल का भागी होता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य इस प्रकार एक भी की स्थापना करता है वह भी जब तक तीस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं तब तक स्वर्गलोक में निवास करता हैवह जितने वृक्षों का वह अपने पहले और पीछे की उतनी ही पीढ़ियों का उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्ति रहति परम सिद्ध प्राप्त होतीहै जो मनुष्य इसके विषय में अन्य मनुष्यों का वृक्षारोपण के प्रति उत्साहित करता है वह भी देवताओं द्वारा सम्मानित तथा ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठत होता है।[1]

---

*. भविष्य पुराण मध्यम पर्व 2/20/21

1. मत्स्य. 58 अध्याय।, भविष्य. मध्यम पर्व भाग 3 अध्याय 20।, अग्नि. 764 अध्याय, पद्म. सृष्टि ख. 27 अध्याय

वृक्ष मुनियों तथा कवियों को बहुत प्रिय थे वृक्ष उद्यान रोपण-प्रतिष्ठा की सभी विधियाँ पद्म पुराण,भविष्यपुराण तथा स्कन्द पुराण में इसकी विस्तृत चर्चा हुई है। अमर सिंह तथा कालिदास ने भी इसकी विधि पूर्वक वृक्षों का रोपड़ करने से उसके पत्र, पुष्प तथा फल के रज रेणुओं से प्रतिदिन पितर तृप्त होते हैं।[1]

जो व्यक्ति छाया, फूल और फल देने वाले वृक्षों का रोपण करता है या मार्ग या देवालय में वृक्षों को लगाता हैवहअपने पितरों को बड़े से बड़े पाप से तारता है तथा इस भौतिक जगत में महती कीर्ति को अर्जितकरता है। अतः पुराणकारों की मान्यता है कि वृक्ष लगाना अति पुनीत कार्य है ऐसी मान्यता है कि जिसको पुत्र नहीं है उसके लिए वृक्ष ही पुत्र हैं। अतः व्यक्ति पुत्र विहीन होने के बाद भी वृक्षारोपण करके पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। क्योंकि जहाँ पुत्र से व्यक्ति की संतुष्टि आगे बढ़ती है वहीं जोव्यक्ति का नितान्त एकांगी मामला हो जाता है वहीं वृक्षारोपण के द्वारा समस्त जीवों का उद्धार होता है जहाँ पर वृक्षों के नीचे पथिक विश्राम करके अलने थकान को दूर करके पुनः अपने मार्ग की ओर अग्रसर होता है वृक्षों के द्वारा मानव ही नहीं बल्कि पशु पक्षी भी आश्रय पाते हैं। इसीलिए प्रायः सभी पुराणों में वृक्षों के सम्बर्द्धन को पुनीत कार्य माना गया है। क्योंकि वृक्ष पर्यावरण के अभिन्न अंग होते हैं। प्राचीन काल में पर्यावरण का इतना संकट नहीं थी फिर भी हमारे मनीषी गण पर्यावरण के प्रति बहुत ही जागरुख दिखाई देते हैं। आम व्यक्ति में वृक्षों के सम्बर्द्धन के लिए धर्म का सहारा लिया। क्योंकि धर्म के द्वारा व्यक्ति जल्दी ही इसकी महत्ता को समझने लगता है जो पर्यावरण के लिए अति उपयोगी है उन पर दैवी शक्ति का आरोपण कर पूजा का विधान बताया गया है।

अतः कतिपय पुराणों की ऐसी मान्यता है कि कोई व्यक्ति अश्वत्थ (पीपल) का एक वृक्ष लगाता है उसके लिए लाख पुत्रों से बढ़कर है अतः अपनी सदगति के लिए एकदो तीन पीपल के वृक्ष लगाने चाहिए। अशोक के वृक्ष लगाने से कभी शोक नहीं होता। पाकड़ वृक्ष दीर्घ आयु

---

1. भविष्य पुराण मध्यम पर्व प्रथम भाग 10-11 अध्याय

प्रदान करता है। जामुन का वृक्ष धन देता है तेन्दू का वृक्ष कुल वृद्धि कराता है। अनार (दाड़िम) का वृक्ष स्त्री सुख प्रदान कराता है वट वृक्ष मोक्ष प्रदान कराता है आम्र वृक्ष लगाने से सभी मनोकामनायों की पूर्ति होती है। कदम्ब वृक्ष के रोपण से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शमी वृक्ष रोग नाशक है। केशर से शत्रु का विनाश होता है। शीशम अर्जुन जयन्तो करवीर बेल तथा पलाश वृक्षों के आरोपण से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। विधि पूर्वक वृक्ष का रोपण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा वृक्षरोपण कर्ता के तीन जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं सौ वृक्षों का रोपण करने वाला ब्रह्मा के स्वरूप हो जाता है तथा हजार वृक्षों का रोपण करने वाला विष्णु के स्वरूप हो जाता है।

अतः इससे ज्ञात होता है कि पुराण कालीन समाज में व्यक्ति पर्यावरण के प्रति काफी सचेत था क्योंकि पुराणों के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पुराण कालीन समाज में पर्यावरण के सन्तुलन को बनाये रखने के लिए वृक्षों को अति महत्ता दी गयी थी क्योंकि जो वृक्ष पर्यावरण के लिए अति उपयोगी हैं। उन वृक्षों में दैवीय रूप प्रत्यारोपित किय ागया है क्योंकि ऐसा ज्ञात है कि जन साधारण के द्वारा पर्यावरण को सन्तुलित रखने के लिए किसी ठोस आधार की आवश्यकता थी धर्म से बढ़कर इसके संरक्षण का और कोई माध्यम नहीं हो सकता था। अतः पुराणकारों ने वृक्षरोपण को एक धार्मिक कर्तव्य बताया है। अतः जो व्यक्ति इन वृक्षों को क्षति पहुँचाता था उसके लिए पाप का विधान बताया गया है जैसे - अश्वत्थ (पीपल) वटवृक्ष तआथ श्रीवृक्ष को क्षति पहुँचाने वाला व्यक्ति ब्रह्मघाती कहलाता है।

दसवाँ अध्याय

परिशिष्ट

पर्यावरण एवं वृक्ष

पर्यावरण एवं कालिदास का साहित्य

पर्यावरण एवं पर्यटन

पर्यावरण एवं वृक्ष

हमारे सौर मण्डल में पृथ्वी ही एक भाग ऐसा ग्रह है जो हरा भरा है पृथ्वी की हरियाली वृक्षों के कारण है। वन एवं वन्य प्राणियों का बड़ा प्राचीन सम्बन्ध रहा है। जीवित रहने के लिए वृक्ष मनुष्य प्राण वायु के रूप में आक्सीजन प्रदान करते हैं और आरोग्यता हेतु प्राणदायिनी जड़ी-बूटी प्रदान करते हैं और क्षुधा शान्त करने के लिए कन्द-मूल फल आदि वृक्षों की ही देन है। पर्यावरण सन्तुलन हेतु विषैली गैसों को पीकर प्राणवायु के रूप में अमृत उगलने का सत्कार्य भी वृक्ष ही करते हैं।

भारतीय धर्म और संस्कृति में अनेक वृक्ष पूजनीय माने गये हैं अनेक वृक्षों में देवता का वास स्वीकार किया गया है। तुलसी का पौधा विष्णु प्रिया के रूप में घर-घर पूजनीय है तो केले का पौधा गुरू वृहस्पति की पूजा का प्रतीक माना जाता है। सन्तान प्राप्ति के लिए बरगद पूजा का विधान है।

आनन्द पुराण में पीपल के वृक्ष में ब्रह्मा विष्णु और महेश का वास बताया गया है। वैज्ञानिक भी इस मत से सहमता है कि तुलसी और पीपल जैसे वृक्ष अधिक मात्रा में आक्सीजन देते हैं। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है - ***"अश्वत्थः सर्व वृक्षाणाम"*** अर्थात वृक्षों में मैं पीपल हूँ। पीपल और बरगद का विशाल वृक्ष थके हारे पथिकों को न केवल छाया प्रदान करते हैं वरन वातावरण में प्रचुर मात्रा में आक्सीजन छोड़ते हैं। भक्त जनों तथा देवताओं के तिलक लगाने में चन्दन वृक्ष का प्रयोग किया जाता

है। हवन में सनिधा के रूप में पीपल, बरगद, शमी, पाकड़ आदि की लकड़ी तथा बेल नीबू धतूरा आदि वृक्षों का फल आहुतियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। शास्त्रों में वरुण देवता का वास खजूर वृक्ष तथा बादलों के आहवान के लिए जम्बू वृक्ष का प्रयोग किया जाता था। वृक्ष और बगीता की प्रतिष्ठा से पापों का नाश होता है।

वृक्षों के प्रति असीम प्रेम से प्रेरित होकर श्री राम चन्द्र ने दंडकवन, श्री कृष्ण ने वृंदावन शौनकादि ऋषियों ने नैमिषवन में वास किया। वृक्ष अपनी उपयोगिता के कारण सदा से बन्दनीय रहे हैं कुछ वृक्षों का वर्णन पुराणों तथा धर्म ग्रन्थों में इस प्रकार रहा है।

वाराह पुराण में वृक्षारोपण का स्वर्ग प्राप्त का साधन बताकर इस पक्ष की पुरजोर सिफारिश की गयी है। **मत्स्य** एवं **पदमपुराण** में भी वृक्षारोपण समारोह का वर्णन कर इसकी **वृक्षमहोत्सव** नाम दिया। वृक्षारोपण के महत्व को मत्स्य पुराण में एक वृक्ष लगाकर दस पुत्र के बराबर महत्व बताया है।

भारतीय लोग प्रकृति को दैवीय रूप में स्वीकार करते हैं। इसी आधार एवं विश्वास के कारण भारत में विभिन्न पेड़ एवं पौधों की पूजा की जाती हैं। कुछ विशेष पेड़ एवं पौधों में देवताओं का निवास माना जाता है। नरसिंह पुराण में पेड़ों को वृहन के रूप में मानवीकृत किया गया है। अर्थववेद में ऐसी धारणा स्पष्ट है कि पीपल के वृक्ष में ढेर सारे देवता निवास करते हैं।

विभिन्न वृक्षों को देवीयों एवं देवताओं से सम्बन्धित माना गया है जो निम्नवत है -

(1) अशोक - बुद्ध, इन्द्र, विष्णु, आदित्स आदि।

(2) पीपल - विष्णु लक्ष्मी, वान दुर्गा इत्यादि

जीवन की जरूरत के रूप में एवं अन्य विशुद्ध आनन्द के रूप में मानते हैं।

प्रकृति पहले से ही बोझिल हो चुकी है अतः हमें इस प्रकृति के प्रति आपराधिक गतिविधि के तुरन्त रोकना होगा क्योंकि पहले ही बहुत देर हो चुकी है।

तुलसी

तुलसी एक बहुश्रुत उपयोगी वनस्पति है। भारतीय धर्म संस्कृति में तुलसी अति पवित्र और महत्वपूर्ण है। प्रत्येक हिन्दू के घर-आँगन में तुलसी का पौधा होना, घर की शोभा, घर के संस्कार, पवित्रता तथा धार्मिकता का अनिवार्य प्रतीक है। मात्र भारत में ही नहीं वरन् विश्व के कई अन्य देशों में भी तुलसी को पूजनीय तथा शुभ माना गया है। समस्त वृक्षों और वनस्पतियों में सर्वाधिक धार्मिक आध्यात्मिक आरोग्य लक्ष्मी एवं शोभा की दृष्टि से तुलसी को मानव-जीवन में महत्वपूर्ण, पवित्र तथा श्रद्धेय स्थान मिला है। यह भगवान नारायण को अति प्रिय है। वृन्दा विष्णुप्रिया, माधवी आदि भी इसके नाम हैं। धार्मिक आध्यात्मिक महत्ता तो इसकी है ही आरोग्य प्रदान करने में भी इसका विशेष स्थान है। इसीलिए यह 'आरोग्य लक्ष्मी' भी कहलाती है।

प्रदूषित वायु के शुद्धिकरण में तुलसी का विलक्षण योगदान है। यदि तुलसी वन के साथ प्राकृतिक चिकित्सा की कुछ पद्धितियाँ जोड़ दी जायें तो प्राण घातक और दुःसाध्य रोगों को भी निर्मूल करने में सफलता मिल सकती है।

तुलसी शारीरिक व्याधियों को तो दूर करती ही है साथ ही मनुष्य के आन्तरिक भावों और विचारों पर भी कल्याणकारी प्रभाव डालती है। तुलसी के पौधे में मच्छरों को दूर भगाने का गुण है और इसकी पत्तियाँ खाने से मलेरिया दूषित तत्वों का मूलतःनाश

होता है। तुलसी और काली मिर्च काढ़ा बनाकर पीने के सरल प्रयोग से ज्वर दूर किया जा सकता है।

निसर्गोपचारकों का कहना है कि तुलसी की पत्तियों का दही या छाछ के साथ सेवन करने से वजन कम होता है, शरीर की चरबी कम होती है अतः शरीर सुडौल बनता है साथ ही थकान मिटती है। दिन भर स्फूर्ति बनी रहती है रक्त कणों में वृद्धि होती है।

ब्लडप्रेशर के नियमन, पाचनतंत्र के नियमन तथा रक्तकणों की वृद्धि के अतिरिक्त मानसिक रोगों में भी तुलसी के प्रयोग से असाधारण सफल परिणाम प्राप्त हुए हैं।

पीपल

पद्म-पुराण के अनुसार पीपल को प्रणाम और इसकी परिक्रमा करने से आयु लम्बी होती है। इसमें सब तीर्थों का निवास भी माना गया है। इसी विश्वास के कारण हिन्दू अपने मुण्डन आदि संस्कार पीपल के नीचे करवाते हैं और पीपल का वृक्ष धार्मिक चहल-पहल का स्थान बन जाता है।

ऐसी धारणा है कि जो व्यक्ति इस वृक्ष को चुल्लू भर पानी देता है वह भी करोड़ों पापों से छुटकारा पाकर स्वर्ग को जाता है।

पीपल को देव वृक्ष कहा गाय है कहते हैं कि इस वृक्ष में भगवान का निवास है।

तुलसी के अतिरिक्त पीपल ही ऐसा वृक्ष है जो दिन रात आक्सीजन प्रवाहित करता है। यह अशुद्ध वायु अर्थात वातावरण की कार्वन द्विओबिद को ग्रहण करता है और दिन रात शुद्ध वायु छोड़ता है। शायद यही कारण है कि हिन्दू धर्म में पीपल की लकड़ी काटना जलाना पाप समझा जाता है। पीपल की रक्षा के लिए ही सम्भवतः उसमें ब्रह्मा

आदि देवताों के निवास की कल्पना की गई और कालान्तर में उसमें ब्रह्म राक्षस का निवास भी कल्पित कर लिया गया ताकि लोग भयभीत होकर इस वृक्ष का हानि न पहुँचाये।

बेल (बिल्व)

बिल्व वृक्ष प्रायः धार्मिक स्थानों विशेषकर भगवान शङ्कर के उपासना स्थलों पर लगाने की भारत में एक प्राचीन परम्परा है। यह वृक्ष अधिक बड़ा न होकर मध्यम आकार वाला होता है। शाखाओं पर तीक्ष्ण कांटे होते हैं। पत्ते तीन-तीन कभी-कभी पाँच-पाँच के गुच्छे में होते हैं। बेल क़ा फूल सफेद तथा सुगन्धपूर्ण होता है।

श्री शिव-पुराण के अन्तर्गत बिल्व माहात्म का वर्णन इस प्रकार किया गया है

बिल्वमूले महादेवं लिङ्गरूपणि मव्ययम् ।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्रापुयाद ध्रुवम् ।।

विल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिञ्चयति।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुति पावनः।।

श्री शिवपुराण श्लोक -13-14

अर्थात बिल्व के मूल में लिङ्गरूपी अविनाशी महादेव का पूजन जो पुण्यात्मा पुरूष करता है उसे शिव जी ही कल्याण की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य सब तीर्थों में स्नान का फल मिलकर पवित्रता प्राप्त होती है।

नीम

नीम एक बहुउपयोगी वृक्ष है। इसकी जड़ से लेकर फूल-पत्ती और फल तक सभी अवयव औषधीय गुणों से भरे-पूरे हैं। भारत वर्ष के गरीब लोगों के लिए यह कल्प वृक्ष है। इसके निम्न गुण हैं -

जड़ - नीम की जड़ को पानी में ऊबाल कर पीने से बुखार दूर होता है।

छाल- नीम की बाहरी छाल पानी में घिसकर फोड़े-फुँसियों पर लगाने से वे जल्दी ठीक होते हैं।

दातौन - प्रतिदिन नीम की दालौन करने से मुँह की बदबू दूर होती है। दाँत और मसूड़े मजबूत होते हैं।

पत्तियाँ - दिन में सूर्य किरणों उपस्थित में नीम की पत्तियाँ आक्सीजन छोड़कर हवा शुद्ध करती हैं। इसलिए गर्मियों में नीम की पेड़ की छाया में सोने से शीतलता मिलती है तथा शरीर निरोग रहता है।

नीम की पत्तियों को संचित अनाज में मिलाकर रखने से उनमें घुन, ईली तथा खपरा आदि कीड़े नहीं लगते। नीम की सूखी पत्तियों के धुएँ से मच्छर भाग जाते हैं।

नीम की पत्ती की खादपेड़ पौधों को पोषक तत्व प्रदान करती है तथा जमीन में उपस्थित दीमक को भी समाप्त करती है।

रूद्राक्ष

रूद्राक्ष एक प्रकार का जंगली फल है, जो बेर के आकार का दिखायी देता है तथा हिमालय में उत्पन्न होता है। रूद्राक्ष नेपाल में बहुतायत पाया जाता है।

रूद्राक्ष की उत्पत्ति के विषय में पुराणों और ग्रन्थों में कहा गया है कि त्रिपुर नामक दैत्य बहुत ही दुष्ट था, उसने समस्त देवलोक में आतंक मचा रखा था। एक दिन समस्त देवताओं ने भगवान रूद्र अर्थात शङ्कर के पास जाकर त्रिपुर के आतंक से देवलोक की रक्षा करने की प्रार्थना की तब भगवान शङ्कर ने देवताओं की रक्षा के लिए दिव्य और

ज्वलंत महाघोर रूपी अघोर अस्त्र का चिंतन किया। इस चिंतन के समय भगवान रूद्र नेत्रों से आँसुओं की बूँदे पृथ्वी पर गिरीं जिससे रूद्राक्ष वृक्ष की उत्पत्ति हुई।

इसकी प्रकृति और वर्गानुसार ही मनुष्यों को रूद्राक्ष धारण करना चाहिए अर्थात ब्राह्मण को सफेद रंग का क्षत्रिय को लाल रंग का वैश्य को मिश्रित रंग का शूद्र को श्याम रंग का धारण करना श्रेष्ठ है।

रूद्राक्ष शिव के नेत्रों से उत्पन्न हुआ फलदायिनी वृक्ष है जो समस्त सुखों को देने वाला तथा समस्त दुःकों से मुक्ति प्रदान करने वाला है।

ब्रह्म वृक्ष - पलाश

वेदों में पलाश को ब्रह्मवृक्ष कह कर उसे बहुत महत्व दिया गया है और मंत्रदृष्ट ऋषियों का पलाश के प्रति कितना आदर भाव था उसका किंचित भाव निम्न मन्त्र द्वारा प्राप्त होता है -

ब्रह्म वृक्ष पलाशस्त्वं श्रद्धां मेधा च देहि में।
वृक्षाधियों नमस्तेऽसु त्वं चात्र सन्निधो भव।।

अर्थात हे पलाश रूपी ब्रह्मवृक्ष! आप श्रद्धा और मेधा प्रदान करें। आपको मेरा नमस्कार है। मैं इस वृक्ष में आपका आह्वान करता हूँ। इसमें आप संनिहित हो जाएं।

पलाश एक औषधीय वृक्ष है। सि वृक्ष के पत्र बड़े प्रशस्त्र मनोहर एवं सुन्दर होते हैं अतः इसका नाम पलाश पड़ा रक्त पलाश तथा श्वेत पलाश आदि इसके कई भेद हैं। इसके छाल, क्षार, बीज, काण्च पत्र पुष्प तथा निर्पास आदि का उपयोग होता है।

पर्यावरण एवं कालिदास का साहित्य

कालिदास के साहित्य में पर्यावरण की बहुत चर्चा की गयी है। कालिदास का रचना सृजन काल तथा कुछ पुराणों कासृजन लगभग एक ही समय में हुआ है। अतः उस समय के प्राकृतिक पर्यावरण के अध्ययन के लिए कालिदास के साहित्यों में वर्णित प्रकृति की छटा का वर्णन यहाँ अपेक्षित है।

मेघदूत

कालिदास के मेघदूत में कुबेर के **'साप'** से स्थान भ्रष्ट एक यक्ष एक वर्ष तक के लिए स्निग्ध छाया से युक्त रामगिरि पर निवास करता है। वह आसाढ़ मास के प्रथम दिन शिखर से लिपटे हुए मेघ को देखकर प्रियतमा के वियोग में विहवल हो जाता है। मेघ को चेतना मानकर प्रियतमा को अपना संदेश भेजता है। प्रत्यग्र (ताजा) कुटुज कुसुम से अर्ध्य की कल्पना करता है। मेघ धूम ज्योति सलिल मरूत का सन्निपात होकर चेतनावत् प्रतीत होता है वह कहता है -

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकनां
जानामि त्वं प्रकृति पुरूषम् कामरूपं मघोनः।

तेनार्थित्वं त्वयि विधिविशारद् दूरबन्धऊर्गहोऽहं,
याचजा मोघा वरमाधिगुणे नाघमे लब्धकामा।।6।।

(यक्ष बादल की लड़ाई करते हुए अपनी बातें प्रारंभ करता है) हे मेघ! तुम

लोकों में प्रसिद्ध पुष्कर आर्वतक नाम के बादलों के कुल में पैदा हुए हो, मैं तुमको जानता हूँ तुम इन्द्र के मन्त्रियों में से हो, और अपनी इच्छा के अनुसार और अपनी इच्छा के अनुसार अपना रूप धारण कर सकते हो। तुम्हारी कुलीनता और बड़प्पन समझकर भाग्य का मारा मैं जो अपने प्रिय जन से बिछुड़कर दूर देश में पड़ा हूँ तुम्हारे निकट प्रार्थी (याचक) बना हूँ। क्योंकि गुणवान से की गयी याचना यदि निष्फल हो जाय तो भी अच्छा है गुण अवगुण का भेद न समझने वाले ओछे व्यक्ति के यहाँ याचना पूरी हो तो भी उससे प्रार्थना करना ठीक नहीं।

त्वामारूढं वपनपदवीमुद्‌गृहीतालकान्ताः

प्रेक्षिष्न्ते पथिक वनिताः प्रत्यादाश्वसत्यः।

कः सन्नद्धे विरहविधुराम त्वय्युपेक्षेत जायां

न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः।।पूर्वमेघ ।।8।।

(हे मित्र! प्रिया के लिए मेरा सन्देश लेकर जब तुम आगे बढ़ोगे तब) रमणियाँ जिनके पति विदेश में है, इस विश्वास से इस असाढ़ को देखकर मेरे कान्त घर को चल पड़े होंगे और अवश्य ही राह में होंगे। सुख की सांस लेती हुई तथा आंख पर लटकी हुई अलकों को ऊपर संवार कर प्रसन्न आँखों से तुमको आकाश में उड़ता हुआ देखेंगे। आसाढ़ के दिन जब तुम उमड़-घुमड़ कर आकाश में छा जाते हो तब कौन है जो विरह से सताई अपनी प्रिया को उपेक्षा करेगा। कोई भी दूसरा ऐसा नहीं कर सकता, केवल उसको छोड़कर जो जन मेरी तरह अपने कर्म में परतंत्र न हो।

यक्ष मेघ की यात्रा में वायु आनुकूल्य का वर्णन करता है। चाचक और बलाकाओं के सहयोग का भी वर्णन करता है। बलाकाओं और राजहंसों-

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्व

वामश्चायं नदति मधुरं चाकस्ते सगन्धः।

गर्भाधानलक्षय रिचपान्नूनमाबद्धमालाः

सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भवन्तुं बलाकाः।।10।। पूर्वमेघ

(मित्र! देखो चारो ओर तुम्हारा स्वागत ही स्वागत है) हवा तुम्हारे अनुकूल है और जैसे ही वह एक ओर तुमको धीरे-धीरे आगे बढ़ने को प्रेरित कर रहा है। बायीं ओर से तुम्हें देखकर प्रसन्नता से भरा यह पपीहा मीठी आवाज लगा रहा है और थोड़ा आगे बगुलियाँ अपने गर्भाधान के समय को जानकर निश्चित ही कतार बांधकर आकाश में उड़ेगी और आंखों के सुहावने तुमको भर आंखे देखती हुई तुम्हारी छाया में बिहार करेंगी।

कर्त यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां,
चच्छु त्व ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।

आकेलासा द्रिस किसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ।।11।। पूर्वमेघ

तुम्हारे जिस मधुर-मन्द गर्जन के होते ही कुकरमुत्ते धरती फोड़कर ऊपर निकलने लगते हैं और पृथ्वी में खूब अन्न पैदा होने की जानकारी मिलनें लगती है, कानों को प्रिय लगने वाले उस गर्जन को सुनकर (वर्षाकाल का आगमन जानकर) राजहंस मानसरोवर जाने के लिए उतावले हो जायेगें। और अपने चोचों में रास्ते का भोजन-कमलनाल का तन्तुओं के टुकड़े को दबाये हुए आकाश में उड़ेंगे। इस लिए वे कैलाश पहाड़ तक रास्ते में तुम्हारे स्वामी बनेगें। (यक्ष) सम्पूर्ण कृषि कार्य मेघ के आदेश से होता है। मेघ की प्रतीक्षा में कामनियाँ पलकें बिछायें रहती हैं इस सन्दर्भ में अधोलिखित श्लोक -

त्वय्यात्तं कृषिफलमिति भ्र निकारानभित्रैः

प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।

साद्यः सीरोत्कषण सुरभि क्षेत्रमारुध्यमालं
किञ्चितत्पश्चाद ब्रज लघुगर्तिभूय एवतोत्तरेण।।16।। पूर्वमेघ

अब थोड़ा पश्चिम की ओर मुड़ जाता वहाँ माल भूमि होगी जहाँ गाँव की ललनायें यह जानती है कि खेती की उपज तुम्हारे अधीन हैं - पानी बरसने पर निर्भर हैं इसलिए तुमको देखते ही भोली भाली चितवन में अनुराग से भीगी आँखों से टकटकी बांधकर तुम्हारे रूप को पियेंगी। तुम हल के अभी जोते हुए सोंधी महक बगारते उनके खेतों पर बरस कर हलके होकर तेज गति से फिर उत्तर की ओर चल देना।

मेघ की पर्यावरण का मुख्य अंग है वृष्टि से ही वन हरे भरे रहते हैं। नदियों में जल प्रवाहित होता है। उद्यानों में पुष्पादि विकसित होते हैं। इस सन्दर्भ में मेघ के प्रति यक्ष का अनुरोध बहुत ही मनोहारी है -

विश्रान्तः सन् व्रज ननदीतीरश्रातानि सिञ्चन
उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानिः।।

गण्डस्वेदापनयनरूजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादामात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम ।।27।। पूर्वमेघ

नीचे पहाड़ पर आराम करने के बाद आगे चलना वहाँ से आगे चलना वहाँ से चलते हुए नदियों के किनारे बगीचों में लहलहाई लता की कलियों अपनी बूंदों से सींच देना और उनमें फूल तोड़ती हुई मालिनियों के मुखों पर छायाकार उनसे परिचय का आनन्द लेना, जिनके कानों में पहने हुए कमल के फूल धूप में गालों से बहते हुए पसीनों से लथ-पथ पोछने में मुरझा गये हैं।यक्ष मेघ से कहता है कि यद्यपि तुम्हें असुविधा हो सकती है किन्तु फिर भी अपने मार्ग से थोड़ा हटकर उज्जैनी नगरी जाकर वहां की ललनाओं के लोचनापांगों से देखे जाने वाले सुख को मत छोड़ना।

वक्रः पन्था यद्यपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः।

विद्युद्दामस्फुरति चकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलयाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्विञ्चतोसि।।पूर्वमेघ।।28।।

यहाँ से अब उत्तर दिशा के यात्री हो, इसलिए उज्जैनी की ओर जाने में यद्यपि तुम्हारा रास्ता टेढ़ा हो जायेगा तो भी तुम उज्जैनी के ऊंचे भवनों के आलिंगन के अनुसार से अपने को विमुख न करो। ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि तुम्हारा जीवन असफल रह जायेगा अगर तुमने उस नगर की ललनाओं की से खिलवाड़ न किया हो। जो बिजली की रेखाओं के चमकने से चकाचौंध हो जायेंगी और चंचल कटाक्षों से भर उठेगी।

कवि कालिदास ने नदियों को भी सजीव चेतना युक्त माना है। यक्ष के मार्ग में गंभीरा नदी पड़ती है गंभीरा के ऊपर मेघ की छाया पड़ने का एक सुन्दर बिम्ब कवि ने इस प्रकार किया है -

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्माऽपि प्रकृति सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं
धैयान्मोधीकुर्तं चटुलशफयेर्द्धनप्रेक्षितानि।।44।।पूर्वमेघ

हे मेघ आगे गम्भीरा नदी पड़ेगी उसका जल चित्त के समान निर्मल है। तुम्हारे सहज मनभावने शरीर की परछाई के रूप में तुम्हारी आत्मा उसके जल में अवश्य प्रतिबिम्बित होगी। तब यह नदी भी किलोल करती चंचल मछलियों के रूप में कुमुद के फूल जैसी उज्जवल अपने चितवन से तुम्हारी ओर देखेंगी। इस लिए तुमको यह उचित नहीं होगा कि कहीं काम के प्रति संयम भाव रखकर उसकी उस चितवन का निरादर कर दो।

तस्याः किञ्चित्करघृतमिव प्राप्त वानीरशाखं नीत्वा
नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितिम्बम् ।

प्रस्थानं ते कथमणि सखे! लम्बमानस्य मावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।। 45।। पूर्वमेघ

गम्भीरा नदी का जल सूखकर तट के नीचे बेंत की शाखाओं को छूता हुआ प्रवाहित हो रहा होगा। उसे देखकर तुम अनुभव करोगे कि जल नदी के तट रूपी नितम्ब से नीलावस्त्र खिसककर नीचे चला गया जिसे यह अपने बेंत की खाशा रूपी हांथों से लज्जाबस पकड़कर सम्हाले हैं। जिससे कहीं बिल्कुल नंगी न हो जाये। उस सिमटे हुए जल को पीकर एक ओर तो तुम अपने वस्त्र को हटाकर नंगी कर दोगे। दूसरी ओर स्वयं जलाभार से बोझिल हो जाओगे। फिर तो वहाँ से आगे के लिए तुम्हारा बड़ी मुस्किल से हो पायेगा भला कौन जवान जिसे रति-सुख का अनुभव है वह खुली जंघावाली तरूणी का तिरस्कार कर देगा।

यक्ष मेघ से कहता है कि यद्यपि तुम्हें असुविधा हो सकती है किन्तु फिर भी अपने मार्ग से थोड़ा हटकर उज्जैनी नगरी जाकर वहाँ की ललनाओं के लोचनापांगों से देख जाने वाले सुख को मत छोड़ना।

वक्रः पन्था यद्यपि भवतः प्रस्थितत्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरूज्जयित्याः।
विद्युद्दामस्फूरतिचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां लोलायङ्गैयदि
न रमे लोचनैर्वञ्चितोसि।।28।। उत्तरमेघ

यहाँ से अब उत्तर दिशा के यात्री हो, सि ओर उज्जैनी की ओर जाने में यद्यपि कि तुम्हारा रास्ता टेढा हो जायेगा तो भी तुम उज्जैनी के ऊँचे भवनों के आलिंगन के अनुराग से अपने को विमुख न करो। ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि तुम्हारा जीवन असफल रह जायेगा अगर तुमने उस नगर की ललनाओं की आँखों से खिलवाड़ न किया हो जो तुम्हारी बिजली की रेखाओं के चमकने से चकाचौंध हो जायेगी और चंचल कटाक्षों से भर

उठेगी।

कवि कालिदास ने नदियों को भी सजीव चेतना युक्त माना है यक्ष के मार्ग में गंभीरा नदी पड़ती है गंभीर के ऊपर मेघ की छाया पड़ने का एक सुन्दर बिम्ब कवि ने इस प्रकार किया है -

गंभीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने छायात्माऽपि
प्रकृति सुभगो लप्स्यते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदार्न्यहसि त्वं धैयान्मोधीकर्तुं
चटुलशफरोद्वर्तन प्रेक्षतानि ।।44।। उत्तरमेघ

हे मेघ आगे गम्भीरा नदी पड़ेगी उसका जल चित्त के समान निर्मल है। तुम्हारे सहज मनभावने शरीर की परछाई के रूप में तुम्हारी आत्मा उसके जल में अवश्य प्रतिबिम्बित होगी। तब यह नदी किलोल भी करती चंचल मछलियों के रूप में कुमुद के फूल जैसी उज्जवल अपने चितवन से तुम्हारी ओर देखेगी। इस प्रकार तुमको यह उचित नहीं होगा कि कही काम के प्रति संयम भाव रखकर उसकी उस चितवन का रिादर कर दो।

तस्याः किञ्चित्करघृतमिव प्राप्त वानीरशाखं नीत्वा
नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितिम्बम् ।
प्रस्थानं ते कथमणि सखे! लम्बमानस्य मावि
ज्ञातास्वाते विवृतजघनां को विहातुं समर्थः।। 45।। उत्तरमेघा

गम्भीरा नदी का जल सूखकर तट के नीचे बेंत की शाखाओं को छूता हुआ प्रवाहित होता रहा होगा उसे देखकर तुम अनुभव करोगे कि जल नदी के तट रूपी नितम्ब से नीलावस्त्र खिसकर नीचे चला गया है जिससे वह अपनी बेंत की शाखा कपी हाथों से लज्जावश पकड़ कर सम्हाले। उस सिमटे हुए जल को पीकर एक ओर तो तुम अपने वस्त्र को हटाकर नंगी कर दोगे। दूसरी ओर स्वयं जलभाल से बोझिल हो जाओगे। फिर तो वहाँ से आगे के लिए तुम्हारा प्रस्थान बड़ी मुश्किल से हो पायेगा भला कौन जवान जिसे रति-

सुख का अनुभव है वह खुली जंघा वाली तरूणी का शिकार कर देगा।

यक्ष मेघ के अलकापुरी का परिचय देता है कि अलकापुरी के लोग पूरी तरह से प्रकृति से एकीबूत है। उनके जीवन में प्रकृति सवर्त्र विद्यमान है। स्त्रियों प्राकृतिक उपकरणों से ही अपना श्रँगार करती है।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविदधम्
नीता लोघ्रप्रसवरजसा पाण्डुतामनने श्रीः
चूडापाश्वे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं बधुनाम् ।।2।। उत्तरमेघ

जहाँ (अलकापुरी में) बहुओं के हाथ में क्रीडाकमल अलकों (घुंघराले केशों) नवीन कुन्द (नामक पुष्पों) का गुम्फन मुख पर लोघ्र पुण्य पराग से की गयी शुभ्र कान्ति जुडे में नवीन कुरबक (नामक पुष्प) कान में सुन्दर शिरीष माँग में तुम्हारे (मेघ के) आगमन से उत्पन्न कदम्ब (नामक पुष्प) रहते हैं।

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा निसपुष्पाः
हंसश्रेवीरचिंतरशना नित्यपद्मा ललिन्यः।
केकोत्कण्ठी भवन शिखनो नित्यभास्वत्कलाया।
नित्यज्योत्नाः प्रतिहततमोंवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ।।3।। उत्तरमेघ

जहाँ (अलकापुरी) सदा वृक्ष पुष्पों से युक्त मतवाले भ्रमरों के गुञ्जन से युक्त हैं। कमलनिधियाँ (अथवा बावलियाँ) सदा कमलों से युक्त हंसों की पंक्तियों से उनकी कटघनी बनी है। घरों के (पालतू) मोर सदा चमकने वाले पंकों से मुक्त अतः बोलने के लिए ऊपर गला उठाये हुए हैं राते सदा चांदनी से युक्त (अतः) अंधकार के प्रसार के नष्ट हो जाने से रमणीय है।

अलकापुरी में नेत्रों में आंसू आनन्द के कारण आते हैं वियोगजन्य दुःख के

अतिरिक्त कोई दुख नहीं होता है प्रणयकलह के अतिरिक्त कोई कलह नहीं होती, वहाँ नित्य यौवन विराजमान है। मन्दाकिनी के सलिल शीतल से उनकी ऊष्मा शान्त होती है। मन्दार पुष्पों से उन्हें छाया प्राप्त होती है। यक्ष लोग प्रकृति के साथ एकीभूत हैं। पुष्पपत्र ही उनके आभूषण हैं। स्त्रियों का रात्रिकालीन घर के बाहर प्रिय मिलन अलकों से गिरे हुए मन्दार पुष्पों पल्लवों और कानों से गिरे हुए कनक कमलों से सूचित होता है कि उन्हें स्वयं कल्पवृक्ष श्रृँगारोपकरण प्रस्तुत करता है। भगवान शिव के डर से कामदेव षटषद्ज्य (भौरों) धारण करने में संकोच करता है। यक्ष के घर के निकट हस्तप्रात्य स्तंभमनिक मंदार वृक्ष लगा है। उसी घर में मरकतशिला बद्ध सोपान मार्गी एक वापी है। जिसमें स्निग्ध वैदूर्य के समान नाल वाले स्वर्णिम विकसित कमल शोभित है हंस इसे मानसरोवर समझकर वहीं वास करते हैं। उसके निकट इन्द्रनील से रचित शिखरवाला कनक कदली के आलवाल वाला क्रीड़ाशील है। वहीं पर चल किसलय रक्ता शोक है वहीं कान्त केसर हैं दोनों कुरबक से घिरे माघवी मण्डप से घिरे हैं। वापी के मध्य में स्फटिकफल का काचनी वासयष्टि है। जिसका आलवाल पके बांस के रंगवाले मणियों से जटिल है। वासयष्टि के ऊपर मयूर बैठता है। दक्षिणी से पुत्र रूप मानकर सिंजावलय युक्त तालों से नाचती है। परिचय के अनंतर मेघ को अपनी प्रियतमा की पहचान बताता है।

मेघदूत में कालिदास ने प्रकृति के विविध उपकरणों को संचेतन स्वीकारा है। पर्यावरण की उत्तमता का तथा सजीवता का शायद ही कहीं ऐसा रूप मिलता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

शाकुन्तल में शान्त वातावरण का बहुत ही रमणीय वर्णन मिलता है ग्रीष्म समय का एक वर्णन इस प्रकार है-

सुमगसलिलावगृहाः पाटलसंसगसुरभिवनवाताः।
प्रच्छायासुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।।3।।

अभिज्ञानशाकुन्तल प्रथम सर्ग श्लोक - 3

जल में स्नान सुखकर ज्ञात होता है गुलावों के संपर्क से बन की वायुयें सुगन्ध युक्त होती हैं, घनी छाया में नींद सरलता में आ जाती है और दिन सायंकाल के समान मनोहर होते हैं।

ईषदीषच्चुबितानी भ्रमरैः सुकुमारकेसरशिखानि।
अवतंसयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीषकुसुमानि।।4।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम प्रथमसर्ग श्लोक संस्था 4

युवतियाँ दयाभाव से भौरों के द्वारा कुछ-कुछ आस्वादित कोमल केसर शिखा युक्त शिरीष के फूलों का कान का आभूषण बना रही है।

राजा दुष्यन्त कण्व के आश्रम में शिकार का पीछा करते हुए पहुंचते हैं। लेकिन वन्य पशुओं के प्रति दया का भाव प्रकट करते हुए वैखानस शिकार का विषेध करता है।-

क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते।।10।।

अभिज्ञानशाकुन्तल प्रथम सर्ग श्लोक 10

तपस्वी हाँथ उठाकर कहता है, राजन यह आश्रम का मृग है, इसे न मारिये। इस सुकुमार मृग के शरीर पर पुष्पराशि पर अग्नि के तुल्य बाण न चलाइये न चलाइये। खेद की बात है कि कहाँ तुक्ष्ण हरिणों का अतिचंचल जीवन और कहा तीक्ष्ण प्रहार करने वाले वज्र के तुल्य कठोर आपके बाण।

तत साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तमनागसि।।11।।

शाकुन्तल प्रथम सर्ग 11 श्लोक

अच्छे प्रकार से धनुष पर चढ़ाये हुए अपने बाण को उतार लीजिए। आपका शस्त्र दुःखितों की रक्षा के लिए है निरपराधों पर प्रहार के लिए नहीं।

इस प्रकार आश्रम का वर्णन करते हुए दुष्यन्त आश्रम में वन्य जीवों के निश्चिन्तता का वर्णन करते हैं।

> नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरुणामधः
> प्रस्निग्धाः क्वचिदिङ्गदीफलभिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
>
> विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा
> स्तोयाधारयथाश्च बल्कलशिकानिष्पन्दरेखाङ्गिताः

शाकुन्तल प्रथम सर्ग श्लोक संख्या 14

तोतों से युक्त घोषलों (या कोटरों) से अग्र भाग से गिरे हुए नीवार (जंगली धान) वृक्षों से नीचे (दिखाई) देते हैं। कहीं इंगुदी (गूँदी) के फलों को तोड़ने वाले चिकने पत्थर दिखाई पड़ ही रहे हैं। (कहीं पर) विश्वस्त होने के कारण निःशंक गति से मृग (रथ के) शब्द को सुन रहे हैं और (कहीं पर) सरोवरों के मार्ग वल्कलों के अग्रभाग से टपकते हुए जल की रेखा से चिन्हित हैं।

> कुल्याम्भोभिः पवनचपलैः शाखिनो धौतमूला
> भिन्न रागः किसलयरुचामाज्यधमोद्गमेन।
>
> एते चार्वगपवनभुवि च्छिन्नदर्भाकुरायां
> नष्टाशंका हरिणशिशवो मन्दमन्दं चरन्ति।।15।।

शाकुन्तलम् प्रथमोडङ्क श्लोक संख्या 15

वायु के कारण चंचल नहर के जल से वृक्षों की जड़ धुली हुई है। यज्ञ के घी के धुएँ के उठने से कोमल पत्तों (कोपलों) की कान्ति की लालिमा नष्ट हो गयी है और ये निर्भीक मृगों के बच्चे जहाँ पर कुशों के अंकुर तोड़ लिए गये हैं ऐसी उद्यानभूमि में पास

ही धीरे-धीरे घूम रहे हैं।

शकुन्तला वृक्षों को सीच रही है उसे देखकर अनुसूचा कहती है कि कण्व को शकुन्तला से अधिक आश्रम वृक्ष प्रिय हैं।

अनुसूया - हला शकुन्तले, त्वत्तोऽपि तातकाश्य-पस्याश्रमवृक्षकाः प्रिपतरा इति तर्कयामि। येन नवमालिकाकु-सुमपेलवाऽपि त्वमेतेषामालवालपूरेण नियुक्ता।

शाकुन्तलम् प्रथमोङ्क गद्य संख्या -47

अनुसूया - सखी शकुन्तला पिता कश्यप (कण्व) को (ये) आश्रम के वृक्ष तुझसे अधिक प्रिय हैं। ऐसा मैं समझती हूँ अतएव नवमालिका के फूल तुल्य सुकुमार भी तुमको इनके आलवाल (थाँवले) भरने के कार्य में नियुक्त किय ाहै।

दुष्यन्त शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहताहै -

वाचं न मिश्रपति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्ण ददात्यभिमुखं मपि भाषमाणें।

कामं न तिष्ठति मदाननसम्मुखीना
भूर्यिष्ठमन्यविषया न तु दृष्टिरस्याः।।31।।

शकुन्तलम् प्रथमोङ्क श्लोक संख्या -31

राजा - (शकुन्तला को देखकर मन में) क्या जिस प्रकार हम इस पर (अनुरक्त) हैं। उसी प्रकार यह भी हम पर (अनुरक्त) है? अथवा मेरी इच्छा को अवसर प्राप्त हो गया है। क्योंकि - यद्यपि यह मेरे वचनों से यह वचन नहीं मिलाती (किन्तु मेरे बोलते समय मेरी ओर कान लगाये रखती हैं। भले ही मेरे मुंह के सामने मुँह नहीं करती हैं, किन्तु इसकी दृष्टि प्रायः अन्य विषयों की ओर नहीं है।

अनुसूया वृक्षों में मानवीय सम्बन्धों का आरोपण करती है।

अनुसूया - हला शकुन्तले, इयं स्वयंवरबधूः सहकारस्य त्वया कृतनामधेया वनज्योत्स्नेति नवमालिका। एनां विस्मृतासि ।

(प्रथम सर्ग गद्यखण्ड 60)

अनुसूया - सखी शकुन्तला यह आम की स्वयंवर-बधू नवमालिका है, जिसका तूने वन ज्योत्स्ना नाम रखा है। क्यों इसको भूल गयी हो।

शकुन्तला - तदात्मानमपि विस्मरिष्यामि (लतामुपेत्यावलोक्य च) हला रमणीये खलु काले एतस्य लतापादपमिथुनस्य व्यतिकरः संवृत्तः। नवकुसुमयौवना वनज्योत्स्ता, बद्ध पल्लववतयोपभोगभमः सहकारः।

(शाकुन्तलम् प्रथमोसर्ग गद्यखण्ड 61)

शकुन्तला - तब अपने आपको भूल जाऊँगी। (लता के पास जाकर उसको देखकर) सभी, सुन्दर समय में इस लता और वृक्ष के जोड़े का मेल हो गया है। वनज्योत्स्ना नवीन फूल रूपी यौवन से युक्त है और आम पत्तों से युक्त होने के कारण (इसके) उपभोग के योग्य हैं। (देखती हुई एक जाती हैं)

प्रियंवदा - अनसूये जातासि किं शकुन्तला वनज्योत्स्नामतिमात्रं पश्यतीति।

शाकुन्तलम् प्रथम सर्ग गद्य संख्या 62

प्रियंवदा-अनुसूया, तू जानती है कि शकुन्तला वनज्योत्स्ना को किस लिए बहुत अधिक देख रही है।

अनुसूया - न खलु विभावयामि। कथय। (प्रथमअंक गद्य संख्य 63)

अनुसूया नहीं जानती हूँ। बताओ।

प्रियंवदा - यथावनज्योत्स्नाऽनुरूपेण पादपेन संगता, अपि नामैवमहमप्यात्मनोऽनुरूपं वरं लभेयेति।

शाकुन्तलम् प्रथम सर्ग गद्य संख्या 64।

प्रियवंदा - (वह सोचती है) "जिस प्रकार वन ज्योत्स्ना अपने अनुरूप वृक्ष से मिल गयी है क्या मैं, भी अपने अनुरूप वर को पाऊँगी।

द्वितीय अंक के 6वें श्लोक में दुष्यन्त मृगया से विरत होकर धनुष रख देता है और इस शस्त्र स्थगन पर वन्य प्राणियों की निश्चिन्चता का वर्णन करता है -

गाहन्तां महिषा निपानसलिलं शृङ्गैर्महस्ताडितं
छायाबद्धकदम्बकं मृगकुलं रोमन्थमभ्यस्यतु।
विश्रब्धं क्रियतां वराहतात्रिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्वले
विश्रामं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्मद धनुः।।6।।

अभिज्ञान शाकुन्तल द्वितीय सर्ग

भैसे सीगों से बराबर आलोडित तालाब में स्नान करें। छाया में झुंड में बांधकर बैठा हुआ मृग समूह जुगाली का अभ्यास करें। सुअरों का झुंड निर्भय होकर छोटे तालाबों (बावड़ी) में नगरमोथा निकाले और यह हमारा धनुष (भी) शिथिल प्रत्यंचा वाला विश्राम करें।

इसी प्रकार तीसरें अंक के चौथे श्लोक में बालिनी नदी के स्पर्श से शीतल पवन वर्णन है -

शक्यमरबिन्दसुरभिः कणवाहो मालिनीतरंङ्गाणाम् ।
अङ्गैरनङ्गतप्तैराविरलमालिङ्गतुं पवनः ।।4।।

शाकुन्तलम् तृतीय सर्ग

काम-सन्तप्त अङ्गों से कमल की सुगन्ध से युक्त और मालिनी के तरंगों के कणों से मिश्रित वायु जोर से आलिंग के योग्य हैं।

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा मांगल्यमाविष्कृतं
निष्ठयूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित।
अन्येभ्यो वनदेवता करतलैरापर्वभगौत्थितै -
र्दत्तान्याभरणानि न किसलयोद्भेदप्रद्विन्दिभिः।।5।।

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग 5 श्लोक

हमको किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के तुल्य श्वेत मागलिक वस्त्र दिया। किसी ने पैरों को रंगने के योग्य लाक्षारस (अलक्तक महावर) प्रकट किया (दिया)। अन्य वृक्षों ने कलाई उठे हुए, सुन्दर किसलयों (कोपलों) की प्रतिस्पर्धा करने वाले वन देवता के करतलों से आभूषण दिये।

दुष्यन्तेनाहितं तेजो दधानां भूतये भुवः।
अवेहि ततयां ब्रहमन्त्रग्निगर्भा शमीमिव ।।4।। (चतुर्थ अंक)

प्रियंवदा - हे ब्रह्मन दुष्यन्त के द्वारा स्थापित तेज (वीर्य) की पृथ्वी के कल्याण के लिए धारण करने वाली (अपनी) पुत्री के छिपी हुई अग्नि से युक्त शमीवृक्ष के तुल्य समझो।

(कोकिलरवं सूचयित्वा)

अनुमतगमना शकुन्तला
तरुभिरियं बनवासबन्धुभिः।
परभृविरुतं कलं यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम।।10।।

अभिज्ञान शाकुन्तल चतुर्थ सर्ग श्लोक संख्या 10

(कोयल का शब्द सुनने का अभिनय करके) इस शकुन्तला को (इसके)वनवास के साथी वृक्षों ने न जाने की स्वीकृत दे दी है। क्योंकि सुन्दर कोयल की आवाज को इन्होंने इस प्रकार अपना प्रत्युत्तर बनाया है।

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभि-
श्द्वायाद्रुमैर्नियमितार्कमयूरखतापः।
भूयात् कुशेशयरजोमृदुरेजुरस्याः
शान्ताकूलपवनश्च शिवश्च पन्थाः।।11।।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग

कमलनियों से हरे भरे तालाबों से मार्ग का मध्यभाग मनोहर हो। घनी छाया

वाले वृक्षों से सूर्य की किरणों का ताप दूर हो। इसका मार्ग कमलों के पराग से कोमल धूल युक्त शान्त और अनुकूल वायु से युक्त तथा कल्याण कारी हो।

शकुन्तला की विदाई का वर्णन है इसमें कोयल की कूकों की कवि ने शकुन्तला की बिदाई को स्वीकारा है। ऋषि कण्व शकुन्तला के मार्ग सुखप्रद होने की कामना करता है।

प्रियंवदा कहती है -

न केवलं तपोवनाविरहकातरा सख्येव।
त्वयोपस्थिताावियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्था दृश्यते।

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।85।।

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चत्यश्रूणीव लताः।।12।।

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग 12 श्लोक

प्रियंवदा - तपोवन के वियोग से केवल तू ही दुःखित नहीं है, अपितु तुझसे विदाई का समय उपस्थित होने के कारण तपोवन की भी तेरे समान ही अवस्था दिखाई पड़ रही है।

शकुन्तला - (स्मृत्वा) तात लताभगिनीं वनज्योत्सनां तावदामन्त्रयिष्यते।

शाकुन्तल चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।86।।

शकुन्तला - (स्मरण करके) हे तात् मैं अपनी लता-बहिन ज्योत्स्ना से विदाई ले लूँ।

काश्यपः - *अवैमि ते तस्यां सोदर्यास्नेहम् । इयं तावद् दक्षिणेन।*

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।87।।

कश्यप - मैं जानता हूँ कि तेरा उस पर बहिन का सा प्रेम है। यह दाहिनी ओर है।

शाकुन्तला - (उपेत्यलतामालिण्ङ्य) वनज्योत्स्ने चूतसंगताडपि मां प्रत्यालिङ्गेतोगताभिः शाखाबाहुभिः अद्यप्रभिति दूरपरिवर्तिनी ते खलु भविष्यामि।

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।88।।

शाकुन्तला - (पास जाकर लता से लिपटकर) हे वनज्योत्स्ना अपने पति आम से मिली हुई थी तुम इधर की ओर आई हुई अपनी शाखा रूपी बाहुओं से मुझसे गले मिलो। आज से मैं तुमसे दूर हो जाऊँगी।

इसी प्रकार चमेली की लता को शकुन्तला सखियों के हाँथ में धरोहर के रूप में देतीहै गर्भ मंथरा मृगी उसके वस्त्र का छोर पकड़कर उसे जाने से रोकती है।

शकुन्तला - (सख्यौ प्रति) हला एषा द्वयोर्युवयोर्हस्ते निक्षेपः।

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।90।।

शकुन्तला - (दोनों सखियों से) सखियों, इस (लता) को तुम दोनों के हांथ में धरोहर के रूप में छोड़ती हूँ।

सख्यौ- *अयं जनः कस्य हस्ते समर्पितः।* शाकुन्तलम् गद्य - ।।91।।

दोनों सखियां हम दोनों को किसके हाथ छोड़ती हो?

काश्यपः - अनसूपे अलं रूदित्वा। ननु भवतीभ्यामेव स्थिरोकर्तव्या शकुन्तला।

शाकुन्तलम् गद्य संख्या ।।92।।

काश्यप - अनुसूया तुम मत रोओ, क्योंकि तुम दोनों को ही चाहिए कि शकुन्तला को धैर्य बंधाओ।

शकुन्तला - तात एषोट्जपर्यन्तचारिवी गर्भ मन्थरा मृगवधूर्पदाऽनघप्रसवा भवति तदा मह्यं कमपि प्रियनिवे दायितृकं विसर्जयिष्यथ।

शाकुन्तलम् चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।93।।

शकुन्तला - हे तात् कुटी के पास विचरण करने वाली गर्भ के कारण शिथिलगति इस मृगी के जब सुख से सन्तानोत्पत्ति हो जाये, तब इस शुभ समाचार की सूचना देने वाले किसी व्यक्ति को मेरे पास भेजियेगा।

शकुन्तला - (गतिभङ्गं रूपयित्वा) को न खल्वेष निवसने में सज्यते।

शाकुन्तल चतुर्थ सर्ग गद्य संख्या ।।95।।

शकुन्तला - (गति में अवरोध का अभिनय करे) यह कौन मेरे वस्त्र को खींच रहा है।

छठे सर्ग के 17 श्लोक में राजा शान्त नीरव पर्यावरण से सम्बन्ध चित्र बनाने का आदेश देता है।

राजा - श्रूयताम्

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः।

शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनपनं कण्डूयमानां मृगीम।।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् छठा सर्ग श्लोक ।।17।।

राजा - सुनो जिसके रेतीले किनारे पर हंसों के जोड़े बैठे हुए हैं ऐसी मालिनी नदी बनानी है। उसके दोनों ओर हिमालय की पवित्र पहाड़ियाँ बनानी है, जिन पर हिरण

बैठे हुए है। जिनकी शाखाओं पर वल्कल लटके हुए हैं ऐसे वृक्ष के नीचे कृष्ण मृग के सींग पर बाँयी आँख खुजाती हुई मृगी को बनाना चाहता हूँ।

राजा-

कृतं न कर्णार्पिबन्धनं सखे
शिरीषमागण्डाविलम्बिकेसटम् ।
न वा शटच्चन्द्रमरीचिकोमलं
मृणालसूत्रमं रचिं स्तनान्तरे।।18।।

शाकुन्तल छटें सर्ग श्लोक

राजा - हे मित्र उसके कानों में जिसका डंठल फंसाया हुआ है और जिसका पराग कपोलों तक फैला हुआ है ऐसा शिरीष का फूल नहीं बनाया है और उसके स्तनों के बीच शरत्कालीन चन्द्रमा की किरणों के तुल्य कोमल (श्वेत) मृणाल (कमल-ताल) का हार नही बनाया है।

पर्यावरण एवं पर्यटन

अन्नत काल से हमारे सन्त और महात्मा पर्वतों, नदियों की यात्रा और बुद्धि के उस उद्यान का अनुभव करते रहे है, जो प्रकृति के साथ निकट सर्म्पक से पैदा होता है। इन लोगों ने इस बात को समझ लिया था कि मनुष्य और प्रकृति दो अलग-अलग अस्तित्व, नहीं, बल्कि एक ही कार्बनिक तत्व, एक ही दैवीय आत्मा के अविभाज्य अंग है। उनका विश्वास था कि प्रकृति का बुनियादी तत्व अन्तरक्षणीय प्राणी बनाता है। वह प्राणी, पर्वत, जिसकी अस्थियाँ, धरतीमांस, समुद्रस्वत वायु सांस और अगिन उर्जा है, उन्होंने ने प्रचारित किया है कि पृथ्वी हमारी माता है हम उनकी सन्तान है। प्राचीन वैदिक श्रोतो से वह सन्देह निहीत है जिसे आज हम सतत विकास के नाम से जानते हैं। धरती के सृजन और वहन क्षमताओं को एक मजबूत आक्ष्यात्म माना गया है। यही कारण है कि बारत शताब्दीयों से प्राकृतिक और सांस्कृत सम्पत्तियों का भण्डार भरा है।

दुर्भाघ्य से प्रकृति को सम्मान देने और उसके साथ सद्भाव से रहने की यह लम्बी परम्परा बाद में अनियंत्रित भौतिकवाद के आक्रमण और अर्न्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में बढ़ती के कारण विकृत होती गयी। यह पर्यावरण का एक दुःखद पहलू है। पुराणों में ही नहीं बल्कि समस्त भारतीय ग्रंथों में पर्यावरण के सभी पहलुओं पर सकारात्मक विचार रखा गया था। प्राचीन कालीन धर्म ग्रंथों में वर्णित तीर्थयात्रा पर्यटन का एक अध्यात्मिक रूप था। वर्तमान पर्यटन के मुख्य स्थल पर्वत की चोटियाँ तथा नदियाँ होती है। वर्तमान उपभोगतावदी .संस्कृत में अर्थ का महत्वपूर्ण स्थान हो गया है। अतः विश्व के सभी प्रमुख

राष्ट्र प्रायः प्राचीनकाल में जिन स्थानों की धार्मिक मान्यताएँ थी अथवा जो स्थान को जन करने हल से दूर प्रकृति की गोद में जो स्थान है वहाँ पर सरकारी प्रयासों द्वारा पर्यटको के पर्यटन हेतु पर्यटक स्थल का विकास किया जा रहा है। इसी से प्रभावित होकर संयुक्त राष्ट्र ने 2002 को पर्यावरण पर्यटन एवं पर्वत वर्ष घोषित किया गया है हमारे धर्म ग्रंथों में प्राचीन काल से ही पर्यावरण की संरक्षण के लिए ही देवी देवताओं का निवास स्थान पर्वतों की चोटियों पर माना गया है। हमारे देश में देवियों के रूप में प्रतिष्ठित 90इ नदियों का उदगम् स्रोत पर्वत है। आज के सन्दर्भ में पुनः उन धार्मिक मान्यताओं को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आधुनिक ढंग से देखा जाता है। जहाँ प्राचीन काल में नदी, पहाड़, वन, धार्मिक भावनाओं से जुड़े हुए है वही आज के सन्दर्भ में नदी जंगल पर्वत स्वस्थ्य मनोरंजन के रूप में देखे जा रहे हैं। जहाँ प्राचीन काल में पर्यटन धार्मिक रूप से होता था, वही आज प्राकृतिक स्थानों का पर्यटन स्वास्थ्य लाभ एवं मनोरंजन के लिए होता है इसीलिए विश्व की तमाम् सरकारे इससे प्रभावित होकर इसे उद्योग का दर्जा न दिया गया है। यह ऐसा उद्योग है जो बिना प्रदुषण का है।

वर्तमान भागमभाग की जिन्दगी में व्यस्त मनुष्य शान्ति की तलाश चाहता है। जब उसे कहीं शान्ति नहीं मिलती तब प्रकृति गोद में पर्वतों जंगल में जाकर शान्ति की तलाश करता है। मेरा विश्वास है कि कोई परिदृष्य तब तक स्वस्थ्य नहीं हो सकता जब तक एक स्वस्थ्य मानसिक दृष्टिकोण मौजूद न हो। मानसिक सन्तुष्टि के लिए स्वच्छ वातारण की नितान्त आवश्यक है। अतः हन इस समय पर्यावरण पर्यटन का उन लोगों के लिए बहुत कम आर्कषण है जिन्हें मौजूदा भौतिकवाद ने डसा है। जिनका दिमाक सुखवादी दृष्टि से निर्देशित है, जो भौतिकवाद की सुख के तलाश में रहते हैं अथव

जिनकी दृष्टि उनकी विश्वास से निर्देशित होती रहती है वे पर्यावरण के प्रति असंवेदनशील है, उनके लिए संसार कुछ नहीं है। उन्हें वैचारिक धरातल पर लाने का काम शुद्ध वातावरण ही कर सकता है। पर्यटन के सबसे उपयुक्त व स्वास्थ्यप्रद स्थान पर्वत होते है। पहाड़ो पर इसमें का एक शौक बनता जा रहा है। पहाड़ों पर वन्य जीव पर्यटन रमणीय स्थल देखने के साथ-साथ मनोरंजन होता है। वहीं पर्वतों पर पर्यटन से शारिरीक तथा मानसिक बीमारी से निपटा जा सकता है। अतः इसी पर्यावरणीय सन्तुलन तथा पर्यटन के समवर्थन के लिए हमारी सरकार ने प्राकृतिक दृष्यों से समांप क्षेत्रों के विकास हेतु 572 क्षेत्रों 78 राष्ट्रीय उद्यानों तता 483 वन्य जीव उद्यानों संरक्षित किया है। हमारे पर्यटन के मुख्य स्थान पर्यटन के विकास के लिए व्यक्तियों के अन्दर अब खुद जाग्रिति आने लगी है। पर्यटन आज दुनियाँ का सबसे बढ़ा उद्योग है, और पर्यावरण पर्यटन इस उद्योग का सबसे तेजी से बढ़ने वाला हिस्सा है। सामान्य शब्दों में पर्यावरण पर्यटन का अर्थ है पर्यटन और प्रकृति सरंक्षण का सम्बन्ध इस ढंग से करना ही एक तरफ पर्यटन से पारिस्थितिकी सन्तुलन बनता है दुसरी तरफ स्थानीय समुदाय के लिए नये रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं।

पर्यावरण पर्यटन को सब रोगों की औषधि के रूप में देखा जा रहा है। जिससे भारी मात्रा में पर्यटन राजस्व मिलता है और पारिस्थितिकी प्रणाली को कोई छत नहीं पहुँचती क्योंकि उसमें वन संसाधनों का दोहन नहीं कियाजा सकता। पर्यावरण पर्यटन प्राकृतिक क्षेत्रों की वह दायित्व पूर्ण मात्रा है जिससे स्थानीय लोगों की खुशहाली बढ़ती है।

पर्वतीय क्षेत्रों में पर्यावरण पर्यटन

पर्यावरण-पर्यटन का सार चूँकि प्रकृति की प्रसंशा और बाहरी मनोरंजन है अतः इसके अन्तर्गत ट्रैकिंग, हाइकिंग पवर्तारहोण पक्षी पर्यवेक्षषा, नौकायान, राफिटगं जैव वैज्ञानिक खोज और वन्य अभ्यारणों की यात्रा जैसी गतिविधियाँ शामिल है। भारत विश्व में जैव विविधा सम्पन्न उन सात देशों में से एक है जिनकी सांस्कृतिक विरासत समृद्धतम् है। भारत में पर्यावरण पर्यटन की व्यापक संभावना है। जिनका दोहन आर्थिक लाभ, स्वास्थ्य परिक्षण और प्रकृति संरक्षण पर्वत मालायें समस्त प्राकृतिक सौदर्य का प्रारंभ और अन्त है।

पारिस्थितिक पर्यटन एक सन्तुष्टि प्रदान करने वाला अनुभव है। पारिस्थितिकी-पर्यटन प्रकृति और उसके वन्य पौधे और जीव जन्तुओं तथा इन क्षेत्रों में विद्यमान सांस्कृतिक पहलुओं के अध्ययन प्रशंसा और आनंद उठाने के विशेष लक्ष्य से किया जाने वाला ऐसा पर्यटन है जिसमें अपेक्षाकृत अवधि प्राकृतिक क्षेत्रों की यात्रा की जा सकती है क्योंकि पर्वतों पर स्थित वृक्षों, जड़ी-बूटियों और फूलों की विविधा मनमोह लेती है। ये हरित क्षेत्र कई मानों में महत्वपूर्ण है जैसे भू-परिदृश्य का सौन्दर्य बढ़ता है वहाँ (पर्वत) जीव जन्तुओं और वनस्पतियों का प्राकृतिक वास है और पौधों झाड़ियों और औषधिय गुणों से सम्पन्न जड़ी बूटियों का खजाना है। पर्वतों के निवासी इन हरित क्षेत्रों का सम्मान करते हैं और उन्हें पवित्र उपवन समझकर परंपरा रूप से उनका संरक्षण करते हैं। भारत में ऐसे हजारों पवित्र उपवन मैदानों और पर्वतों पर फैले हुए हैं। हिमालय क्षेत्र में ऐसे अनेक उपवन हैं। जिनका उल्लेख हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों में मिलता है।

पर्वतों पर पशु पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ पायी जाती है।

वैभवशाली हिमालय अपने अपार सौन्दर्य और महत्व के लिए विख्यात है।

लेकिन यह पृथ्वी का सबसे संवेदनशील पारिस्थितिकी है। यह क्षेत्र सिन्धु-गंगा, ब्रह्मपुत्र और हांगहो-यांगसी को उद्गम स्रोत है। यह धर्मशास्त्रों में देवताओं की धरती के रूप में प्रसिद्ध है। हिमालय पर्वत पर कई हिन्दू तीर्थ तथा देवालय है जहाँ भारी संख्या में श्रद्धालु दर्शनार्थ पहुँचते हैं। पुराणों में हमेशा ही हिमाच्छादित पर्वतों को आध्यात्मिक शान्ति के साथ जोड़कर देखा गया है।

पर्वतीय क्षेत्र जल, ऊर्जा जैव विविधता के महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। पर्वत प्राचीन ज्ञान और असाधारण आध्यात्मिक परंपराओं के भण्डार है पर्वतों से कई नदियाँ निकलती हैं। जिनका खास पौराणिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है।

अतः उपरोक्त पर्यटन और पर्यावरण के अध्ययन से स्पष्ट है कि आज पूरे मानव समाज का कर्तव्य है कि पारिस्थितिकी सन्तुलन को बनाये रखने वाले पर्वत नदी आदि को पर्यटन से जोड़कर इनमें अपना सहयोग प्रदान करें तथा पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचायें।

संदर्भ ग्रन्थ

1. पुराण संहिता – चौखम्भा प्रकाशन
2. ब्रह्म वैतर्तपुराण – कलकत्ता प्रकाशन
3. मत्स्य – पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
4. कूर्म पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
5. वराह पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
6. नृसिंह पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
7. वराह पुराण– गीता प्रेस गोरखपुर
8. स्कन्द पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर
9. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – बम्बई,
10. नर सिंह पुराण– गीता प्रेस गोरखपुर, श्री कृष्ण संवत 5196 प्रकाशन वर्ष 45
11. दि नरसिंह पुराण – डॉ एस० जैन (ए क्रिटिकल स्टडी)
12. अग्नि पुराण, गर्गसंहिता, नरसिंह पुराण अंक– गीता प्रेस गोरखपुर प्रकाशन वर्ष 45
13. नरसिंह पुराण; कल्याण (परिशिष्टांक) गीता प्रेस, गोरखपुर
14. ब्रह्म पुराण – डा० हरिदास सिद्धान्त वागीस, गुरू मण्डल प्रकाशन, कलकत्ता
15. पुराण विमर्श – पं० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी – 1987
16. हरिवंश पुराण का संस्कृति विवेचन – श्रीमती वीणा पाणि पाण्डेय, सूचना – विभाग उत्तर प्रदेश
17. पुराण समीक्षा– डा० हरिनारायण दुबे, वर्ष 1984
18. अग्नि पुराण – आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली क्रमांक –41–1900
19. कूर्म पुराण – कलकत्ता 1890
20. गरूड़ पुराण – बंगला संभवत 1314 कलकत्ता
21. देवी भागवत पुराण – श्री राम शर्मा, मथुरा
22. नारदीय पुराण – वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
23. पद्म पुराण – आनन्दाश्रम सीरीज, 1893

25. मत्स्य पुराण – आनन्दाश्रम पूना

26. मार्कण्डेय पुराण– कलकत्ता 1862

27. ब्रह्म पुराण – आनन्दाश्रम 1316

28. ब्रह्माण्ड पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस, 1913

29. वायु पुराण – हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

30. भविष्य – हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

31. मार्कण्डेय – हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

32. ब्रह्मवैर्वत – हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

33. वराह पुराण – कलकत्ता 1893

34. विष्णु पुराण – वेंकटेश्वर प्रेस

35. हरिवंश पुराण – पूना 1936

36. अण्टादश पुराण – दर्पण – ज्वाला प्रसाद मिश्र वेंकटेश्वर प्रेस

37. मार्कण्डेय पुराण – एक सांस्कृतिक अध्ययन वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद

38. पुराण विषयानुक्रमणी – राजबली पाण्डेय काशी

39. पुराण दिग्दर्शन – माधवाचार्य शास्त्री, दिल्ली सं० 2014

40. पुराण तत्व मीमांसा – श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, वाराणसी, 1961

41. अष्टादश पुराण परिचय – श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, वाराणसी सं० 2013

42. वामन पुराण – एक सांस्कृतिक अध्ययन : डा० मालती त्रिपाठी

43. पुराण अनुशीलन – म० भ० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी पटना 1970

44. धर्मशास्त्र का इतिहास – पी० वी० काणे

45. पुराण पर्यालोचनम् – श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी

46. श्री मद् भगवत गीता – गीता प्रेस, गोरखपुर

47. पुराण निर्माणाधिकरणम् – मधुबन ओझा

48. पुराणोत्पत्ति – प्रसंग – जयपुर –2000

49. पुराण धर्म– कालू राम शास्त्री

50. संस्कृत वाङ्मय का विवेचनात्मक इतिहास – डॉ० सूर्यकान्त सन् 1972 ई०

51. संस्कृत साहित्य का इतिहास – कपिलदेव द्विवेदी इलाहाबाद

52. संस्कृत हिन्दी कोश– वामन शिवराम आट्मे, दिल्ली

53. कालिदास ग्रंथावली – आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

54. कालिदास के काव्य में पर्यावरणी – डा० उर्मिला श्रीवास्तव

55. कादम्बिनी – हिन्दुस्तान टाइम्स जून 1995

56. योजना – पर्यावरण पर्यटन और पर्वत अगस्त 2002

57. पुराण कथाङ्क – गीता प्रेस गोरखपुर कल्याण अङ्क 71

58. सक्षिप्त गरूण पुराणाङ्क – गीता प्रेस गोरखपुर 74

59. आरोग्य अङ्क – गीता प्रेस गोरखपुर कल्याण अङ्क 75

60. श्रीमद भागवत पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर

61. पद्म पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर

62. भविष्य पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर

63. सूर्य देवता – डा० शशि तिवारी

64. अग्नि पुराण – जीवानन्द, विद्यासागर, कलकत्ता सं० 1882

65. कूर्म महापुराणम् – लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्ट्रीम प्रेस बम्बई सं० 1983

66. गरूड़ पुराण – जीवानन्द विद्यासागर कलकत्ता

67. पद्म पुराण – चार भाग, आनन्दाश्रम पुना,

68. पद्म पुराण – कलकत्त, 1957–59

69. मार्कण्डेय पुराणम् – श्री वेंकटेश्वर स्टीम बम्बई

70. लिंग पुराण – जीवानन्द विद्यासागर, नूतन वाल्मीकी यन्त्र कलकत्ता 1885

71. वामन पुराणम् – श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई

72. वायु महापुराण – लक्ष्मी वेकटेश्वर स्टीम बम्बई

73. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – श्री वेंकटेश्वर यन्त्रालय बम्बई।

74. शिव पुराणम् – पंडित पुस्तकालय काशी सं० 2020

75. साम्ब पुराणम् – श्री वेंकटेश्वर मुद्राणालय बम्बई

76. सूर्य पूराणम – संस्कृत संस्थान बरेली

77. सौर पुराण – आनन्दाश्रम पूना

78. स्कन्द पुराण – वेकेटश्वर यंत्रालय बम्बई 1867

79. पुराण परिशीलन – बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्

80. पुराण संदर्भ कोश – मेमन, पद्मिमिनी कानपुर

81. समुद्रमंथन – प्रो० हरिशंकर त्रिपाठी इलाहाबाद विश्व विद्यालय

82. अवेस्ता कालीन ईरान – प्रो० हरिशकर त्रिपाठी इलाहाबाद विश्व विद्यालय

83. पर्यावरण – आज धरती रोती है – डा० राजेश्वरी प्रसाद चन्दोला

84. पर्यावरण प्रदूषण – गोपीनाथ श्रीवास्तव

85. विष्णु धर्मोत्तर पुराण – गीता प्रेस गोरखपुर